साधु-सन्तों द्वारा मीरां-प्रशस्ति

किसी सन्त की प्राचीन उक्ति

हुओ घने सूं दादु चषतो, दादू सूं करमा दुरस।
करमा सीरे कबीर नामदे, वारां सूं मीरां सरस॥

नाभादास

भक्ति निसान बजाय के काहू तें नाहिन लजी।
लोक-लाज कुल शृङ्खला तजि मीरां गिरिधर भजी॥

पं० शोभालाल शास्त्री दशोरा

को मीरा सम परम दयाल।
श्री हरि भक्ति सुलभ जिहि कीन्हीं घर-घर या कलिकाल।
लखि पढ़ि सुनि सुचरित मीरा के, तरेउ हजारन पापी॥
अमल प्रेम की ध्वजा विश्व महँ, अविचल मीरां थापी॥

व्यासजी

मीरांबाई बिनु को भक्तनि पिता जानि उर लावै।

ध्रुवदास

लाज छाडि गिरिधर भजी करी न कछु कुलकानि।
सोई मीरा जग विदित प्रगट भक्ति की खानि॥

तुकाराम

जीव के जीवन, एका जनार्दन, पाटक श्रीकान्ह, मीरांबाई।

राघवदास दादूपंथी

लोक वेद कुल जगत सुध मुचि मीरा श्री हरि भजे।

पुरोहित हरिनारायण

गोपिन की सी प्रीति रीति कलिकाल दिखाई॥

नागरीदास

गिरिधर धणी कहूवो गिरिधर मात पिता सुत भाई।
थे थां हरे म्हे म्हा हा रैहो राणाजी यों कहैं मीरांबाई॥

दयाबाई

विष का प्याला मीरि पे, राणा भेज्यो दान।
मीरां अचयो राम कहि हो गयो सुधा समान॥

नन्ददास

जननी मीरा भक्त कृष्ण की प्यारी गढ़ चित्तौड़।
श्याम म्हारी सुध ले जावों॥
नन्ददास ब्राह्मण का लड़का, बारा मास कथ गाई।
मीरा का इम गुण गावो॥

प्रीतधन

राणो जी जेर दीयो म में जाणी।
कुंचल लेर अगन में डारो, नीक सो कारे थाणी॥
राणे जी विष को प्यालो मेलो झोली मीरा राणी।

जन लछमन

नीर क्षीर ज्यों मिल गया, सजनी परमानन्द की ओड़।
'जन लछमन' सांची जु ज्ञान में धनि मीरां राठोड़॥

सुन्दर दास कायस्थ

श्री मीरा को करौं प्रनाम, हरि के भक्तन में सरनाम।
तिनको प्रेम बरनि नहिं जाय सागर तामें जात समाय॥

भक्त नरसी मेहता

मीराबाई ना विष अमृत कीधां बिठुरनि अरोग्या माजी रे।

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय

यों तो राजपूताना में अगणित वीर वीरांगणाएं और धर्मपरायण गुणवती राजमहिलाएं हो गई हैं, परन्तु चित्तौड़ की रानी पद्मिनी जैसी वीरबाला और मीरांबाई के समान धर्मपरायण दूसरी कोई भी नहीं हुई है।

भूमिका

यों तो हिन्दी में मीरांबाई की जीवनी और साहित्य से सम्बन्धित कई ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं, किन्तु प्रस्तुत पुस्तक का कई दृष्टियों से विशेष महत्त्व है। वस्तुतः यह ग्रन्थ लेखक की सम्पूर्ण जीवन-साधना का फल है। जैसा उन्होंने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा है, किसी क्षुद्र स्वार्थ-वश या मात्र ख्याति-अर्जन के लिए उन्होंने इस पुस्तक की रचना नहीं की है। सम्भवतः लेखक के आराध्य भी वही हैं जो मीरांबाई के थे, अतः आराध्य की एकता एवं भक्ति-भावना की एकरूपता के कारण इस आलोचना-ग्रन्थ में लेखक मीरांबाई के साथ जैसा तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर सके हैं वैसा मीरां पर लिखनेवाले अन्य किसी लेखक ने शायद ही किया हो। मीरां की प्रेम-साधना का अनुशीलन तो श्रीभट्टाचार्य महोदय के लिए एक बहाना मात्र है, वस्तुतः इस अनुशीलन के माध्यम से उन्होंने अपनी ही प्रेम-साधना की भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति की है।

अध्यात्म के क्षेत्र में साधना के अनेक मार्ग चिर काल से प्रचलित रहे हैं किन्तु प्रेम-साधना के जैसे विश्वव्यापक और अत्यंत प्राचीन रूप मिलते रहे हैं वैसी व्यापकता अन्य साधना-मार्गों में नहीं दिखाई पड़ती। दो हजार वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया में साधकों का एक ऐसा सम्प्रदाय था जो दाम्पत्य भाव से परमात्मा की उपासना करता था और जिसके साधकों की प्रेमोन्मादपूर्ण अभिव्यक्तियाँ बाईबिल के ओल्ड टेस्टामेण्ट में अब भी सुरक्षित हैं। उसमें सालोमन के गीतों में वही उत्कट प्रेम, वही व्याकुलता और वही विरह की तड़पन दिखाई पड़ती है जो मीरां की कविताओं में मिलती है :—

By night on my bed I sought him whom my
soul loveth;
I sought him, but I found him not.
I said, "I will rise now, and go about the city,
In the streets and in the broad ways,

I will seek him whom my soul loveth."
I sought him, but I found him not.
The watchmen that go about the city found me.
To whom I said, "Saw ye him whom my
soul loveth ?"

इसी से मिलती-जुलती विरहानुभूति मीरां की इन पंक्तियों में भी व्यक्त हुई है :—

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।
गिरिधर म्हारो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ भोर गये उठि आऊँ ।
रैण दिना वाके सँग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ ।
मीरां-पदावली—१७

रमैया बिन नींद न आवै ।
नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आँच डुलावै ।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी जागत रैण बिहावै ।
पदावली—७६

विरह-व्यंजना के अतिरिक्त प्रिय को साकार रूप में देखने और उसके नख-शिख-सौंदर्य का वर्णन करने की प्रवृत्ति भी बहुत पुरानी और व्यापक है । सालोमन के गीत से ही एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :—

Behold thou art fair, my love ;
behold, thou art fair ;
Thine eyes are as doves behind thy veil ;
Thy hair is as a flock of goats,
That lie along the side of Mount Gilead.
Thy teeth are like a flock of ewes that
are newly shorn,

Which are come up from the Washing ;
Whereof everyone hath twins,
And none is bereaved among them.
Thy lips are like a thread of Scarlet,
And thy mouth is comely :
Thy temples are like a piece of a Pomegranate
Behind thy veil,
Thy neck is like the tower of
David builded for an armoury.

और मीराँ ने कृष्ण का नख-शिख वर्णन इस प्रकार किया है :—

जब से मोहि नन्दनँदन दृष्टि पड़्यो माई ।
तब से परलोक लोक कछू न सोहाई ।
मोरन की चंद्रकला शीश मुकुट सोहै ।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै ।
कुण्डल की अलक झलक कपोलन परछाई ।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई ।
कुटिल भृकुटि तिलक भाल, चितवन में टौना ।
खंजन अरु मधुप मीन, भूले मृग छौना ।
सुन्दर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा ।
नटवर प्रभु भेष धरे, रूप अति विशेषा ।
अधर बिम्ब अरुण नैन मधुर मन्द हाँसी ।
दसन दमक दाड़िम दुति चमके चपलासी ।
छुद्र घट किंकिनी अनूप धुनि सोहाई ।
गिरिधर के अंग अंग मीराँ बलि जाई ।

परमात्मा के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध पुरुष-साधकों में तो केवल आरोपित ही होता है किन्तु स्त्री-साधिकाओं में वह स्वाभाविक रूप में दिखाई पड़ता है । सालोमन के गीतों में परमात्मा को पुरुष और आत्मा को स्त्री —

माना गया है, किन्तु सन्तों ने इस कृत्रिमता का परिहार करने के निमित्त आत्मा को पुरुष और परमात्मा को स्त्री-रूप में कल्पित किया था। भारतीय वैष्णव भक्ति में जिन पुरुष-भावकों ने दाम्पत्य भाव को अपनाया है, उन्होंने या तो गोपियों के प्रेम-वर्णन द्वारा ही अपनी प्रेम-भावना की प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति की है अथवा सखी भाव से अपने को सखी मान कर आत्म-प्रकाशन किया है। अण्डाल और मीरा को स्त्री होने के नाते यह सुविधा मिल गयी कि वे कृष्ण को पति मान कर अपनी भावनाओं का प्रकाशन सीधे सीधे कर सकीं, उन्हें किसी प्रकार के कृत्रिम आरोप की आवश्यकता नहीं पड़ी। मीरां तो अपने को ललिता का अवतार ही मानती थीं। इसी कारण मीरां के पदों में जो स्त्री-जनोचित वेदना और तीव्र प्रेमोन्माद दिखाई पड़ता है वैसा किसी पुरुष भक्त कवि की कविता में नहीं मिलता।

श्रीव्योमवेश भट्टाचार्य ने इन सभी प्रश्नों पर थोड़ा-बहुत विचार किया है। यह एक भावुक भक्त द्वारा लिखा गया ग्रन्थ है, अतः इसे एक शोध-प्रबन्ध के रूप में देखना-परखना लेखक के साथ अन्याय होगा। फिर भी इस ग्रन्थ में मीरां के सम्बन्ध में उपलब्ध कोई सामग्री छूटने नहीं पायी है यद्यपि भावातिरेक के कारण कुछ प्रसंगों की पुनरुक्ति हो गयी है, अथवा कुछ स्थलों पर अप्रासंगिक चर्चा भी आ गयी है, किन्तु कुल मिलाकर लेखक का यह प्रयास निश्चय ही श्लाघ्य और स्तुत्य है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अहिन्दी भाषा-भाषी होते हुए भी उन्होंने हिंदी-साहित्य को समृद्ध करके अपने राष्ट्र-भाषा-प्रेम तथा देश की सांस्कृतिक एकता में अपनी दृढ़ आस्था का निर्भीक परिचय दिया है। इस कारण मैं उनके इस ग्रन्थ का और भी अधिक उत्साह से अभिनन्दन करता हूँ।

ता०—१२—१९—५८ ई०

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय,

श्रीआदित्य नाथ झा

वाराणसी।

प्रस्तावना

कृष्ण-प्रेम-पागलिनी मीराबाई की जीवनी-आलोचना की वासना श्रीवृन्दावन पारमार्थिक वैष्णव विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठाता पूज्यपाद भक्ति-हृदय वन महाराज के निकट व्यक्त करने पर, उन्होंने कहा—"पहले मीराबाई के स्तर पर पहुँचो, पीछे जीवनी लिखना।" मैंने कहा—"वह स्तर तो आनन्दमय परम स्तर है, उस स्तर पर पहुँच सकूँ तो फिर क्या अन्य कर्मों की सम्भावना रह जाती है?"

इसके उत्तर में महाराज ने कहा—"रूप सनातन ने कैसे किया था?"

तब मैं निरुत्तर हो रहा। आज मैं पुण्यमयी देवी मीराबाई की जीवनी-आलोचना में प्रवृत्त हो गया हूँ। इसके मूल में अन्तर की प्रेरणा विद्यमान है। प्रायः बीस वर्ष पूर्व मुझे सुनाई पड़ा था—

"मीराँ कहे बिना प्रेम से नहीं मिले नन्दलाला।" मीराँबाई की जीवनी-आलोचना में प्रवृत्त होने पर मुझे एक और भजन ज्ञात हो गया

जो मैं ऐसा जानती प्रेम किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रेम न कीजै कोय॥

उसी समय से मीराँबाई कौन हैं? मीराँबाई का प्रेमतत्व क्या है, इसका प्रकृत तथ्य निर्णय करने की प्रबल वासना मन में जाग उठी। मीराबाई कौन थीं, यह इतिहास का प्रश्न है। ऐतिहासिक आलोचना से इसका सन्धान मिल सकता है। किन्तु प्रेमतत्त्व क्या है—यह साधना की अपेक्षा रखता है। यह अनुभूति का विषय है।

मीराँबाई की जीवनी के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के प्रयत्न में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, विद्यापीठ और हिन्दूविश्वविद्यालय में इस विषय के बहुत से हिन्दी-ग्रन्थ मिले। कर्नल टाड ने राजपूत जाति का इतिहास लिखकर जगत् में राजस्थान के शौर्य-वीर्य का प्रचार किया है। इसके लिए भारतवासी उनके प्रति चिरऋणी हैं। कर्नल टाड की इतिहास-रचना जनश्रुतियों पर निर्भर करती है, ऐतिहासिक निदर्शनों पर नहीं। परिवर्ती काल में राजस्थान के इतिहास में आमूल परिवर्तन

हुआ है। राजस्थान और तत्समीपवर्ती देशों के ऐतिहासिकों ने राजस्थान राजन्यवर्ग के सरकारी दलील-कागजपत्रादि, शिला लेखों एवं प्राचीन ग्रन्थादि की गवेषणा करके राजस्थान और मीरांबाई के सम्बन्ध में प्रकृत तथ्यों का उद्घाटन किया है। इन ऐतिहासिकों में महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मुंशी देवीप्रसाद जी, श्रीजगदीश सिंह गहलोत और सारड़ाजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अधिकांश साहित्यिकों और नाट्यकारों ने कर्नल टाड साहब लिखित "राजस्थान का इतिवृत्त" के अवलम्ब से राजस्थान का इतिहास और मीराबाई के सम्बन्ध में साहित्य और नाटकों की रचना की है। साहित्य और नाटकों में "मीराबाई महाराणा कुम्भ की स्त्री", "महाराणा कुम्भ द्वारा मीरांबाई का उत्पीड़न" "सम्राट अकबर और मीराबाई साक्षात्कार" इत्यादि विषय विशेषरूप से स्थान पा चुके हैं। किन्तु ऐतिहासिक सिद्धान्तों के अनुसार विचार करने से ये सभी अलीक कल्पना मात्र सिद्ध हो चुके हैं। राजस्थान-भ्रमण काल में मुझे ऐसे ही मन्तव्य मिलते रहे कि मीरांबाई के सम्बन्ध में प्रकृत विवरण महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मुंशी देवीप्रसाद जी, श्रीजगदीश सिंह गहलोतजी प्रमुख ऐतिहासिक ही प्रकट करने में समर्थ हुए हैं। मेरा यह मीराबाई ग्रंथ प्रधानतः इन्हीं लोगों के लिखित विवरणों के आधार से रचित हुआ है।

१६५३ ई० में राजस्थान के जयपुर में निखिल भारत बङ्गसाहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सम्मेलन की राजस्थानी साहित्य शाखा के बाद "मीरां साहित्य" पढ सुनाने के पश्चात् मीराबाई के देश में अर्थात् राजस्थान में मैंने उनकी जीवनी-आलोचना का शुभारम्भ किया। अम्बर में मीरांबाई का मंदिर दर्शन करके चित्तौड़ गढ में मीरांबाई की लीला-भूमि में जाने पर मुझे परमानन्द प्राप्त हुआ। उन दिनों चित्तौड़ गढ में श्रीग्रानदस्वरूप ब्रह्मचारी बहुत दिनों से मीराबाई के सम्बन्ध में आलोचना कर रहे थे,

उनके निकट मुझे बहुत से तथ्यों का संधान मिला। उनके अकृत्रिम स्नेह की बात मैं अपने जीवन में कभी भूल नहीं सकता। चित्तौड़ गढ़ में उदयपुर, एकलिङ्गेश्वर, श्रीनाथद्वार, कंकरौली मारवाड़, मेड़तासिटी, रीवांगढ़, गोविंदगढ़, कुड़की, पुष्कर, अजमेर, श्रीवृन्दावन, मथुरा प्रभृति स्थानों का भ्रमण करके मीरांबाई के सम्बन्धमें विवरण संग्रह करने और मीराबाई के लीला-स्थलों के 'फोटो' लेने में मुझे सफलता मिली, मीरांबाई का जन्म-स्थान मरुभूमिस्थित कुड़की और उनकी बाल्य लीला का स्थान मेड़ता दर्शन करके मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ।

कुड़की-दर्शन-काल में मीरांबाई के पितृकुल में उत्पन्न श्रीठाकुर यायावर सिंह जी ने ग्रन्थकार को बारबार बताया कि महाराणा कुम्भ के साथ मीरांबाई का कोई भी सम्बन्ध नहीं था, मीरांबाई के विषय में यथार्थ विवरण मुंशीजी और ओझाजी ही प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं।

श्रीवृन्दावन में मीरा-प्रेम-पागलिनी श्रीकृष्ण प्रभाकर और दि स्टोरी आफ मीरांबाई और व्रजचन्द्रचकोरी मीरा ग्रन्थ प्रणेता श्रीबांकेबिहारी जी के सम्पर्क में आकर मीराबाई के सम्बन्ध में मुझे अनेक तथ्य और अनुप्रेरणा प्राप्त हुई। श्रीबांकेबिहारी जी ने आलोचना-प्रसंग में कहा—एक दिन मद्रासवासी एक भक्त ने तन्द्रावस्था में एक ज्योतिर्मयी मूर्ति देखी। बाद को उन्होंने अनुभव किया कि मीराबाई अविर्भूत होकर उनको प्रेम-धर्म की वाणी प्रचार करने का निर्देश दे रही हैं। हृदयकी बात है इस लेखक को भी ऐसी ही प्रेरणा मिलने का अनुभव होता रहता है।

भजनों के अतिरिक्त मीरांबाई ने कई ग्रन्थ भी लिखे हैं। उन ग्रन्थों का विवरण, उनकी भाषा, उनके छन्द, अलंकार इत्यादि विषय 'मीरां-साहित्य' शीर्षक अध्याय में यथासाध्य व्यक्त करने का प्रयास मैंने किया है।

ग्रन्थ में प्रसंग-क्रम से 'श्रीवृन्दावन माहात्म्य' और 'वैष्णव चार सम्प्रदायों का संक्षिप्त विवरण' शीर्षक अध्यायों में जहाँ-तहाँ मैंने उल्लेख किया है। क्योंकि मीराँबाई वैष्णव-धर्मावलम्बी थीं। श्रीवृन्दावन-धाम उनके प्रभु का लीलास्थल है। वैष्णव धर्म ही उनका धर्म था। इसलिए यह विषय एक दम अप्रासंगिक नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में चण्डीदास ज्ञानदास विद्यापति, गोविन्ददास, आदि भक्त कवियों की रचना के कुछ अंश तुलनात्मक दृष्टि से देकर मैंने वर्णित विषय को स्पष्टतर करने का प्रयास किया है। मीराँबाई के पदों का रूप मौलिक ही रक्खा गया है, किंचित् भी परिवर्तन नहीं किया गया है। मीराँबाई ने शब्दों के प्रयोग में अपने समय के अनुकूल उपयुक्त रीति से किया है। अतः मैंने भी उन्हें आर्ष मानकर उसी रूप में रक्खा है।

मीराँबाई-ग्रन्थ-प्रणयन-प्रसंग में परम पूज्य महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज महाशय ने कहा था—"मीराँबाई के ऐतिहासिक जीवन की सन्-तारीखों के तारतम्यों से कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। उनके आध्यात्मिक जीवन की आलोचना से रसास्वादन करना ही उचित है।"

परम श्रद्धास्पद का आदेश शिरोधार्य करके मैंने काम तो अवश्य किया है, किन्तु कार्यतः कितना कर सका हूँ, यह बताना कठिन है। सन्त श्री विनोबा भावे जी के काशीधाम में ठहरते समय ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का "अध्यात्म-अध्याय" पढ़कर उनको सुनाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वह सुनकर वे आनन्दित हुए और उनके सहकर्मी श्रीदामोदर दासजी के अनुरोध से अध्यात्म अध्याय का अंश-विशेष मैंने उनको अर्पण किया।

ग्रन्थ में दिये गये चित्रों के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। राजस्थान भ्रमण करते 'समय कुड़की मे मीराँबाई का जन्म-स्थान' मेड़ता में चारभुजा मन्दिर के सामने मीराबाई की मर्मर मूर्ति, श्री वृन्दावन में मीराँबाई के मन्दिर के चित्र मैंने स्वयं अपने हाथों से उठाये

हैं। गुरु रुद्दास और मीराँबाई चित्र मुगलशासनकालीन हैं, ऐसा ही विश्वास बहुतों को है।

यह चित्र भी मुझे श्रीबाँकेबिहारी जी के सन्धान से और आर्थिक साहाय्य से मिला है। श्रीवृन्दावन में मीराबाई के मन्दिर में ही श्री जीव गोस्वामी और मीराँबाई का साक्षात्कार हुआ था। मन्दिर के वर्तमान सेवक ठाकुर मगलसिंह जी ने फोटो खींचने और अन्यान्य विषयों में यथेष्ट सहायता की है।

राजस्थान-सरकार के कानून-विभाग के उच्चपदाधिकारी श्रीसुखबीर सिंह गहलोत एम० ए०, एल० एल० बी० ने इस ग्रंथ की रचना के विषय में विविध तथ्य देकर मुझे सहायता प्रदान की है। इस कारण उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता, 'राजपूताना का इतिहास' सम्पूर्ण के यशस्वी लेखक श्रीजगदीश सिंह गहलोत, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रणयन में सर्व प्रकार से सहायता की, अब इस लोक में नहीं रहे। ग्रंथ के मुद्रण-काल में ही उनका स्वर्गवास होने का दुःखद समाचार सुनना पड़ा है। उनकी सहायता के बिना मेरे लिए यह कार्य सुचारुरूप से पूर्ण करना असम्भव ही होता। परमात्मा से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे और उनके परिजनों को शोक सहन की शक्ति प्रदान करे।

भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने मेरी साहित्य-सेवा और मीराँबाई के प्रेम-धर्म के प्रचार से सन्तुष्ट होकर मुझे आर्थिक सहायता देकर कृतार्थ किया है। इस कारण मैं राष्ट्रपति को अपनी आन्तरिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। इस पुस्तक द्वारा हिन्दी भाषा की गौरव-वृद्धि होने की प्रबल आशा है इस लिए उत्तर प्रदेशीय सरकार ने इसके प्रकाशनार्थ ७५० रुपये का साहाय्य प्रदान किया है। इस सहायता के बिना यह ग्रंथ प्रकाशित करना मेरे लिए कभी सम्भव न होता। इस

कारण मैं मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानंद तथा शिक्षा-विभाग के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अंत में मैं सज्जन पाठकों को सूचित कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि, 'मीराबाई' ग्रंथ पहले पहल बंगभाषा में लिखकर मैंने १९५७ ई० में प्रकाशित किया था। यह पुस्तक उसी विषय पर स्वतंत्र रूप से हिन्दी में लिखी जाकर प्रकाशित हुई है। मेरी मातृभाषा बंगला है। मेरे जीवन में हिंदी ग्रंथ लिखकर प्रकाशित करने का यह प्रथम प्रयास है। इस स्थिति में मेरी भाषा में कुछ त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। फिर भी मैंने इस ग्रंथ को यथासम्भव सर्वांग सुन्दर और पूर्ण शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। पाठकों से निवेदन है कि मेरी भूलों के लिए अपनी उदारता से क्षमा प्रदान करें और हिंदी प्रचारना और हिंदी की प्रगति के लिए मुझे उत्साह प्रदान करें।

इस पुस्तक की रचना में मेरे अग्रज-प्रतिम श्रीकमला राय ने मुझे यथेष्ट साहाय्य प्रदान किया है। एतदर्थ मैं अंतःकरण से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

हमारे परम श्रद्धास्पद वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्रीआदित्यनाथ झा आई० सी० एस० महोदय ने अत्यंत व्यस्त रहने पर भी इस ग्रंथ की भूमिका लिखकर मुझे चिरकृतज्ञता-पाश में आबद्ध कर लिया है। इस कारण मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन कर रहा हूँ।

मीरांवाणी-प्रचार-मंदिर — श्रीव्योमकेश भट्टाचार्य
३४।१३६ गणेश मोहल्ला,
वाराणसी (इण्डिया)
१२-१२-५८

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

चित्र-सूची

प्रथम खण्ड

मीराँबाई का जीवन-वृत्त और परिचय

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

ॐ तप्त काञ्चन गौराङ्गीं राधा वृन्दावनेश्वरीम् ।
वृषभानुसुता देवीं त्वां नमामि हरिप्रियाम् ॥

पूजारिणी मीराँबाई

५

मीराँबाई

राजस्थान का संक्षिप्त परिचय

मीराँबाई राजस्थान की महीयसी महिला थीं। इस कारण उनकी जन्मभूमि राजस्थान का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। राजस्थान का दूसरा नाम है राजपूताना। 'राजपुत्र' से राजपूताना नाम की उत्पत्ति हुई है। राजस्थान का उत्तर-पश्चिम भाग मरुस्थल है। प्रखर मरुभूमिने अपनी विकराल मूर्ति फैला कर राजस्थान को अनुर्वर बना रक्खा है। जोधपुर, बीकानेर की बालुकाराशि धू-धू करती हुई रुद्रमूर्ति प्रदर्शित कर रही है। उदयपुर, आबू अञ्चल, श्रीनाथद्वार के कुछ अंशों में वृक्ष लतादि दिखाई पड़ते हैं। ग्रीष्मकाल में सूर्यदेव राजस्थान के वृक्षलतादि-वर्जित शुष्क वक्षस्थल पर ताण्डव नृत्य करते हैं, फिर शीतकाल में अत्यन्त शीत का प्रकोप हो जाता है। विशाल मरुक्षेत्रमें बस्तियाँ विरल हैं। राजस्थान क्षत्रियों की संग्राम-भूमि है। प्राचीन राजस्थान की सीमा इस प्रकार थी—उत्तर दिशा में शतद्रु नदी, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत, पूर्व में बुन्देलखण्ड, पश्चिम में सिन्धु नद। आराबल्ली पर्वतमाला ने राजस्थान को द्विधा कर रक्खा है। राजस्थान में कई नदियों के रहते भी नदीगर्भ में अल्प जल ही रहता है।

राजपूतगण सूर्यवंशीय श्रीरामचन्द्र के वंश-सम्भूत हैं। मेवाड़ के राणा-लोग लव और मारवाड़ जोधपुर के राजगण और आमेर (जयपुर) के राजा कुश से अपनी उत्पत्ति का परिचय देते हैं। राजस्थान आठ भागों में विभक्त था, जैसे—मेवाड़, जोधपुर, बीकानेर, आमेर (जयपुर) सिरोही बून्दी, जैसलमेर और करौली।

कनकसेन के निम्नाम अष्टम पुरुष में शिलादित्य हुए। उनके बाद बाप्पादित्य, राणा लक्ष्मण सिंह, भीम सिंह, हम्मीर, चूंडा जी, राणा कुम्भ, साँगा (संग्राम सिंह), उदय सिंह, प्रताप सिंह, राज सिंह प्रभृति वीरों ने जन्म ग्रहण करके राजस्थान का मुख उज्ज्वल किया है। अब भी राजस्थानवासी अपने पूर्व पुरुषों के गौरव से गौरव अनुभव करते हैं। अब भी उनकी धमनियों में पूर्व पुरुषों का शोणित बह रहा है।

राजस्थान का ऐतिहासिक वैभव

राजस्थान आर्य-सभ्यता की केन्द्रभूमि है। राजस्थान की 'नगरी' और बैराट के आविष्कृत ध्वंसस्तूप भारत की प्राचीनतम सभ्यता के निदर्शन हैं। पौराणिक जनश्रुति के अनुसार ये दोनों नगर महाभारतकालीन पाण्डवों के द्वारा निर्मित हुए थे। बैराट विराट राजा की राजधानी थी। पाण्डवों ने इस स्थान में अज्ञातवास किया था। नागदा और बड़ौली के मन्दिरादि गुप्त वंश के राज्यकाल के निदर्शन हैं। तारागढ़ और चित्तौड़ गढ़ पृथ्वीराज चौहान और महाराणा प्रताप सिंह की राजधानी थी। चित्तौड़गढ़ का विजय-स्तम्भ, पद्मिनी महल, महाराणा कुम्भा और मीराँबाई का मन्दिर, चित्तौरेश्वरी कालीमन्दिर ऐतिहासिक निदर्शन और दर्शनीय वस्तुएँ हैं। आम्बेर राजमहल और आम्बेर दुर्ग आज तक अक्षत अवस्था में विद्यमान हैं। राजा मानसिंह कछवाहा बङ्ग देश से प्रतापादित्य की यशोरेश्वरी देवी की मूर्ति आम्बेर में ले गये थे। वहां ही उन्होंने उक्त देवीमूर्ति की स्थापना की थी। आज भी देवी की पूजा नित्य विधिवत् हो रही है।

राजस्थान का धर्म

बहुत बार बाहरी आक्रमणों के होते रहने पर भी राजस्थान के धर्म और उसकी संस्कृति को कोई भी ध्वंस न कर सका। राजपूतों का अपना धर्म

अटूट रह गया है। राजस्थान हिन्दूप्रधान देश है। राजपूतों के लिए महादेव प्रधान उपास्य देवता हैं। गहलोत वंशीय गण शिव की पूर्ण और लिंग उभय मूर्तियों की अर्चना करते हैं। शिव साधारणतः एकलिंग नाम से प्रसिद्ध हैं। "एकलिंग" के पुजारी विवाह-बन्धन में नहीं पड़ते। अन्तिम काल में अपने शिष्य के ऊपर भार सौंप देते हैं। ये लोग गोस्वामी नाम से परिचित हैं। योगिराज हारीत ने बाप्पादित्य को शिव मन्त्र में दीक्षित किया था। पर्वतस्थित जिस शिवलिंग की पूजा हारीत करते थे, उनका नाम एकलिंग है। सर्वप्रथम बाप्पा "एकलिंग" के दीवान उपाधि से भूषित हुए थे। इस प्रकार मेवाड़ के अधिपतिगण एकलिंग के दीवान (एकलिंग के प्रतिनिधि) नाम से प्रसिद्ध हैं।

जैनधर्म का प्रभाव

जैनधर्म का प्रथम अभ्युदय राजस्थान और सौराष्ट्र में हुआ। जैन-मत में जिन पांच पर्वतों का उल्लेख है उनमें आबू, पालीखान गिर्नी राजस्थान में अवस्थित हैं। आनहल वारापत्तन के अन्तिम राजा कुमारपाल जैनधर्मावलम्बी थे। गहलोतवंशीय आदिपुरुष वल्लभीपति-गण जैन धर्म को मुख्य धर्म के रूप में मानते हैं। जैसलमेर, आनहल-वारा, काम्बेर और अन्यान्य जैनपीठों के पुस्तकालय आज भी असंख्य अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण हैं। आबू शैल जैनियों का महातीर्थ है। चित्तौड़, अजमेर, बीकानेर सर्वत्र ही जैन मन्दिर विद्यमान हैं। जैन धर्मावलम्बियों का "अहिंसा परमो धर्मः" मूल मत्र है। साधु से लेकर गृहस्थतक सभी इस नीति का पालन करते हैं।

वैष्णव धर्म

शैव, जैन धर्म की भाँति वैष्णव धर्म भी राजस्थान में प्रभाव विस्तार कर चुका है। भक्तशिरोमणि मीरांबाई की जीवन-साधना ही इसका प्रकृष्ट प्रमाण है। जोधपुर के दूदाजी, मेवाड़ के महाराणा कुम्भ परम वैष्णव

थे । नाथद्वार वैष्णव सम्प्रदाय का महातीर्थ है । ब्रजभाग के औरंगजेब द्वारा कलुषित होने का समाचार पाकर शीशोदिया वंशीय राणा राजसिंह ने यवनों के विरुद्ध शस्त्र धारण किया था । भगवान श्रीनाथ जी की विग्रह-रक्षा के निमित्त सहस्रों की संख्या में राजपूत वीरों ने आत्म-बलि दे दिया था । श्रीनाथ जी के सम्बन्ध में ऐसा प्रवाद चला आ रहा है कि, श्रीधाम वृन्दावन से श्रीकृष्णचन्द्र का रथ जब कोटा से हो कर रामपुर की राह से चलने लगा था— रास्ते में सियार नामक स्थान में रथचक्र भू गर्भ में जा पड़ा । शकुन शास्त्र विशारद एक ज्योतिषी ने कहा कि प्रभु इसी जगह रहना चाहते हैं । महाराणा ने उक्त ज्योतिषी की बात पर विश्वास करके यहीं प्रभु को प्रतिष्ठित करने का आदेश दिया । उसी समय से यह स्थान नाथद्वार नाम से परिचित है । श्रीवृन्दावन के श्रीगोविन्द जी को भी इसी प्रकार जयपुर में रक्खा गया। आज तक श्रीगोविन्द जयपुर में विराज रहे हैं। कंकरौली भी वैष्णव तीर्थ है।जोधपुर में बालकिसुन जी,घनश्याम जी, कुंजबिहारी जी के मन्दिर विद्यमान हैं। जोधपुर को द्वितीय वृन्दावन कह सकते हैं । अजमेर के निकटस्थ किसनगढ में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का तीर्थ विद्यमान है। जैपुर, जोधपुर में निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव अधिक हैं । नाथद्वार कंकरौली में वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का प्रभाव अधिक है । जैपुर, उदयपुर, नाथद्वार कंकरौली में मीरांबाई का मन्दिर है । उदयपुर, नाथद्वार, कंकरौली, मारवाड़, मेड़ता कुड़की प्रभृति स्थानों में आदर के साथ मीरांबाई के भजन गाये जाते हैं ।

पर्वादि

राजस्थान में गौरीपूजा, वसन्तपंचमी, शिवरात्रि, होली, फूलदोल नागपंचमी, दशहरा, भूलनयात्रा, अन्नकूट प्रभृति पर्व विशेष रूप से अनुष्ठित होते हैं । प्रत्येक उत्सव में ही राजपुरुषगण विशेष भाग लेते हैं ।

श्रीकृष्ण की सप्त मूर्तियाँ राजस्थान के विभिन्न स्थानों में विराजित हैं'। वैष्णवाचार्य वल्लभाचार्य ने इन सप्तमूर्तियों को एकत्र करके अन्नकूट किया था।

राजपूत जाति की वीरत्व-कहानी

राजपूताना स्वाधीनता का लीला-निकेतन है। वीरत्व और महत्त्व का साधना-क्षेत्र है। हिन्दू जाति का गौरव स्थान है। राणा सांगा, राणा प्रताप सिंह ने स्वाधीनता-रक्षा के लिए जो असहनीय दुख-कष्ट भोग किया था वह इतिहास में विरल है। बाप्पा रावल का वीरत्व, समर सिंह का समर-कौशल, संग्राम सिंह की अतुलनीय निर्भीकता, प्रताप सिंह का ज्वलन्त अप्रतिम स्वदेशानुराग और स्वार्थ-त्याग, राज सिंह की तेजस्विता और रणकुशलता ने भारत के इतिहास को उज्ज्वल कर रक्खा है। राजपूत जाति के दुर्दम्य प्रताप से पठान-मुगल जाति पर्युदस्त हुई थी।

स्त्रीजातिके प्रति व्यवहार और नारीविषयक शिष्टाचार

राजपूत जाति नारी को देवी समझ कर श्रेष्ठ आसन देना जानती है। सङ्कटकाल में रमणी की मंत्रणा को देववाणी ही राजपूतगण मानते थे। कविवर चाँदभट्ट ने अपने अमृतमय काव्यग्रन्थ में राजपूत जाति की वीरत्व-कहानी स्वर्णाक्षरों में गूँथ रक्खी है। कोई राजपूत नारी अपहृता, वन्दिनी या लालसा की उपभोग्या हो सकती है—ऐसी कल्पना को राजपूतगण अन्तिम निश्वास के रहते मन में स्थान नहीं दे सकते। नारी की मर्यादा-रक्षा में राजपूत सर्वस्व त्याग देने में द्विधा बोध नहीं करते। राजपूत कुलनारियों ने अपने सतीत्व और सम्मान की रक्षा के निमित्त "जौहर व्रत" पालन करके सहास्यवदना से आत्म-विसर्जन करके भारत के इतिहास को उज्ज्वल बना रक्खा है। जौहर व्रतचारिणी, रानी

पद्मिनी, कर्णावती, कृष्णाकुमारी के सतीत्व-तेज से चित्तौड़ पवित्र धाम बना हुआ है।

व्यवसाय-वाणिज्य और शिल्पकला

राजपूत क्षत्रिय जाति है। युद्ध-विद्या ही उनका प्रधान कर्म है। तो भी शिल्प-नैपुण्य में, व्यवसाय-वाणिज्य में राजस्थान-निवासी पश्चात् पद नहीं हैं। मारवाड़ के मारवाड़ी आज भारत के व्यवसाय-क्षेत्र में एकाधिपत्य स्थापन कर रहे हैं, यह सर्वजन विदित है। अजन्ता इलोरा का मन्दिर, आबू जैन मन्दिर पृथ्वी में अन्यतम हैं। बड़ौली, नागदा, कामा, हर्षनाथ के मन्दिर भी चित्ताकर्षक हैं। जयपुर की श्वेत प्रस्तर-मूर्तियाँ भारत मे प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्ण श्रीराधा-मूर्ति जयपुर से ही भारत में सर्वत्र भेजी जाती हैं। विभिन्न कारुकार्यपूर्ण जयपुर का "जलपात्र" राजस्थान का एक प्रसिद्ध शिल्प है।

शिक्षा दीक्षा

शिक्षा-दीक्षा में राजस्थान ने भारत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। जयपुर में राजपूताना विश्वविद्यालय, संस्कृत कालेज, राजस्थानियों को शिक्षा की ओर अग्रसर करते जा रहे हैं। राजस्थान के जैन धर्मावलम्बियों में संस्कृत साहित्य और भाषा के प्रति तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा के प्रति विशेष अनुराग परिलक्षित होता है।

मीरा शब्द का अर्थ

मीराँ नाम इतना मधुर है कि, भारत के हिन्दू मुसलमान सभी अति आदर के साथ अपनी कन्या का नाम "मीराँ" रखते हैं। महात्मा गाँधी ने अपनी शिष्या मिस स्लेड का नाम मीराँ बेन रक्खा था। स्वर्गीय डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने एक निबन्ध में लिखा है, मीराँ शब्द फारसी भाषा-सम्भूत उपनाम मात्र है। फारसी शब्द कोश में मीराँ शब्द का अर्थ अमीर अर्थात् सरदार होता है। बहुवचन में मीराँ होता है।

कबीरदास के तीन दोहों में मीरां शब्द मिलता है। दोहों के अर्थानुसार मीरां शब्द का अर्थ कोई सिद्ध फकीर या गुरु समझा जा रहा है। कबीर मीरांबाई के प्रायः समकालीन थे। संस्कृत में मीरा शब्द समुद्रवाची है। संक्षिप्त विलसन शब्दकोश में मीरां शब्द का अर्थ महासमुद्र लिखा गया है। यह पुंलिंग है। इसकी उत्पत्ति मी + रक + उनादि दी गयी है, आप्टे के कोश में मीरः शब्द का अर्थ समुद्र, सीमा पर्वत इत्यादि हैं। मीरः शब्द को आकारान्त कर देने से स्त्रीलिंग में उसका अर्थ नदी या जल होता है। मीरः शब्द की तरह इरः का अर्थ क्षीर सागर होता है। इरा शब्द स्त्रीलिंग में पृथ्वी, सरस्वती इत्यादि होता है। इरावती एक नदी का नाम है। इर धातु का अर्थ जानना है। मि धातु का अर्थ देखना, स्थापित करना है। मी या मि + इरा= मीरा। इससे यही प्रतीत होता है कि, मीर या मीरा शब्द सस्कृत है।

"मूता नैणसी" ग्रन्थ के २य भाग २१७ पृष्ठ में बारहट बीठू जी के एक दोहे में मीरा शब्द मिलता है। यह ग्रन्थ १३८८ ई० में लिखा गया। ओझाजी ने 'जोधपुर राज्य का इतिहास' के प्रथम खण्ड ३२६ पृष्ठ में राव मालदेव की एक कन्या का नाम मीरा उल्लेख किया है। दलाल जेठालाल वाड़ीलाल ने लिखा है, *मीरांबाई के जन्म ग्रहण के समय अलौकिक ज्योति प्रकाशित हुई थी। इसीलिए इस नवजात शिशु का नाम* मही + इरा अर्थात् मीरा हुआ। मही का अर्थ है पृथ्वी, इराका अर्थ तेजः अर्थात् पृथ्वी का तेज है।

मीरा सचमुच ही विशुद्ध भक्ति-माहात्म्य जगत् में प्रचार करके अपने पिता रतन सिंह की कन्या-रत्न ही बनी थीं। पण्डित केशव राम काशी राम शास्त्री ने "कवि चरित" के प्रथम भाग में उल्लेख किया है कि, 'मीरा' शब्द की उत्पत्ति "मिहिर" शब्द से हुई है। मिहिर का अर्थ सूर्य्य होता है।

नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है कि मीरा शब्द की उत्पत्ति मीरा से हुई है (राजस्थानी साहित्य उदयपुर, वर्ष १, अंक ७) मीरांबाई ने स्वयं लिखा है :—

> मेड़तिया घर जन्म लियो है,
> मीरां नाम कहायो ।

अर्थात्—मेड़तिया के घर में मैंने जन्म लिया है—मीरां नाम है ।

पितृवंश का परिचय

मारवाड़ अधिपति राव रिणमल के पुत्र जोधा जी इतिहास प्रसिद्ध वीर थे । जोधाजी ने (जन्म १४१५ ई०, मृत्यु १४८८ ई०) अपने नाम के अनुसार जोधपुर नगर स्थापित किया था । उनके १९ पुत्र थे और शृंगार देवी नाम्नी एक कन्या थी। कन्या का विवाह सीसोदिया वंश के राणा रायमल्ल के साथ हुआ था । राव रिणमल्ल की बहन हंसकुमारी के साथ महाराणा लाखा सिंह ने विवाह किया था । राव जोधाजी के चतुर्थ और पंचम पुत्र राव दूदाजी और वरसिंहजी जालौर के सोनीगरा चौहानराज की कन्या रानीचाँद कुँवर के गर्भ से उत्पन्न सन्तान हैं । राव दूदा जी परम विक्रमी पुरुष थे । दूदाजी का जन्म १४४० ई० में (विक्रमीय १४९७ आषाढ़ शुक्ल १५) को हुआ । १४६१ ई० में राव जोधाजी ने अपने दोनों पुत्रों को बहुत सेना समेत मेड़ता-विजय के लिए भेजा । दूदाजी ने मालव के सुलतान मोहम्मद खिलजी (१४३६-१४६९ ई०) और अजमेर के शासक से मेड़ता और उसके समीपस्थ स्थानों को जीतकर राज्य स्थापित किया । मेड़ता में चतुर्भुजजी के मन्दिर और किले की स्थापना की । १४६१ ई० शुक्ल वैशाख ३ तारीख से जोधाजी के दोनों पुत्र मेड़ता में रहने लगे । इसी दूदाजी से मेड़तिया का प्रसिद्ध राजवंश आरम्भ हुआ । मेड़ता का संक्षिप्त इतिवृत्त यह है कि राजपूताना के समस्त क्षत्रिय वंशों में राठौर वंश

की सख्या सबसे अधिक है। फिर राठौर वश में मेड़तिया शाखा की सख्या अधिक है।

मेड़ता अजमेर से २० कोस पश्चिम और जोधपुर से ४० कोस पूरब अवस्थित है। मेड़ता का यथार्थ नाम महारेता या मान्धातृपुर है। अपभ्रंश में मेडता हो गया है। बहुसहस्र वर्ष पूर्व राजा मान्धाता यहाँ रहते थे। इस नगर की चारो ओर लाल पत्थर का प्राचीर आज तक विद्यमान है। बहुत दिनों तक यह नगर नाग वशीय राजाओं के अधिकार में था, इसके बाद यह प्रतिहारियों के अधीन चला गया। इन प्रतिहारियोंके हाथ से यह मुसलमानों के हाथ में चला गया। उसके बाद राव दूदाजी इस नगर के अधीश्वर हुए। राव दूदा जी ने चतुर्भुजजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। आज तक चतुर्भुजजी का मन्दिर विद्यमान है। आनन्द का विषय यह है कि, चतुर्भुजजी के मन्दिर की दीवालों पर मीराँबाई की प्रिय भजनावली अति सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है। दूदा जी ने बहुत से प्रासादों का निर्माण किया। उनके समय में मेड़ता एक ऐश्वर्यशाली नगर में परिणत हो गया।

दूदाजी की दो रानियाँ थीं। प्रथम थीं सीसौदिया वंश की चन्द्र कुँवर और द्वितीय थीं चौहान वशीय मृग कुँवर। दूदाजी के पाँच पुत्र थे और कन्या एक थीं। १५१५ ई० में दूदाजी के शरीर त्याग करने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव मेड़ता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। १५२५ ई० में वीरमदेव अपने भाई रतन सिंह और रायमल्ल को साथ लेकर चार सहस्र सैन्यसहित राणा सागा या संग्राम सिंह की सहायता के निमित्त कन्हवा युद्ध में गये और वहाँ दोनों भाइयों की प्राणहानि बाबर के हाथ से हुई। १५४३ ई० में (सवत् १६०० फाल्गुन मास) वीरमदेव ने शरीर त्याग किया। वीरमदेव की मृत्यु के बाद जयमल्ल मेड़ता के अधिपति हुए। रायमल्लदेव ने २२ बार मेड़ता पर आक्रमण किया था। अन्तिम बार अजमेर के सूबेदार की सहायता से मेड़ता पर पूरा अधिकार पा गये।

दुदाजी के चतुर्थ पुत्र रतन सिंह कुड़की (चौकड़ी-महिला मृदुवाणी पृष्ठ ५६) बाजोली प्रभृति बारह गांव जागीर रूपमें पा गये। रतन सिंह कुड़की ग्राम में रहते थे। वे साहसी और युद्धप्रिय थे। उनकी ही एक मात्र नन्दिनी थीं मीरांबाई। मीरांबाई के जन्म के ४-५ वर्ष बाद ही उनकी माता की मृत्युहो जाने पर दूदाजी मीरां को अपने ही पास लाकर पालन करने लगे। १५२७ ई० में बाबर और सांगा के साथ होनेवाले कन्हवा युद्धमें रायमल्ल और रतन सिंह निहत हुए।

पितृ-वंश तालिका

रावचूंडाजी
(जन्म – १३७७ ई० । राजत्वकाल – १३८३ – १४२३ ई०)

- हंसकुमारी
- रावरिड़मल — जन्म १३९२ ई० रा० का० १४२३-१४३८ ई०
  - राव जोधाजी — जन्म १४१५ ई० रा०, का० १४३८-१४८८ ई०
    - राव दुदाजी
    - रावसातलजी — रा० का० १४८८-९१
    - सूजाजी — जन्म – १४३९ ई० रा० का०१४९१-१५१५
      - राव बाघाजी — जन्म १४५७ - मृत्यु १५१४ रा० का० १४८८-९१
        - गागाजी — रा० का० १५१५ - १५३१
          - रावमालदेव
    - शृंगार देवी= राणा रायमल्ल
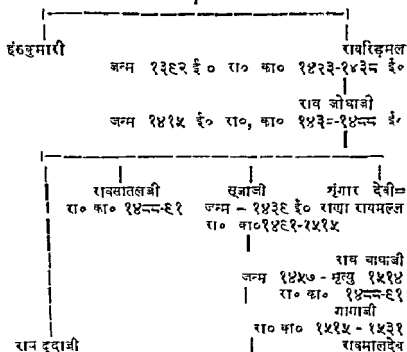
राव दूदाजी
जन्म १४४०—१५१५

रावमालदेव
रा० का० १५३१—१५६२

रायमल्ल
ज० १४७४ मृ० १५२७

बीरमजी
ज० १४७७ मृ० १५४३
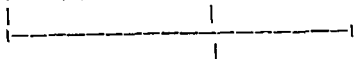
रतनसिंह
ज० १४७४मृ०१५२७

जयमल्ल
ज० १५०७ मृ० १५६७

मीरांबाई
ज० १५०३ मृ० १५४६

पति-वंश का इतिहास

चित्तौड़ के गहलोत या सीसोदिया वंश के इतिहास की प्राचीनता और ख्याति भारत के इतिहास में अन्यतम स्थान अधिकार कर चुकी है। राणा लाखाजी ने १३८२ ई० में सिंहासनासीन होकर १५ वर्ष राजत्व किया। उनके पुत्र मोकलजी अल्प वय.क्रम में सिंहासनासीन होकर षडयन्त्र में पड़ कर १४३३ ई० में निहत हुए। मोकल जी के पुत्र इतिहासप्रसिद्ध राणा कुम्भ या कुम्भकर्ण अनेक युद्धों में विजय पाकर १४६८ ई० में अपने पुत्र उदय सिंह द्वारा मारे गये। फिर उदय सिंह सहोदर भ्राता रायमल्ल द्वारा सिंहासनच्युत हुए। रायमल्ल के पुत्र संग्राम सिंह ने राणा सांगा नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। उनका जन्म १४८२ ई० में हुआ और वे १५०६ ई० में सिंहासनारुढ हुए। राणा सांगा ने गुजरात के सुलतान और दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी को पराजित कर अपने राज्य का विस्तार किया। कहा जाता है कि उन्होंने २८ विवाह किये थे। उनको सात पुत्र और चार कन्याएं थीं। पुत्र—भोजराज, कर्णसिंह, रत्नसिंह विक्रमादित्य, उदयसिंह, पर्वतसिंह, और कृष्णसिंह। कन्याएं—कुँवरबाई, गङ्गाबाई, पद्माबाई, राजबाई।

राणा सांगा १५२७ई० में परलोक सिधारे। सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज का जन्म १५०० ई० में (संवत १५५७) हुआ। मेड़ताधिपति वीरमदेव के उद्योग से १५१६ ई० राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार भोजराज के साथ मीरांबाई का विवाह हुआ। इसके कई वर्ष पश्चात् महाराणा सांगा की जीवितावस्था में भोजराज १५२३ ई० में परलोक सिधारे। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद उनके तृतीय पुत्र रतनसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। १५३१ ई० में रतनसिंह की मृत्यु हो जाने पर उनके अनुज विक्रमादित्य या विक्रमाजीत मेवाड़ के सिंहासन पर आसीन हुए।

विक्रमादित्य और उदय सिंह की माता रानी करमेतन ने पुत्रों को मेवाड़ का अधिपति बनाना चाहा था। वे अपने सहोदर सूरजमल्ल के साथ रणथम्भौर नामक स्थानमें मिलकर इसके लिए षड्यन्त्र कर रही थीं। फिर इधर रतन सिंह अपना विस्तृत जागीर सूरजमल के पास रखना पसंद नहीं करते थे। इस समय के बीच ही मालवा और गुजरात के सुलतान के साथ महाराणा का युद्ध हुआ। दोनों युद्ध में ही महाराणा को विजय मिली। इसके बाद रतन सिंह ने सूरज मल की हत्या करने के उद्देश्य से बूँदी जाकर शिकार के बहाने सूरजमल पर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप १५३१ इ० में दानों की ही मृत्यु हो गयी।

रतनसिंह की मृत्यु हो जाने पर विक्रमाजीत मेवाड के राणा हुए। वे अपने स्वभाव और प्रजाजनों पर अत्याचार के कारण राजस्थान के इतिहास में कलंकस्वरूप हो चुके हैं। विक्रमाजीत राज्य में अविचार अत्याचार करते रहे तो उन्हीं दिनों सुयोग पाकर गुजरात के बहादुर शाह ने रायसेन जीत कर १५३३ ई में चित्तौड़ आक्रमण किया। रानी करमेतन ने मुगलसम्राट हुमायूँ को सहायता माँगी, किन्तु हुमायूँ ने स्वधर्मी के विरुद्ध आना नहीं चाहा। बहादुर शाह चित्तौड लूटपाट कर बहुत रत्नभूषण समेत स्वदेश लौट गये। १५३५ ई० में पुन चित्तौड़

आक्रमण करके राजपूत-गौरव चित्तौड़-भूमि अपने अधिकार में ले गये। इसके कई मास बाद बहादुर शाह हुमायूँ के साथ युद्ध में पराजित हुए और गुजरात भाग गये। इस सुयोग से राजपूत अपना खोया हुआ राज्य फिर पा गये थे।

इतनी दुर्गति और दुर्दशा में भी विक्रमाजीत के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे पूर्ववत् प्रजाजनों और सरदारों के ऊपर दुर्व्यवहार करने लगे। अन्त में महाराणा रायमल्ल के पुत्र कुँवर पृथ्वीराज के वर्णसंकार पुत्र रणवीर उनके प्रिय पात्र बन गये और १५३६ ई० में विश्वासघातकता कर के विक्रमाजीत की हत्या कर चित्तौड़ का सिंहासन पा गए। उदयसिंह का प्राणनाश करने के लिए रणवीर सुयोग ढूँढ रहे थे, किन्तु धात्री पन्ना ने अपने पुत्र के बलिदान द्वारा मेवाड़ के राजवंश को बचा लिया। उदयसिंह कुंभलमेर पहुँच कर सरदारों की सहायता से चित्तौड़ राज्य पा गये। महाराणा उदयसिंह ने १५५६ ई० में उदयपुर नगर स्थापित कर वहाँ राजधानी प्रतिष्ठित की। १५६७ ई० में मुगल सम्राट अकबर ने चित्तौड़ आक्रमण किया। इस युद्ध में राठौर वंशीय जयमल्ल ने प्राण त्याग दिया। इसके चार वर्ष बाद उदय सिंह का देहावसान होने पर उनके पुत्र महाराणा प्रताप सिंह ने मेवाड के अधीश्वर होकर पुनः राजपूत गौरव प्रतिष्ठित किया महाराणा प्रताप की वीरत्व-कहानी, स्वाधीनता-प्रियता ने राजस्थान तथा भारत के इतिहास को उज्जल और गौरवमय कर रखा है।

पति-वंश—मेवाड़पति की वंशतालिका

राणा चैत्र सिंह
रा० का १३६४-८२ ई०
|
राणा लाखा = हंसकुमारी

होने के साथ ही दूदाजी ने अपने राजपुरोहित को कुड़की भेजा था। राजपुरोहित प्रति दिन श्रीमद्भागवत से भक्तों की जीवन-कहानी पढ़ कर वीरकुँवर को सुनाते थे। राजवधू एकाग्रचित से भजन-कीर्तन और सत्संग में दिन बिताती थी।

१६५३ई के नवम्बर मास में कुड़की ग्रामदर्शन विषय में जो विवरण १६५४ई की फाल्गुन संख्या 'प्रवर्तक' में मैंने प्रकाशित किया था उसे ही यहां उद्धृत कर रहा हूँ।

मेड़ता सिटी से १८ मील दूरवर्ती रीवांगढ है। वहाँ से मरुभूमि मार्ग में आठ मील की दूरी पर कुड़की ग्राम है। दिन में प्राय दो बजे रीवां में पहुँचा। कुड़की जाने का कोई प्रशस्त रास्ता नहीं है। किसी किसीने प्रस्ताव किया ऊँट की सवारी से चलें। मैंने कभी ऊँट की सवारी नहीं की थी। परन्तु झकझोरी सही न जायगी। कोई साथी न मिलने पर अकेले ही यात्रा कर दी। मीरां का जन्म-स्थान देखने के लिए प्राण इतना उतावला हो गया कि कितनी जल्दी कुड़की दर्शन करूँगा यही सोचने लगा। हठात् एक रीवांवासी मित्र ने आकर कहा इस अनजान पथ से अकेले जाना उचित नहीं है। थोड़ी ही देर बाद बाबूलाल गौड़ नामक एक युवक को मेरे साथ लगा दिया। इस मित्र का उपकार मैं जीवन में न भूलूँगा। समस्त पथ बालुकामय है। पैर रखने ही बालू में धस जाते हैं। खींचकर उठाने पड़ते हैं। फिर बालू में छोटे-छोटे काँटे पड़े हुए हैं। मीरांबाई का नाम लेकर चलने लगा। भीषण प्यास लग गयी। यह तो मरुभूमि है, जल कहाँ मिलेगा। मरुभूमि-पर्यटक को जल न लेकर कभी न चलना चाहिये। अधिक रास्ता चलने के बाद मैं अत्यन्त क्लान्त हो गया। कंठ एकदम ही सूख गया। अब आगे बढ़ने की शक्ति नहीं रही। हठात् स्मरण हो गया—मैंने मीरांबाई नाटक में लिखा है—मीरां चित्तौड़ छोड़कर श्रीवृन्दावन यात्रा करते समय राह में प्यास लगने से अचेतन हो गयीं थीं। तब बालक-वेश-धारी

भक्त शिरोमणि मीरॉबाई (जोधपुर दुर्ग के प्राचीन संग्रह से)

(१) भारतेन्दुजी कृत पुरावृत्त संग्रह में लेख।

मीरांबाई का जन्म

श्रीभगवान अपने प्रिय भक्तों को लीला-क्रीड़ा करने के लिए युग युग में मर्त्यलोक में भेजा करते हैं। इस लीला-क्रीड़ा में नारी-पुरुष, ब्राह्मण-क्षत्रिय भेदाभेद नहीं है। प्रभु किस प्रकार किसके ऊपर कृपा करते हैं यह बताना कठिन है। श्रीभगवान का प्रेम-धर्म प्रचारार्थ तृष्णार्त भक्त जनों को शांति रूपी वारि दान करने के हेतु शुष्क मरुस्थल राजस्थान में राठौर क्षत्रिय राजवंश में मीरांबाई आविर्भूत हुईं। दलाल जेठालाल वाडीवाल ने लिखा है, मीरांबाई के जन्म-ग्रहण काल में एक अलौकिक ज्योति प्रकाशित हुई थी। राठौर-कुल के राव दूदाजी के पुत्र रतन सिंह की अलौकिक ज्योतिर्मती एक मात्र कन्या सन्तान मीरांबाई हैं। मीरांबाई की जन्म-तिथि वि० स० १२६१ श्रावण सुदी १ शुक्रवार है। जोधपुर राज्य द्वारा सन् १६४७ ई० में तीसरी बार मुद्रित "जोधपुर राज्य का राष्ट्रीय गीत' नामक पुस्तक में मीरां के जन्म और निधन की तिथियाँ दी गयी हैं। यही तिथियां राज्य के महकमें तवारीख (इतिहास कार्यालय) के पुराने 'रेकार्ड" के लाल लुंगी वाले रजिस्टर (पृष्ठ ४५) में लिखी हैं। इस रजिस्टर (बही न० ४७) में जोधपुर के राजा-महाराजाओं की रानियों व सन्तानों का वृत्तान्त राणीमगा भाटों (ब्रह्म-भट्टों) की पुरानी वहियों से लिखा गया है। मीरांबाई का जन्मस्थान कुड़की ग्राम में है। ॐमीराबाई ने अपने भजनों में अपना वंश परिचय दिया है, किन्तु कहीं भी माता पिता का नामोल्लेख नहीं किया है। मीरांबाई की माता झाला राजपूत सुरतान सिंह की कन्या वीर कुँवर थीं। मीरांबाई के जन्म के पहले वीर कुँवर को एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। उनका नाम गोपाल सिंह था। जन्म के कुछ ही दिन बाद उनकी मृत्यु हुई। ऐसी किंवदन्ती है कि मीरा की एक छोटी बहन ने जन्म ग्रहण किया था। उसका नाम था अनूपाबाई यह कन्या कुछ ही दिन जीवित थीं। मीरांबाई के मातृगर्भ में उपस्थित

ॐ मारवाड़ राज्य का भूगोल पृष्ट ८२
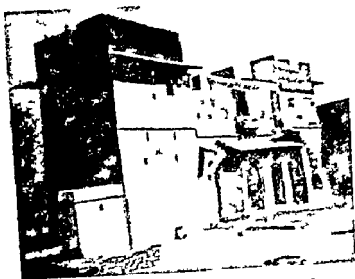
मेडता तहसील के अन्तर्गत कुडकी ग्राम में
मीराँबाई के जन्मस्थान पर मन्दिर
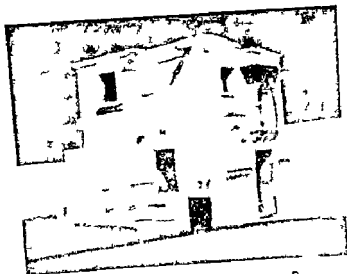
मेडता शहर में मीराँबाई का भजन कुटीर

श्रीकृष्ण उनको जल देकर ही अदृश्य हो गये थे, और जलतृष्णा से मेरे प्राण उड़ जायँगे यह कभी हो ही नहीं सकता। मन ही मन सान्त्वना पाकर मैं आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर जाने के बाद कुछ गृह दिखाई पड़े। रास्ते के पास मुझे दिखाई पड़ा एक बालिका-वधू कुएँ से जल खींच रही है। जल माँगते ही उसने पूछा—तुम कौन जात हो। मेरा उत्तर पाकर वधू ने जल दिया। आनन्द के साथ जल पीकर फिर मैंने रास्ता पकड़ लिया। सन्ध्या को कुड़की पहुँच गया। मरुभूमि के बीच कुछ गृह हैं। पेड़-पौधे नहीं के बराबर हैं। मेड़ता के श्रीयमुनाप्रसादजी ने अपने छात्र श्रीहस्तीमल जैन को मेरे खाने-पीने, ठहरने की व्यवस्था कर देने के लिए एक पत्र दिया था। श्रीहस्तीमल नवीन युवक हैं। मुझे उनसे सादर अभ्यर्थना मिली। थोड़ी ही देर में गाँव में सनसनी फैल गयी, गाँव में एक ब्राह्मण आया है। कुड़की में चारभुजा मन्दिर है। मन्दिर में थोड़ी देर विश्राम करके मीराँबाई का जन्मस्थान देखने रवाना हो गया। जन्मस्थान ऊँचे टिला पर है। दूर से एक दुर्ग की भाँति जान पड़ता है। श्रीयावावर सिंह इस गृह के मालिक हैं। यह ठाकुरजी वृद्ध हैं। जागीरदार से प्रतीत हुए। उन्होंने स्वयं ही कहा - मीराँबाई का वंशधर हूँ। मीराँबाई के विषय में अनेक आलाप-आलोचना होती रही। उनके पास मीराँबाई के विषय में बहुत लिखित सामग्री पड़ी हुई है। उन्होंने मुझे ओझाजी और मुन्शी देवीप्रसादजी कृत मीराँबाई की जीवनी पढ़ने को कहा। अवश्य ही यह तथ्य मैं बहुत पहले ही जान गया था। श्रीयावावर सिंह ने विशेष रूप से कहा—महाराणा कुम्भ के साथ मीराँ का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। मीराँ थीं भोजराज की स्त्री। उन्होंने और भी कहा—मीराँबाई का पूजित शालिग्राम आजतक चारभुजा मन्दिर में है। रात अधिक हो जाने से मीराँबाई का जन्म-स्थान उस समय देखा नहीं गया। चारभुजा मन्दिर में मैं लौट आया। भोजन करके समवेत ग्रामवासियों के साथ मीराबाई के जीवन-इतिहास

की आलोचना करने लगा।...धन्य है मीराबाई! धन्य है यह पुण्यभूमि कुड़की। दूसरे दिन प्रातःकाल मीराबाई का जन्मस्थान दर्शन करके फोटो ले लिया। जन्म स्थान एक छोटा मन्दिर है। तुलसीकुञ्ज है। मरुभूमि के और किसी भी स्थान में ऐसे तुलसी के पौधे दिखाई नहीं पड़ते। जन्म स्थान की पवित्र मिट्टी और तुलसी पत्री साथ लेकर मीरा को श्रद्धार्घ्य अर्पण करके मैंने कुड़की से प्रस्थान किया।

मीराबाई ने 'नरसीं जी रो माहेरो' में लिखा है—

> क्षत्री बंस जनम मम जानी,
> नगर मेड़ता आनी।

मेड़ता नगर के क्षत्रिय वंश में मेरा जन्म हुआ, यह मैं जानती हूँ।

> मेड़तिया घर जनम लियो है,
> मीरा नाम कहायो।

मेड़तिया घराने में मेरा जन्म हुआ है। मेरा नाम है मीरा। मीराबाई की इन दो उक्तियों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मेड़तिया के क्षत्रिय वंश में उनका जन्म हुआ था और उनका नाम मीरा था। मीराबाई की जन्मतिथि के सम्बन्ध में मतभेद है। 'चतुरकुल चरित्र' के मत से मीरा की जन्मतिथि श्रावण शुक्ल १ संवत् १५६१ (१५०४ ई०) है। मद्रास के G A Neston ने 'वल्लभाचार्य' पुस्तक में मीरा का जन्म १५०४ लिखा है। पं० रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी शब्दसागर' में १५१६ ई० उल्लेख किया है। 'मीराबाई की पदावली' ग्रन्थ के लेखक परशुराम चतुर्वेदी ने मीराबाई का जन्मकाल १४९८ लिखा है। 'मीरा जीवनी और काव्य', 'मीरा माधुरी', 'मीरा' (इन्दौर) 'मीराबाई प्रभृति' ग्रन्थों में मीराबाई का जन्म सन् १५०३ ई० से उल्लिखित है। विभिन्न मतों से यह ही अनुमान में आता है कि मीराबाई ने १४९८ ई० के बाद ही जन्मग्रहण किया था।

बाल्य-लीला

श्रीभगवान जिसके सहयोग से जगत् में भक्ति माहात्म्य और प्रेम-धर्म का प्रचार करना चाहते हैं उस प्रियजन की लीला क्रीड़ा अति शिशुकाल से ही प्रारम्भ होने लगती है। प्रभु के साथ मीरा की लीला-क्रीड़ा शिशुकाल से ही आरम्भ हुई। मीराबाई की बाल्य-लीलाके सम्बन्ध में विविध कहानियां विद्यमान हैं। भक्त मीरा ग्रन्थ के सम्पादक श्री दया-शङ्कर दूबे, एम० ए०, एल० एल० बी०, अध्यापक, इलाहाबाद विश्व विद्यालयने लिखा है —अति शैशव अवस्था में मीरा ने एक रात को सपना देख अपनी मां से कहा था—

माई म्हांने सुपने में परण गया जगदीस।
अङ्ग अङ्ग हलदी मैं करी जी सुधे
भीज्यो गात।
माई म्हांने सुपने मे परण गया दीनानाथ॥
छप्पन कोट जहां जान पधारे
दूलह श्री भगवान।
सुपने में तोरण बाधियो जी सुपने में आई जान।
'मीरा' के गिरिधर मिल्या जी पूरब जन्म को भाग
सुपने में म्हांने परण गया जी हो गया अचल सुहाग॥

मां, सपने में जगदीश के साथ मेरा विवाह हो गया है। विवाह के समय अपने अङ्ग अङ्ग में मैंने हलदी लगायी है। छप्पन कोटि बराती समेत मेरे वर श्री भगवान आये थे। सपने में मैंने देखा है, तोरण बांधा गया था। मेरे वर आये थे। पूर्व जन्म के भाग्य से गिरधर को पति के रूप में पा गयी हूँ। सपने में मेरे साथ ब्याह कर गये हैं—मेरा असीम सौभाग्य है।

प्रभु के साथ मीरा के विवाह के साथ-साथ तरह तरह की लीला क्रीड़ाएं आरम्भ हुईं। मीरा ने जो गाया है—"गिरधर मिल्या जी"

गिरिधर को पा गयी हूँ इस गिरिधर गोपाल के साथ परिचित होने की घटना यह है कि एक दिन एक वैष्णव महात्मा कुड़की ग्राम में मीरा के घर अतिथि हुए। साधु महात्मा के आगमन से सभी आनन्दित हुए। उनकी सेवा की सब तरह से व्यवस्था की गयी। महात्माजी के साथ उनके इष्ट गिरिधर गोपाल की मूर्ति थी। साधुजी इष्ट को भोगआरती देकर प्रसाद ग्रहण करते थे। मीराबाई साधु के पास प्रभु की मूर्ति देख कर आनन्दसे विभोर हो गयीं और इस मूर्ति को पाने के लिए धरना दे बैठीं। साधुजी अपने इष्टदेव को दूसरों को अर्पण कर देंगे, यह क्या सम्भव है। इधर किन्तु मीरा अपनी माँग छोड़ देने को राजी नहीं थीं। मीराने घोषणा कर दी—यदि मूर्ति न मिलने से मैं आहार-निद्रा त्याग दूँगी। भीषण समस्या दिखाई पड़ी। समस्या का समाधान किसी तरह भी नहीं हुआ। साधुजी अपने इष्ट को छोड़ने को तैयार नहीं थे। इधर मीरा भी मूर्ति लिये बिना शान्त नहीं होंगी। समस्या का समाधान प्रभु ने ही कर दिया—रात को साधु को प्रभु ने सपने में आदेश दिया—'तुम यदि अपना मंगल चाहते हो तो अविलम्ब ही इस बालिकाके हाथ में मूर्ति समर्पण करो।' साधु अपने इष्ट-देव का आदेश पाकर मीरा के हाथ में इष्ट देव को देकर अपने गन्तव्य मार्ग में चले गये।* साधु जी के इष्ट थे गिरिधर गोपाल। उसी दिन से मीरा ने इस गिरिधर गोपाल की सेवा-पूजा में अपने आप को सौंप दिया।†

और एक दिन की घटना है—बारातियों का एक दल ठाट-बाट के साथ मीरा के पिता के घर के पास से जा रहा था। अबोध शिशु मीरा ने उत्सुक नेत्रों से अपनी माँ से पूछा—'मा मेरा वर कौन होगा।

---

* मीरा बाई की शब्दावली, मीरामन्दाकिनी, भक्त मीरा, मीरा बाई की पदावली।

† मीरा सुधासिन्धु ग्रन्थ के अनुसार यह घटना गुजरात में डाकोरजी के दर्शनकाल में हुई थी।

मां ने गृहस्थित गोपाल को दिखा कर कहा—'यह गिरिधर-गोपाल ही तुम्हारे वर हैं।' मीरा का हृदय आनन्द से भर गया। उसी समय से मीरा के हृदय-मर्म में ग्रथित हो रहा—

मेरे तो गिरिधर गोपाल
दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट
मेरो पति सोई॥

गिरिधर गोपाल के बिना मेरा और कोई नहीं है—जिसके सिर पर मोर मुकुट है, वे ही मेरे पति हैं। तभी से सोते समय, सपना देखते समय, जागते समय, खाते-पीते समय मीराके एकमात्र साथी हो गये गिरिधर गोपाल।

मातृ-वियोग

मीराबाई बहुत दिन तक मातृ स्नेह न पा सकीं। 'मीरा जीवनी और काव्य ग्रन्थ' के लेखक कहते हैं—मीरा के जन्म के दो वर्ष बाद ही मीरा ने माता को खो दिया। मीरा माधुरी, भक्त मीरा प्रभृति ग्रन्थों में मिलता है—मीरा अन्ततः आठ वर्ष की अवस्था में मातृहीन हुई थीं, क्योंकि मीरा ने अपनी मां को जगदीश के साथ अपना विवाह होने का स्वप्न वृत्तान्त सुनाया था। दो वर्ष की बच्ची के लिए ऐसी स्वप्न-वर्णना सम्भव नहीं है। इसलिए मीरा का मातृ-वियोग कुछ अधिक अवस्था में ही हुआ था, एक दम शिशुकाल में नहीं हुआ। मीरा मातृविहीन होकर अपने पितामह दूदाजी के पास चली गयीं। दूदाजी परम वैष्णव थे। दूदाजी प्रति दिन महाभारत की भक्ति-रसपूर्ण लीला-कहानी पढ़कर मीरा को सुनाते थे। भक्तिरस का अङ्कुर बाल्यकाल से ही मीरा के हृदय में संजीवित हो गया था। दूदाजी जिस प्रासादमें बैठकर मीरा को महाभारतादि ग्रन्थ पढ़कर सुनाया करते थे वह भवन आज भी विद्यमान है। मेड़ता नगर भ्रमण करते समय उसके दर्शनका सौभाग्य ग्रन्थकार को प्राप्त हुआ था। शास्त्रालंबन की प्रबल आकांक्षा मीराके हृदय में बाल्यकाल से ही

जाग उठी। मीरा बाल्यकाल में कुल-पुरोहित गदाधर या गजाधर पण्डित के पास बैठकर पुराणादि ग्रन्थोंका पाठ सुनती थीं। गजाधर गौड़ ब्राह्मण काठिया तिवारी गोत्र के थे। विवाह के बाद पण्डितजीको मीरा चित्तौड़ ले गयीं और वहां उनको उन्होंने मुरलीधर के मन्दिर में पुजारी नियुक्त किया और उनको व्यास उपाधिसे भूषित करके एक हजार बीघा जमीन दान कर दी। आज तक गजाधर पण्डित के वंशधरगण यह सम्पत्ति भोग कर रहे हैं।*

'मीरा सुधासिन्धु' ग्रन्थ में लिखा है कि एक दिन कोई योग पारंगत सन्त विचरते हुए मेड़ता आये। दूदाजी ने श्रद्धा व सत्कारपूर्वक उन्हें श्री चतुर्भुज के मन्दिर में ठहराया। रात्रिको उनके भजन सत्संग का लाभ राव दूदाजी आदि परिवार के साथ साथ प्रजा-जनों ने भी लिया। सन्त संगीत के आचार्य थे। मीरा शान्त भाव से एकाग्रचित्त से इस आनन्द को अपने छोटे से परन्तु विलक्षण मस्तिष्क में समझती रहीं।

रात्रि को सहसा सन्त निद्रा से जाग उठे। किसी के गाने का मधुर स्वर उनके कानों पर टकरा रहा था। उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना तो मन्दिर से लगे महल के रनवास में से स्वर आ रहा था। उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ कि सत्संग के समय जिस राग ताल में उन्होंने पद गाया था वे स्वर वे शब्द पूर्णरूपेण वैसे के वैसे थे। कण्ठ भी अत्यन्त कोमल और मधुर था। पुजारी से उन्होंने जान लिया कि यह मीरा गा रही थीं। सन्त हृदय में प्रसन्न हो गये।

दूसरे दिन सन्त के मुख से सब बातें सुन कर और उनके भाव को तथा मीरा की योग्यता को जानकर दूदाजी ने मीरा को संगीत की शिक्षा देने का निश्चय किया, तदनुसार उन्हें संगीत और योग की भी शिक्षा दी जाने लगी। वे प्रेम से भगवान् के मधुर गुण गान करती और उनके

* मीरा स्मृति ग्रन्थ।

आगे भावमय नृत्य करतीं। उनकी विलक्षण प्रतिमा को देखकर उन्हें शिक्षा देने वाले गुरुजन यही समझते कि वे सर्व विद्या गुण-कला जन्म से ही सीख कर आयी हैं, और वे तो केवल निमित्त मात्र ही थे।

विवाह

मीराबाई का विवाह तो जगदीश के साथ सपने में सम्पन्न हो चुका था। मीराबाई ने तन-मन, प्राण श्रीगिरधर को अर्पण कर दिया था। इसलिए सांसारिक विवाह-बन्धन में मीराबाई सम्पूर्ण अनिच्छुक थीं। किन्तु कुल-मर्यादानुसार रत्न सिंह ने मीराबाई की इच्छा न रहने पर भी उनके विवाह का आयोजन किया। प्रभु की भावना में ही मीरा दिन रात डूबी रहती थीं—विवाह उनके लिए बाह्यिक-व्यापार मात्र था। वे प्रभु के निकट मन-प्राण अर्पण करके सांसारिक इन्द्रिय-सुख से सम्पूर्ण निश्चिन्त थीं। एकमात्र भगवत्-कृपा के बिना भोग-विनाशी सांसारिक जीवों के लिए यह विश्वास सम्भव नहीं है। इस युग में बंगदेश में श्रीश्रीठाकुर रामकृष्णदेव और श्रीश्रीमाता ठाकुराइन सारदा देवी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

राजस्थान में मेवाड़ का सीसोदिया और मारवाड़ का राठौर वंश अति प्राचीन हैं। इन दोनों वंशों में परस्पर का विवाह-सम्बन्ध बहुत पहले से ही चला आ रहा है। मेवाड़ और मारवाड़ के बीच प्रथम विवाह का सम्बन्ध मेवाड़ के राणा लाखा के साथ मारवाड़ के राव चूँड़ा जी की कन्या हंसकुमारी के साथ हुआ था। उसके बाद रायमल्ल के साथ जोधाजी की कन्या शृङ्गार देवी का विवाह हुआ। मारवाड़ के राव गंगाजी के साथ मेवाड़ के राणा सांगा की कन्या पद्मावती का विवाह हुआ। इस प्रकार दो इतिहास प्रसिद्ध वंशों में विवाह-सम्बन्ध चलता रहा।

मेवाड़ के महाराणा सांगा या संग्राम सिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ राव वीरमदेव के सहयोग से मीराबाई का विवाह १५१६ ई० में सम्पन्न हुआ।

राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज थे। ये अपने पिता के समान ही बड़े साहसी और वीर थे। सुगठितदेह और गौरवर्ण के ये रूपवान राजकुमार बड़े ही विचारवान और धीर स्वभाव के थे। राजकीय विषयों में भी इनके विचारों की पूछ होती थी। ये स्पष्ट वक्ता और बड़े ही स्वदेशाभिमानी थे। इन्हीं के साथ मेवाड़ के राव वीरमदेव जी ने मीराबाई की सगाई निश्चित की थी।

महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी ने उदयपुर राज्य के इतिहास में लिखा है—१५१६ ई० में राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ मीराबाई का विवाह अनुष्ठित हुआ था। वीरविनोद ग्रन्थ में मिलता है, मेवाड़ के भोजराज के साथ मारवाड़ के रत्नसिंह की कन्या मीराबाई का विवाह हुआ। मीराबाई बड़ी धार्मिक और साधु-सन्तों का सम्मान करनेवाली नारी थीं। 'मीरा' ग्रन्थ लेखक श्यामापति पाण्डेय (इन्दौर) ने लिखा है कि, १५१६ ई० में भोजराज के साथ मीरा का विवाह हुआ। मीरा अनिन्द्य सुन्दरी नारी थीं। Poems by Indian Women, (Heritage of India series) के लेखक Margarat Mecnikal ने लिखा है—मीरा के पति भोजराज थे। मीरा-मन्दाकिनी ग्रन्थ में मिलता है—भोजराज के साथ विवाह हो जाने के बाद मीरा मेवाड़ गयीं और शिष्टाचार के साथ अपने पतिदेव और इष्टदेव की सेवा करने लगीं।

एक रानी गढ़ चित्तौड़ की
मेड़तनी निज मगति कुमायँ
भोजराज की जोड़ाकी

चित्तौड़ गढ़ की रानी भक्तिप्राण मेड़तनी (मेड़ता राज्य में जन्म-

महणकारिणी) कुमार भोजराज की जीवनसंगिनी हैं। 'मीराबाई की शब्दावली' ग्रन्थ में मिलता है—मीराबाई पति की जीवितावस्थामें पति की अत्यन्त प्यारी थीं। उनको कभी उन्होंने अप्रसन्न नहीं किया।

विवाहित-जीवन

मीराबाई का विवाह क्या सांसारिक भोग-सुख के लिए हुआ था? वे तो शिशुकालसे ही सांसारिक जीवन के प्रति सम्पूर्ण अनासक्त थीं। इस कारण एक गिरिधरके अतिरिक्त किसी अन्य पति की आवश्यकता क्या थी? भोगवासना के बीच रहकर सांसारिक जीवों के लिए इन सब विषयों को क्षण भरके लिए भी अनुभव करना कठिन है। एकमात्र भागवत-जीवन सन्धानी व्यक्तिके अतिरिक्त इसकी सत्यता की उपलब्धि कौन कर सकता है? भारत ऋषियों का देश है। युग-युग में महात्मा महापुरुषगण आविर्भूत होकर निष्काम, अनासक्त जीवनयापन का आदर्श जाति के सामने रख गये हैं। मीरा का भोजराज के साथ किसी प्रकार का दैहिक सम्बन्ध था या नहीं बताना कठिन है। जिस मानवी ने बाल्यकाल से देह-मन-प्राण अपने इष्ट श्रीगिरधर को समर्पण कर दिया था, उनको सांसारिक सुख-भोग करने का अवसर कहां था? सांसारिक सुख-सम्भोग पुत्र-कन्या-लाभ—सांसारिक जीवों का धर्म है। मीराबाई तो इन सबके बहुत ऊपर थीं। भोग-विलासी व्यक्ति के लिए अनासक्त जीवन-यापन असम्भव व्यापार हो सकता है। किन्तु भगवन्मुखी के लिए यही साध्य अवश्य है। एक दिन एक महात्मा ने एक कहानी सुनायी थी—'एक कामातुर राजा ने महात्मा जी से प्रश्न किया था—सांसारिक जीव के लिए भोग-वासना से विरत रहना क्या सम्भव है? महात्मा जी ने हठात् उससे कह दिया 'सात दिन बाद तुम्हारी मृत्यु होगी।' राजा इतने कामुक थे कि अपनी कामवृत्ति चरितार्थ करने के अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं समझते थे। हठात् महात्मा जी के मुंह

मे अपनी मानी मृत्यु की बात सुनकर वे मुरझा गये। प्रति दिन महात्मा जी के सामने आकर उनका आशीर्वाद माँगने लगे। महात्मा जी के पूछने पर कि उनका प्रति दिन कैसे बीत रहा है, राजा ने कहा—मैं दिन रात केवल मृत्यु की विभीषिका देख रहा हूँ और कोई भी चिन्ता मुझे नहीं है। इस प्रकार सात दिन बीत जाने पर आठवें दिन महात्मा जी ने राजा से पूछा—इन सात दिनों के भीतर एक दिन के लिए भी क्या आपका कामभाव जाग्रत नहीं हुआ। राजा ने कहा—काम-भाव का नाम निह्न तक भी मेरे मन में नहीं आया। महात्मा जी ने कहा—जिसका शरीर-मन सम्पूर्ण रूप से श्री भगवान में अर्पित हो चुका है, इस लोक में पंचभूतों को देह में रहने पर भी, उसके मन में कोई और भाव उपस्थित नहीं हो सकता।

मीराबाई की भजनावली का गुह्य रहस्य सम्पूर्णरूप से हृदयंगम कर सकने से समझ में बात आ जायगी कि वे किस स्तर की साधिका थीं। अन्यथा जिस भाव के भावुक जो हैं उसी प्रकार वे समझेंगे।

विवाह के बाद मीराबाई पतिगृह में (मेवाड़ में) गयीं तो सास ने उनको आदर के साथ ग्रहण किया। चित्तोड़ के राणा क्षत्रिय हैं। राज-परिवार में रजोगुण सम्वर्धित है। राजसिक ठाटबाट में उन लोगों की शोभा है। चित्तोड़ की नवागता रानी मीराबाई विलास-व्यसन में, संगीत-नृत्य में, यौवनोचित भाव में राजकुमार का मनोरंजन करें, यही राज-परिवार का विधान है। किन्तु इस विषय में सम्पूर्ण विपरीत बात हुई। मीरा तो इस जगत् से सम्पूर्ण पृथक् थीं। कहाँ राजैश्वर्य, रजोगुण का प्रभाव और कहाँ तपस्विनी सात्विकी कठोर तपश्चर्या। बाल्य-यौवन वार्धक्य, मीरा के लिए समान हैं। यौवन में यौवन-सुलभ चपलता उनको स्पर्श न कर सकी थी। उन्होंने इस चपलता के मूल में शिशुकाल में ही कुठाराघात कर दिया था। मन को वे जीवन-प्रभात में ही प्रभु का प्रेम-डोरी में बांध चुकी थीं। मन फिर किस प्रकार शरीर का धर्म पालन करती।

इसलिए विवाहित जीवन के आरम्भ में यौवन की कोई चंचलता उनके जीवन में प्रकट नहीं हुई। विलास व्यसन भोग सम्पद सब ही मीरा के लिए तुच्छ था। इन सबकी तरफ दृष्टिनिक्षेप करने का समय उनके पास नहीं था। इस संसार में मीरा के एकमात्र गिरधारी नागर थे। उनको लेकर ही सारी लीला क्रीड़ाएं थीं। नृत्य, आहार-विहार सब ही गिरधारी लाल को प्रसन्न करने के लिए थे।

पतिगृह में पहुँचते ही सासजी ने पुत्रवधू को सब प्रकारके मंगल-कृत्यादि से वरण कर लिया।

भक्ति-माहात्म्य-चरितम् (१० श्लोक) ग्रन्थ में मिलता है—

> 'इति श्वश्रूवच श्रुत्वा मीरा प्राहकृताञ्जलिः।
> विना गिरिधरं चान्यं नमस्कुर्यामहं नहि॥

चित्तौड़ के राज्य परिवार की प्रथा के अनुसार मीराबाई की सास उनको राज्य परिवार की इष्ट देवी श्रीदुर्गा के पास ले गयीं। उन्होंने देवी को प्रणाम करने को कहा। मीराबाई ने उत्तर दिया, गिरिधर के बिना किसी अन्य को मैं प्रणाम नहीं करती। यह प्रसंग भक्तमाल प्रभृति ग्रन्थों में भी मिलता है। साधारण जनों को यह संकीर्णचेता की उक्ति-सी प्रतीत होती है। किन्तु इसका गुह्य रहस्य समझना सहज नहीं है। इस प्रसंग में 'मीरा माधुरी' ग्रन्थके लेखक कहते हैं, 'गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस के मंगलाचरण में शिव की बातों का वर्णन विशेष रूप से किया है, सर्वोपरि श्रीकृष्ण गीतावली भी लिखी है। किन्तु गोस्वामी के भक्तों ने गोस्वामी के दोहों का पाठ परिवर्तन करके लिखा है कि गोस्वामी जी के सामने श्रीकृष्ण धनुर्बाणधारी राम हो गये।' यह बात स्तुति मात्र है। इस दोहे से यह भी प्रतीत हो सकता है कि दोनों मूर्तियाँ एक ही हैं। केवल साधारणजनों के चर्म-नेत्रों में भेदमात्र है। अज्ञानतावश जनश्रुतियों के ऊपर निर्भर करके मीराबाई के सम्बन्ध में कई

भाग दो कर्नल टाड रचित राजस्थान को अपना आधार माना है। बहुतों ने महाराणा कुम्भ को मीराबाई का पति लिखा है परन्तु महाराणा द्वारा मीराबाई का गोविन्द मन्दिर नष्ट होना इत्यादि घटनाओं के आधार पर बार और करणा रास खण्डन किया है।

Tod's Rajosthan, annals of Mewar (1st part page 303) ग्रन्थ में कर्नल टाड ने लिखा है—Kumbho married a daughter of the Rathere of Marta the first of the clans of Marwar. Mira Bai was the most celebrated princess of her time for beauty and romantic poetry. Her composition were numerous, though better known to the worshippers of the Hindoo apollo than to the ribald bards. some of her odes and hymns to the deity are preserved and admired. Whether she imbibed her poetic piety from her husband, or whether from her he caugtht the sympathy which produced the "sequel to the songs of the Govinda", we cannot determine. Her history is a romance and her excess of devotion at every shrine of the favourite deity with the fair of Hind, from the Yamuna to the world's end (juggat Koont or Dwarica) gave rise to many "Tales of scandal"

अर्थात् कुम्भने मारवाड़ के मेड़ता राज्यके राठोर वशीय मीराबाई के साथ विवाह किया था। कवित्व मे और सौन्दर्य में मीराबाई उन दिनों श्रेष्ठ राजकुमारी थीं। उनकी रचनाएं असख्य हैं। चारणों की अपेक्षा

हिन्दू भक्तों के निकट ये अधिक परिचित हैं। उनकी अनेक भजनावलिया समादृत हुई हैं और संकलित हो चुकी हैं। यह निर्देश करना कठिन है कि अपनी कवित्व शक्ति उन्होंने अपने पति से प्राप्त की थी अथवा उनके पति उनसे प्राप्त कर गीतगोविन्द की टीका लिखने मे समर्थ हुए थे। उनका इतिहास रहस्यपूर्ण हैं। यमुना से लेकर द्वारका तक • जगत्कांत के (श्रीकृष्ण के) प्रत्येक मंदिर में उनकी उच्छ्वसित भक्ति की जनश्रुतिया प्रचलित हैं।

यह इतिवृत्त ही साहित्यिकों और नाटककारों को ईंधन जुटा रहा है। परवर्तीकाल में ऐतिहासिक गण मीराबाई के सम्बन्ध में क्या कहते हैं देख लेना चाहिये। 'वीर विनोद' ग्रन्थकार ने कहा है—'टाड साहब ने मीराबाई को महाराणा कुम्भ की स्त्री लिखा है यह ठीक नहीं है—क्योंकि राव जोधाजी ने १४५८ ई० में जोधपुर प्रतिष्ठित किया था। १४६८ ई० में महाराणा कुम्भ का देहान्त हुआ। १४८५ ई० से राव दूदाजी जोधवत को मेड़ता राज्य (चामादेव के वरदान से) प्राप्त हुआ था। १५२७ ई० में महाराणा सागा और राव दूदाजी के दो पुत्र राव मल्ल और रतनसिंह (मीराबाई के पिता) बाबरके साथ युद्ध मे मारे गये। राव मल्ल के पुत्र जयमल्ल ने १५६८ ई० में चित्तौड़ मे अकबर के साथ युद्ध में प्राण त्याग किया।

अब सोचकर समझ लेना चाहिये कि महाराणा कुम्भ के काल में दूदाजी को मेड़ता राज्य मिला ही नहीं था। तो फिर दूदाजी की पौत्री मीराबाई मेड़तनी महाराणा कुम्भ की स्त्री कैसे हो सकती हैं? महाराणा कुम्भ के देहान्त के ५६ वर्ष बाद बाबर और महाराणा सांगा के युद्ध में मीरा के पिता मृत्यु के ग्रास हुए। टाड साहब का सिद्धान्त मान लेने से महाराणा कुम्भ क काल में रतनसिंह की अवस्था कम से कम ४० होनी चाहिये। इस हिसाब से रतनसिंह की मृत्युकालीन अवस्था एक सौ वर्ष

जाता है कि विवाह के बाद ससुराल आने पर देवी-पूजा करने के लिए सास का अनुरोध उन्होंने नहीं माना। यह भी देख लेना आवश्यक है कि मीरा के विवाह के पहले दोनों वंशों के बीच कैसा सम्बन्ध था। मीरा का पितृवंश वैष्णव और पतिवंश शैव था, किन्तु बहुत दिनों से उभयवंशों में आत्मीयता परन्तु आंतरिक सद्भाव चला आ रहा है। (मीरा माधुरी १२ पृष्ठ)

मीराबाई की भजनावली में मिलता है कि उन्होंने श्री हरिवन्दना से आरम्भ करके यमुनाजी, शिवजी, तुलसीजी सभी की वन्दना की है। शिवजी की वन्दना में उन्होंने कहा है—

> शिव मठ पर सोहै लाल ध्वजा,
> कौन शिखर पर गौरि विराजैं।
> कौन शिखर पर बमभोला,
> उत्तर शिखर पर गौरि विराजैं,
> दक्षिण शिखर पर बमभोला।
> मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
> हरि के चरण पर चित मोरा।

अर्थात् शिव मठ के ऊपर लाल ध्वजा शोभा पा रही है।, कौन शिखर पर गौरी विराज रही हैं। कौन शिखर पर बम भोला हैं। उत्तर शिखर पर गौरी विराज रही हैं और दक्षिण शिखर पर स्वयं बमभोला अर्थात् शिव हैं। मीरा का चित्त प्रभु गिरिधर नागर हरि के चरणों में लगा है।

मीरा ने यहाँ शिव और गौरीलीला का वर्णन करके अपनी अवस्था का परिचय दिया है। इस कारण इससे यही प्रतीत होता है कि उन्होंने कभी अन्य देवता के प्रति अश्रद्धा नहीं प्रकट की है।

मीरा सब प्रकार की संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, भेदाभेद से मुक्त हो

सकी थीं। इसी लिए श्रीकृष्ण-सेवा पानेकी पूर्ण अधिकारिणी हो सकी थीं।

भोजराज का परलोकगमन और मीरा का वैधव्य जीवन

मीरा को महारानी बनाकर श्रीभगवान ने इस जगत् में नहीं भेजा था। भेजा था अपने प्रियतम भक्त की जीवनलीला के द्वारा अपनी ही अपरिसीम करुणा की महिमा जगत् में प्रचार करने के लिए। भोजराज महाराणा के रूप में मेवाड़ के सिंहासन पर आरोहण करने का समय न पा सके। १५२३ ई० में भोजराज परलोक सिधारे।* भोजराज ने अपनी जीवितावस्था में मीरा के प्रति कोई अविचार अत्याचार किया था ऐसा निदर्शन किसी ऐतिहासिक प्रमाण से नहीं मिलता। भोजराज की मृत्यु के समय मीरा की अवस्था २० वर्ष की हो चुकी थी। महाराणा रघुराज सिंह के मत से मीरा का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में हुआ था। 'मीरा-बाई' ग्रन्थ के लेखक अनाथबसु के मत से—१५२८ ई० के कुछ दिन पहले भोजराजकी मृत्यु हुई। 'मीरामन्दाकिनी' ग्रन्थ के मत से १५२६ ई० में भोजराज ने शरीर त्याग किया। 'मीरा' ग्रन्थ के लेखक श्री श्यामापति पाण्डेय ने (इन्दौर) १५२७ ई० में भोजराज की मृत्यु लिखी है।

इस प्रकार विभिन्न ऐतिहासिक मतों से भोजराज के परलोक-गमन की तारीखों का विभिन्न समय वर्णित हुआ है। किन्तु यह सूत्र हो सच है कि मीरा का विवाहित जीवन अति अल्प दिन स्थायी था। भोजराज को इस जगत् के सुखों का उपभोग करने का समय नहीं मिला। वैधव्य जीवन ही मीराबाई का प्रकृत साधना का समय हो गया।

कर्नल टाड महाराणा कुम्भ और मीराबाई

बंगदेश से लेकर उत्तराखंड प्रदेश तक जितने भी लेखक मीराबाई की जीवनी और तत् सम्बन्धी नाटकों का प्रणयन कर गये हैं, उनमें से अधि

* मीरा माधुरी, मीराबाई की शब्दावली।

जाता है कि विवाह के बाद ससुराल जाने पर देवी-पूजा करने के लिए सास का अनुरोध उन्होंने नहीं माना। यह भी देख लेना आवश्यक है कि मीरा के विवाह के पहले दोनों वंशों के बीच कैसा सम्बन्ध था। मीरा का पितृवंश वैष्णव और पतिवंश शैव था, किन्तु बहुत दिनों से उभयवंशों में आत्मीयता परन्तु आंतरिक सद्भाव चला आ रहा है। (मीरा माधुरी १२ पृष्ठ)

मीराबाई की भजनावली में मिलता है कि उन्होंने श्री हरिवन्दना से आरम्भ करके यमुनाजी, शिवजी, तुलसीजी सभी की वन्दना की है। शिवजी की वन्दना में उन्होंने कहा है—

शिव मठ पर सोहै लाल ध्वजा,
कौन शिखर पर गौरि विराजैं।
कौन शिखर पर बमभोला,
उत्तर शिखर पर गौरि बिराजैं,
दक्षिण शिखर पर बमभोला।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
हरि के चरण पर चित मोरा।

अर्थात् शिव मठ के ऊपर लाल ध्वजा शोभा पा रही है। कौन शिखर पर गौरी विराज रही हैं। कौन शिखर पर बम भोला हैं। उत्तर शिखर पर गौरी विराज रही हैं और दक्षिण शिखर पर स्वयं बमभोला अर्थात् शिव हैं। मीरा का चित्त प्रभु गिरिधर नागर हरि के चरणों में लगा है।

मीरा ने यहाँ शिव और गौरीलीला का वर्णन करके अपनी अवस्था का परिचय दिया है। इस कारण इससे यही प्रतीत होता है कि उन्होंने कभी अन्य देवता के प्रति अश्रद्धा नहीं प्रकट की है।

मीरा सब प्रकार की संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, भेदाभेद से मुक्त हो

वही मार्ग अनुसरण किया गया है—किन्तु परवर्तीकाल में राजस्थान के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसादजी ने उन ग्रन्थों की असारता विशेष रूप से प्रमाणित कर दी है।

राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा ने अपने "उदयपुर राज्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि महाराणा सागा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज का विवाह मेड़ता के राव वीरमदेव के कनिष्ठ भ्राता रतनसिंह की कन्या मीराबाई के साथ सं० १५७३ (ई० सन् १५१६) में हुआ था। इसके कई वर्ष बाद महाराणा की जीवितावस्था में भोजराज का देहान्त हुआ। इसके कई वर्ष बाद भोज-राज के कनिष्ठ भ्राता रतनसिंह युवराज हुए। कर्नल टाड ने जनश्रुतियों पर निर्भर करके मीराबाई को महाराणा कुम्भ की स्त्री लिखा है। और टाड का अनुसरण कर के विभिन्न भाषाओं में मीराबाई कुम्भ की स्त्री कह कर लिखी गयी हैं। यह सम्पूर्णरूप से भ्रान्तिमूलक है। मीराबाई 'मेड़तनी' नाम से परिचिता हैं। वे मेड़तिया राजवंश की कन्या हैं। जोधपुर के राव जोधाजी के पुत्र दूदाजी (जन्म १४३७ सम्वत् ईसवी सन् १४४० मी० प्र: प्र भाग १, पृष्ठ ११४) १४६१ ई० में मेड़ता राज्य के अधिपति हुए। दूदाजी से राठौर वंश की मेड़ता शाखा आरम्भ हुई। दूदाजी के ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव का जन्म १४७७ ई० में हुआ। दूदाजी के बाद वे मेड़ता के अधीश्वर हुए। वीरमदेव के छोटे भाई रतनसिंह की कन्या मीरा थीं। महाराणा कुम्भ की मृत्यु १४६८ में हुई। इसके नौ वर्ष बाद मीराबाई के पिता के बड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ। इस अवस्था में मीराबाई किसी भी प्रकार से कुम्भ की स्त्री नहीं हो सकतीं।

"मीरा मन्दाकिनी" ग्रन्थ के लेखक कहते हैं कि मीराबाई को महाराणा कुम्भ की स्त्री स्वीकार करके उनके परम पवित्र चरित्र के ऊपर कलंक लगा दिया गया है। उनको पतिविमुख और पतिद्रोही बनाया गया है। *इस प्रकार भ्रमपूर्ण बातों की माला गूँथकर परवर्ती काल में*

१

आवश्यक है—यदि यही हो तो इतनी वृद्धावस्था में समर में संग्राम करके मृत्यु वरण करना क्या विश्वसनीय बात है ?

महाराणा कुम्भ से १०० वर्ष बाद मीराबाई के चचेरे भाई जयमल्ल युद्ध में निहत हुए। यह ऐतिहासिक प्रमाणसे मिलता है। ऐसी अवस्था में जयमल्ल की बहन मीरा कैसे महाराणा कुम्भ की स्त्री हो सकती है।

मीराबाई महाराणा विक्रमादित्य, उदयसिंह के समय तक जीवित थीं। महाराणा द्वारा वे पीड़ित थीं, यह उल्लेख उनकी बहुत कविताओं में भरा पड़ा है।

टाड साहब ने भ्रम में पड़ कर लिखा है—"महाराणा कुम्भ ने चित्तौड़ गढ़ में कुम्भ श्याम नामक एक केंद्र प्रतिष्ठित किया था। इसके ही पास जो मन्दिर विद्यमान है वह मीराबाई का मन्दिरके नामसे परिचित है। इन दोनों मन्दिरों को आस पास स्थित देखकर टाड साहब ने मीरा बाई को महाराणा कुम्भ की स्त्री समझ कर लिख भी दिया है। किन्तु मेड़ता राज्य की राठौर "तवारिखी" में मीराबाई भोजराज की स्त्री लिखी गयी हैं।

गुरदित्ता खन्ना (अमृतसर) रचित "भजन मीराबाई" ग्रन्थ में लिखा गया है—महाराणा कुम्भ, मीरा के भजन और सौन्दर्य की बात सुन कर छद्मवेश में मेड़ता गये थे। मीराबाई को देख कर मुग्ध हो गये थे। उन्होंने मीराबाई से ब्याह करने के लिए एक ब्राह्मण को दूत रूप में भेजा था। मीराबाई के पिता ने इस प्रस्ताव को मान कर मीरा का विवाह कर दिया। "मतवाली मीरा" पुस्तक के लेखक ने उल्लेख किया है, कुम्भ के कनिष्ट भ्राता के साथ मीरा का विवाह हुआ था। ऐसी ही जनश्रुतियों पर निर्भर करके कार्तिक प्रसादजी ने गुजरात के गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी ने अपने "Classical poets of Guzrat." पुस्तक में और कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी ने 'गुजराती साहित्य को मार्ग सूचक स्तम्भ" पुस्तक में मीरा को कुम्भ की स्त्री लिख दिया है। शिवसिंह सरोज में भी

वही मार्ग अनुसरण किया गया है—किन्तु परवर्तीकाल में राजस्थान के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसादजी ने उन ग्रन्थों की असारता विशेष रूप से प्रमाणित कर दी है।

राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा ने अपने "उदयपुर राज्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि महाराणा सागा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज का विवाह मेड़ता के राव वीरमदेव के कनिष्ठ भ्राता रतनसिंह की कन्या मीराबाई के साथ सं० १५७३ (ई० सन् १५१६) में हुआ था। इसके कई वर्ष बाद महाराणा की जीवितावस्था में भोजराज का देहान्त हुआ। इसके कई वर्ष बाद भोज-राज के कनिष्ठ भ्राता रतनसिंह युवराज हुए। कर्नल टाड ने जनश्रुतियों पर निर्भर करके मीराबाई को महाराणा कुम्भ की स्त्री लिखा है। और टाड का अनुसरण कर के विभिन्न भाषाओं में मीराबाई कुम्भ की स्त्री कह कर लिखी गयी हैं। यह सम्पूर्णरूप से भ्रान्तिमूलक है। मीराबाई 'मेड़तनी' नाम से परिचिता हैं। वे मेड़तिया राजवंश की कन्या हैं। जोधपुर के राव जोधाजी के पुत्र दूदाजी (जन्म १४८७ सम्वत् ईसवीं सन् १४४० मी० प्र. प्र भाग १, पृष्ठ ११४) १४६१ ई० में मेड़ता राज्य के अधिपति हुए। दूदाजी से राठौर वंश की मेरता शाखा आरम्भ हुई। दूदाजी के ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव का जन्म १४७७ ई० में हुआ। दूदाजी के बाद वे मेड़ता के अधीश्वर हुए। वीरमदेव के छोटे भाई रतनसिंह की कन्या मीरा थीं। महाराणा कुम्भ की मृत्यु १४६८ में हुई। इसके नौ वर्ष बाद मीराबाई के पिता के बड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ। इस अवस्था में मीराबाई किसी भी प्रकार से कुम्भ की स्त्री नहीं हो सकतीं।

"मीरा मन्दाकिनी" ग्रन्थ के लेखक कहते हैं कि मीराबाई को महाराणा कुम्भ की स्त्री स्वीकार करके उनके परम पवित्र चरित्र के ऊपर कलंक लगा दिया गया है। उनको पतिविमुख और पतिद्रोही बनाया गया है। इस प्रकार अपूर्ण बातों की माला गूंथकर परवर्ती काल में

उनकी पदावली में जोड़ दी गयी है। मीरां के मुँह से अपने पति के प्रति ऐसे कटुवचन कहलाये गये हैं, जिस प्रकार के कटुवचन कोई भी भारतीय ललना अपने पति के प्रति प्रयोग नहीं कर सकती। यदि महाराणा कुम्भ को पति स्वीकार कर लिया जाय तो भी महाराणा कुम्भ द्वारा ऐसा अत्याचार सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि महाराणा स्वयं विद्वान और परम वैष्णव थे। उन्होंने स्वयं गीतगोविन्द की टीका लिखी है।

श्रीप्रबोधचन्द्र मुखोपाध्याय एम० ए०, बी० एल० ने 'चित्तौड़गढ़ भ्रमणकाहिनी' प्रबन्ध में लिखा है, राजकुमारों के महल के पश्चात् भाग में दशाश्वेर महादेव का एक प्राचीन मन्दिर है। इसके बाद हमें महाराणा कुम्भ का बनवाया कुम्भश्याम और मीराबाई का मन्दिर देखने को मिला। साधारण जनता महाराणा कुम्भ के मन्दिर को ही मीराबाई का मन्दिर कहती थी। महाराणा कुम्भ के मन्दिर में वराह अवतार का विषय वर्णित था। और इसके ही दक्षिण में मीरांबाई का मन्दिर है, और इसमें मीरांबाई ने श्यामनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी। मीराबाई की रचित भजनावली खूब ऊँचे स्तर की है। मीरांबाई अत्यन्त धर्मपरायणा राजपूत रमणी थीं, राठौर वंशीय रतनसिंह की कन्या और अनुपम रूपलावण्यवती थीं, प्रगाढ़ विष्णुभक्त और गायिका थीं। इनके रचित भजन गान अब भी आदर के साथ गाये जाते हैं। कर्नल टाड ने लिखा है, मीराबाई राणा कुम्भ की स्त्री थीं, किन्तु वास्तव में वे भोजराज की स्त्री थीं। क्योंकि राणा कुम्भ के मन्दिर का निर्माणकाल १४४८ ई० है और मीराबाई का मन्दिर बना था १५२६ ई० में। पार्थक्य प्राय: १०० वर्ष का है। मीराबाई के मन्दिर के सामने उनके गुरु रैदास (जो जाति के चमार थे) का एक मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण मीराबाई ने किया था।*

---

* "प्रवर्तक" आषाढ़ १९५१

"मीरा माधुरी" ग्रन्थ के लेखक कहते हैं कि मीराबाई ने स्वयं "नरसी जी रो माहेरो" ग्रन्थ में लिखा है कि वे मेड़ता के क्षत्रिय राजवंश की कन्या राठौरवंशसम्भूता हैं। उनका विवाह मेवाड़ के महाराणा के साथ हुआ था। अब यह देख लेना आवश्यक है कि मेड़ता में क्षत्रिय राज्य किस समय विद्यमान था? राव जोधाजी के पुत्र राव दूदाजी ने १४६१ ई० में मेड़ता राज्य स्थापित किया था और १५५४ ई० में मेड़ता राज्य का अन्त हो गया। केवल ९३ वर्ष मेड़ता राठौर राजाओं के अधिकार में था। इस कारण १४६१ ई० के पूर्व मीराबाई का उद्भव सम्भव नहीं है। १४६१ ई० से १५५४ ई० के बीच जन्मग्रहण कारिणी मीराबाई १४६८ ई० में मृत्युगामी होकर, महाराणा कुम्भ की स्त्री किसी प्रकार भी नहीं हो सकतीं, महाराणा कुम्भ के इष्टदेव एकलिङ्ग होने पर भी वे परम वैष्णव थे। उन्होंने गीतगोविन्द की "रसिक प्रिया" नामक टीका लिखी है। उनका निर्मित मन्दिर कुम्भस्वामी या कुम्भश्याम नाम से प्रसिद्ध है। कुम्भश्याम मन्दिर का पार्श्ववर्ती मन्दिर मीराबाई का मन्दिर के नाम से परिचित है। इस कारण ही लोग महाराणा कुम्भ और मीराबाई को पति पत्नी रूप में अनुमान करते हैं। महाराणा की गीतगोविन्द की टीका में कुम्भल्ल देवी और अपूर्व देवी नामक दो रानियों का उल्लेख मिलता है। चारणों के वर्णन में महाराणा कुम्भ की चार रानियों के नाम आये हैं—प्यार कुंवर, अपरमदे, हरकुंवर, नारंगदे।* परम वैष्णव महाराणा कुम्भ क्या परम वैष्णव तपस्विनी मीराबाई का नाम उल्लेख न कर सके हैं? इसलिए मीरा कुम्भ की स्त्री किसी प्रकार भी नहीं हैं। राव जोधाजी की कन्या शृंगार देवी का विवाह राणा कुम्भ के पुत्र रायमल्ल के साथ हुआ था। इस अवस्था में राव जोधाजी की प्रपौत्री मीरा का विवाह कुम्भ के साथ हुआ, कहना प्रलाप मात्र है। (मीरां माधुरी पृ० ७३)

---

* ओझा जी कृत राजपूताना का इतिहास २९ खण्ड पृ० ६२४

टाड साहब ने जनश्रुतियों पर निर्भर कर के राजस्थान का इतिवृत्त लिखा था। उनके बहुत समय बाद जोधपुर, उदयपुर, जयपुर प्रभृति राजसरकार के प्राचीन दलील आदि की वारीकी के साथ जाँच-समालोचना आदि करके राजस्थान के ऐतिहासिक मुंशीजी, श्रोभाजी, गहलोतजी, सारेडाजी ने राजस्थान के अतीत इतिहास के यथार्थ तथ्य का निर्णय किया है। इस लिए मीराबाई के पिता और उनके जन्म और मृत्यु की तारीखें ठीक-ठीक ही प्रतीत होती हैं। अब इन सब ऐतिहासिक सन-तारीखों की पर्यालोचना करके विचार करने से स्पष्ट रूप से ही अनुमान किया जाता है कि, महाराणा कुम्भ मीराबाई के पति थे, यह भ्रम मात्र है। क्योंकि १४६८ ई० में महाराणा कुम्भ की मृत्यु हो गया, और १४७४ ई० में मीराबाई के पिता रत्नसिंह का जन्म हुआ था। साधारण दृष्टि से दिखाई पड़ता है कि महाराणा कुम्भ की मृत्यु के समय मीरा के पिता का जन्म ही नहीं हुआ था; तो किस प्रकार महाराणा कुम्भ मीरा के पति हो सकते हैं? महाराणा कुम्भ मीरा के पति थे यह कहना प्रलाप मात्र है।

महाराणा द्वारा मीरा का उत्पीड़न

अधिकांश लोगों की धारणा है कि, मीराबाई महाराणा कुम्भ की स्त्री थीं। महारानी होकर भी मीरा ने राजपूत पटरानी की भाँति गार्हस्थ्य धर्म का पालन नहीं किया, इस कारण कुपित होकर महाराणा ने मीरा के ऊपर अत्याचार किया। मीराबाई ने भी अपने जीवन की दु:ख कथाएँ भजनों के सहयोग से सर्वत्र प्रचारित की थीं। साहित्यिकों और नाटक-कारों ने इन विषय-वस्तुओं का अवलम्बन करके कितने ही ग्रंथों की रचना की है। मीराबाई नाटक में मैंने देखा है, महाराणा कुम्भ ने मीराबाई के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर उनको राजपूत कलंकिनी रूप में परिचित कर, मीरा के प्राणनाथ गिरिधारीलाल का मन्दिर तोप दाग कर ध्वंस कर दिया।

इससे परम वैष्णव महाराणा कुम्भ का पवित्र चरित्र कलंकित किया गया है। महाराणा कुम्भ परम भक्त चरित्रवान पुरुष थे। उन्होंने "रसिक प्रिया" नामक गीतगोविन्द की टीका रची थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत और संगीत में वे निपुण थे। संगीत, संगीत मीमांसा, संगीतामृत और चण्डीशतक की टीकाएँ भी उन्होंने लिखीं। इनके अतिरिक्त चार नाटक और एकलिङ्गमाहात्म्य ग्रन्थ भी उन्होंने लिखे थे। ऐसे गुणवान भक्त के लिए क्या गोविन्द-पूजा-निरता मीराबाई का गोविन्द-मन्दिर तोप दाग कर ध्वंस कर देना सम्भव है? साहित्यिकों और नाटककारों ने ऐतिहासिक सत्यता की शर्तें न सोचकर केवल रस सृष्टि के लिए अलीक काल्पनिक घटना का उत्पादन किया है।

मीरा निरदु खिनी थीं। पति-सन्तान हीना बाल्य-विधवा हिन्दू रमणी का जीवन कैसा दुरसह होता है, यह भारतवासी मात्र ही जानते हैं। परन्तु मीरा पटरानी थीं, विपुल ऐश्वर्य की अधिकारिणी थीं। सांसारिक सुख-भोग इनके लिए नहीं था। मीरा की जीवन-साधना का पथ भिन्न था।

उत्पीड़न, अमानुषिक अत्याचार ने मीराबाई का भागवत-पथयात्री बनाया था। मीरा जिस पथ की यात्री थीं, वह पथ अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ दुर्गम था। *"क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया दुर्गमपथस्तद् कवय वदन्ति।"* भक्त प्रह्लाद भी पर्वत-शिखर से भूतल पर, तप्त तैल भाण्ड में, अग्निकुण्ड में, हाथी के पैरों के नीचे जीवन-नाश के लिए हिरण्यकशिपु द्वारा निक्षिप्त हुए थे। किन्तु प्रह्लाद अचल अटल होकर केवल हरिनाम ही जप रहे थे। सब परीक्षाओं के बाद प्रभु ने स्वय प्रह्लाद को दर्शन दिये। मीरा के जीवन में भी ऐसी हो परीक्षा चल पड़ी। दोनों के एक मात्र लक्ष्य थे गिरिधरलाल। प्रह्लाद का अपराध था हरिभजन, और मीरा का अपराध था श्रीगिरिधरलाल की सेवापूजा और भजन।

मीराबाई ने अपने बहुत से पदों में राणाजी द्वारा उत्पीड़ित होने की बातों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त प्रियादास जी, नाभादास जी के भक्तमाल ग्रन्थ में राणा द्वारा मीराबाई के उत्पीड़न की कहानी का उल्लेख है। अब ऐतिहासिक विचार से देखना चाहिये, यह राणा कौन थे। मीरा अपने पति भोजराज द्वारा उत्पीड़ित नहीं हो सकतीं, क्योंकि वे राणा होने के पहले ही कुमार अवस्था में कालग्रास में पड़ गये थे।

मीरां के श्वसुर राणा सांगा के विषय में विचार करने से ज्ञात होता है कि, राणा वीर पुरुष थे। उनके शरीर के बहुत स्थानों में युद्ध के क्षतविक्षत के चिह्न विद्यमान थे। वे दिल्ली, मालवा, गुजरात के सुल्तानों को सम्पूर्ण रूप से पराजित करके अन्त में कन्हुवा के युद्ध में क्षतविक्षत होकर परास्त हुए। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, बाबर को परास्त किये बिना चित्तौड़ न लौटेंगे। इसके बिना ही उनकी मृत्यु हो गयी।

जीवन का अधिकांश समय ही उन्होंने युद्धस्थल में बिताया। प्रिय पुत्र की विधवा स्त्री मीरां उनकी अत्यन्त प्यारी थीं। इस कारण किसी अवस्था में ही राणा सांगा द्वारा मीरां उत्पीड़ित नहीं हो सकतीं।

अब भोजराज के सहोदरों में जिनलोगों ने मेवाड़ के सिंहासन पर आरोहण किया था, उनके सम्बन्ध में देखना चाहिये। महाराणा सांगा अठाईस विवाहों में सात पुत्रों, चार कन्याओं को प्राप्त किया। भोजराज कर्णसिंह, रत्न सिंह, यह बोघाजी की प्रपौत्री रानी धनकुँवर के गर्भ से उत्पन्न थे। रत्न सिंह मीराबाई के प्रति स्नेहशील थे। रत्नसिंह १५२७ ई० में सिंहासनारूढ़ होकर १५३१ ई० में परलोक सिधारे। पिता की जीवितावस्था में ही कर्ण सिंह की मृत्यु हुई। इस कारण दोनों में से किसी ने भी मीराबाई को क्लेश नहीं दिया था।

भोजराज के अन्य दो भाई विक्रमाजीत और उदयसिंह के सम्बन्ध में विचार करने से ज्ञात होता है कि उदय सिंह ने १५३८ ई०

में कुम्भलमेर का सिंहासन प्राप्त किया। १५४० ई० में चित्तौड़ उनके अधीन आ गया। जयमल्ल मडतिया के प्रति उदयसिंह की विशेष कृपादृष्टि थी। मेड़ता राज्य पर अधिकार पाने के लिए उदयसिंह ने जयमल्ल की सब प्रकार से सहायता की थी। इसलिए जयमल्ल की आत्मीया मीराँबाई के प्रति उदयसिंह द्वारा कभी दुर्व्यवहार होने की बात कल्पना में भी नहीं लायी जा सकती। बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से चित्तौड़ नगरी के ध्वंसोन्मुखी हो जाने पर महाराणा के मन में यह धारणा जाग उठी कि पुण्यवती देवी मीराँबाई के प्रति अमानुषोचित अत्याचार और उत्पीड़न होने के फलस्वरूप मेवाड़ राज्य की दुर्दशा हो रही है। यह सोच कर उन्होंने चित्तौड़ की देवी मीराबाई को पुनः राज्य में लौट आने के लिए एक ब्राह्मण को द्वारका भेजा। किन्तु उदयसिंह के महाराणा पद पर अधिष्ठित होने के पहले ही मीराबाई चित्तौड़ त्याग कर वृन्दावन चली गयीं। वहां से उनकी द्वारका यात्रा हुई। उदयसिंह की सिंहासन प्राप्ति और मीराबाई का श्रीवृन्दावन आगमन प्रायः एक ही समय हुआ था। इस कारण राणा द्वारा मीराबाई के प्रति इतना अत्याचार होने का समय कहा रहा?

विक्रमाजीत और उदयसिंह राव नरबद सिंह की कन्या करमेतन रानी के दो पुत्र थे। महाराणा सांगा इन दोनों पुत्रों को बहुत प्यार करते थे। इस कारण रणथम्भोर में उनके लिए जागीर लेकर अपने भाई सूरजमल को दोनों पुत्रों का अभिभावक नियुक्त किया। करमेतन रानी प्रारम्भ से ही विक्रमाजीत को सिंहासन पर बैठाने की चेष्टा करती आ रही थीं। रत्नसिंह राणा होने के पहले ही मृत्यु के ग्रास हो गये। प्रायः तीस वर्ष की अवस्था में विक्रमाजीत रणथम्भोर से आकर मेवाड़ के सिंहासन पर १५३१ ई० में अधिष्ठित हुए। विक्रमाजीत अयोग्य और राजस्थान के कलंकस्वरूप थे। वे केवल राणा होने के ही अयोग्य थे, यह बात नहीं,—मेवाड़ के प्रायः सभी प्रतिष्ठित गण्यमान्य

सरदारों ने उनके विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी। उनके सात हजार पहलवान साथी थे। इसलिए वे सरदारों को हीन दृष्टि से देखते थे। १५३२ ई० में गुजरात के सुलतान बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजमाता करनेतन या कर्मवती ने हुमायूँ से सहायता मांगी। *किन्तु हुमायूँ ने उनकी सहायता नहीं की।* बहादुर शाह ने हुमायूँ को एक पत्र लिख कर कहा कि काफिर हिन्दू की सहायता करने से खुदा के सामने क्या जवाब दीजियेगा। बहादुर शाह चित्तौड़ लूट-पाट कर स्वदेश लौट गये। बहादुर शाह के दूसरी बार चित्तौड़ आक्रमण करने पर राजमाता कर्मदेवी ने सरदारों को पत्र लिखा और उनके हाथ में मेवाड़ राज्य सौंप दिया। राजपूतगण स्वदेश-प्रेम से उद्दीप्त होकर मेवाड़ रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये। विक्रमाजीत और उदय सिंह को बूँदी भेज दिया गया। देवलिया (प्रतापगढ़) के राव बाघ सिंह गहलोत को महाराणा का राजचिह्न भेजा गया। बहादुर शाह के गोले बरसने से चित्तौड़ गढ़ की ४५ हाथ ऊँची दीवान ध्वंस हो गयी। कर्मवती ने *निरुपाय होकर जौहर व्रत पालन किया।* बहादुर शाह ने दूसरी बार चित्तौड़ ध्वंस किया। मेवाड़ की ऐसी दुर्दशा से भी विक्रमाजीत के चरित्र का परिवर्तन नहीं हुआ। बहादुर शाह की मृत्यु हो जाने पर विक्रमाजीत और उदयसिंह चित्तौड़ लौट आये। महाराणा सांगा के भ्राता के दासी पुत्र वणवीर के हाथ विक्रमाजीत तलवार द्वारा निहत हुए।*

चित्तौड के इस दुर्दिन में विक्रमाजीत द्वारा परम तपस्विनी देवी मीराँबाई उत्पीड़िता हुईं।

"मीरा माधुरी" ग्रन्थ लेखक कहते हैं—"मीराँबाई" की भगवद् भक्ति बाल्य-काल से ही प्रकट हुई। सत्संग, साधु सेवा इत्यादि के लिए

---

* राजपूताने का इतिहास।

मीराँबाई की ससुराल के सभी उनके प्रति रुष्ट थे। मीराँबाई जिससे इन सब कर्मों से विरत हो रहें इसके लिए कठोर व्यवस्था की गयी। विक्रमाजीत ने मीराँबाई के सतीत्व के ऊपर कलक भी आरोप किया था।"

राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि विक्रमाजीत अत्याचारी प्रजापीड़क, अपरिणामदर्शी राजा थे। उनके राजत्व काल में प्रजाविद्रोह और राजस्थान में सर्वत्र दुर्भिक्ष दिखाई पड़ा। यह सुयोग पाकर ही गुजरात के बहादुर शाह बार-बार चित्तौड़ आक्रमण करके धनरत्न लूट कर ले गये। मीराँबाई सत्संग, साधु-सेवा श्रीगिरिधर-भजन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझती थीं। राणा विक्रमाजीत इन कामों को कुल-कलक मानकर बिलकुल ही पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए मीराँबाई के प्रति अमानुषिक उत्पीडन और अत्याचार करते थे।★ राणा विक्रमाजीत ने किस प्रकार मीराँबाई के प्रति अत्याचार किया था उसका स्वरूप एक-एक करके देखना चाहिये।

विष का प्याला

मीराँबाई ने अपने पदों में गाया था—

> विष के प्यालो राणा जी मेल्यो,
> द्यो मेड़तणी ने पाय।
> कर चरणामृत पी गई रे,
> गुण गोविन्द रा गाय।
> पिया पियाला नाम का रे,
> और न रंग सोहाय।
> मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर,
> काचो रँग उड़ जाय॥

★ मीराँबाई की पदावली, मीराँ, मीराँबाई की शब्दावली, मीराँ मन्दाकिनी, (*Story of Mira Bai*)

विष का प्याला राणाजी ने मेड़तनी (मीरा) के पास भेजा था। गोविन्द का गुण गाकर चरणामृत रूप में उसे मैं पी गयी। प्रभु का नाम लेकर प्याला का विष पी गयी। मेरे सामने और कुछ भी शोभा नहीं पाता। मीरां कह रही है—हे गिरिधर नागर, अनित्य सब त्याग हो जाता है।

मीरा के एक पद में मिलता है—

> जहर के प्यालो राणा भेज्यो,
> अमरित दियो बणाय।
> न्हाय धोय जब पीवण लागी,
> अमर हो गई जाय॥

राणा जी ने जहर का प्याला भेजा था—ध्यान-स्नान करके जब पी गयी तब वह अमृत में परिणत हो गया।

इस प्रकार मीरांबाई के अपने बहुत पदों में राणा जी और विष के प्याले का उल्लेख विद्यमान है। सीसौदिया वंश के कुलकलंक राणा विक्रमाजीत ने सोचा था—पतिहीन परम सुन्दरी नारी मीरां यौवनोचित विलास-व्यसन में जीवन अतिवाहित करके उन के भोग की पात्री होगी। किन्तु ठीक विपरीत हो गया। कहाँ रहा राजैश्वर्य, कहाँ रहा विलास-व्यसन रूप प्रसाधन! मीरा तो बाल्यकाल से ही संन्यासिनी थीं। भिखारिणी वेश धारण करके गोविन्द-सेवा, साधुसत्संग लाभ उनके जीवन का व्रत था। एक ही स्थान में पूर्ण भोगी और त्यागी दोनों कैसे रह सकते हैं। इसी लिए राणा के यहाँ मीरा का जीवन-यापन विपरत् जान पड़ा। "मीरांबाई की शब्दावली" ग्रन्थ में मिलता है—"मीरां को प्रबोध देने के लिए राणा जी ने अपनी सहोदरा उदाबाई को मीरां के पास भेजा था। उदाबाई भाई का आदेश पाकर प्राण समेत पूर्ण चेष्टा से मीरां को समझाने लगीं कि, वे गिरिधर भजन और साधु संग त्याग कर राजपूत महिला की तरह जीवन बितावें। उदाबाई की सभी चेष्टाएँ विफल हुईं।

अपनी सभी चेष्टाएँ विफल हो जाने से राणा ने मीरांबाई का जीवन-नाश करने के लिए अपने मन्त्री से परामर्श किया। जब कि मीरां गोविन्द का चरणामृत और प्रसाद खा-पी कर ही जीवन धारण करती हैं, तब यदि तीव्र विष गोविन्द का चरणामृत बता कर उनके पास भेज दिया जाय तो उस अवस्था में मीरां चरणामृत नाम सुनते ही उसे पी जायँगी और तीव्र विष पी लेने से उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी। ऐसा उत्तम परामर्श पा कर राणा ने बीजावर्गी जातीय दयाराम नामक एक व्यक्ति को तीव्र विष देकर गोविन्द चरणामृत नाम से मीरांबाई के पास पहुँचा देने को भेज दिया।

मीरां ने एक पद में गाया है—

कनक कटोरे लै विष घोल्यो।
दयाराम पण्डा लायो॥

सोने के कटोरे में (प्याले में) दयाराम पण्डा विष ले आया था। राजस्थान में इस बीजावर्गी जाते के सम्बन्धमें प्रवाद है—

बीजावर्गी बानियो दूजो गूजर गौड़।
तीनो मिले जो दाइमो करे टापरो चौड़॥

बीजावर्गी बनिया, गूजर, गौड और दहमा ब्राह्मण—ये तीनों एकत्र हो जाने पर उस परिवार को ध्वंस कर देंगे।

दयाराम ने प्रचुर अर्थ के लोभ से राणा के आदेशानुसार विषका प्याला लेकर मीरांबाई के पास जाकर कहा कि राणाजी ने गोविन्द का चरणामृत उनको प्रदान किया है—इस पवित्र चरणामृत को पीकर उनको धन्य हो जाना चाहिये।

एक वंश के सभी लाग असुर प्रकृति के नहीं होते, रावण के भाई विभीषण थे। सरमा सीता की सहचरी, राक्षसी होने पर भी देवी स्वरूपिणी थीं। राणा विक्रमाजीत आसुरिक शक्ति लेकर जन्म ग्रहण करने

पर भी उनकी बहन उदाबाई उस प्रकृति की नहीं थीं। मीरांबाई की सहचरी रूप में रहकर उनकी दैवी शक्ति की प्रेरणा उनको मिली थी। उदाबाई मन्थी की मन्त्रणा और मीराबाई का प्राणनाशकारी राणा का षड्यन्त्र जान गयी और तुरन्त ही शीघ्र गति से मीरांबाई के पास चली गयीं। वहाँ उपस्थित होकर उन्होंने देखा, मीरां चरणामृत रूपी तीव्र हलाहल पीने को उद्यत हो गयी हैं। उदाबाई ने राणा के षड्यन्त्र की पूरी बातें मीरांबाई को बता दीं और चरणामृत पीने का निषेध किया। किन्तु मीरांबाई ने उत्तर दिया—"जो पदार्थ गोविन्द के चरणामृत रूप में मेरे पास आ गया है, उसे त्याग देना भक्ति के विरुद्ध है।" मीरांबाई ने किसी प्रकार भी उदाबाई की बाधा नहीं मानी—चरणामृत रूपी तीव्र हलाहल अपने मस्तक पर स्पर्श कर के गोविन्द का नाम लेकर उत्साह के साथ उसे पी गयीं। प्रवाद है कि, मीरांबाई जब विष पान कर रही थीं, तब द्वारका में रणछोड़जी के मुख से फेन निकल पड़ा था। राणा विक्रमाजीत की मीरांबाई के प्राणनाश की यह चेष्टा विफल हो गयी। विष अमृत में रूपान्तरित हो कर मीरांबाई को भगवत् भजन में अग्रसर होने के लिए दुगुना उत्साहित किया और शान्तिदायक हो गया।

मुन्शी देवी प्रसाद जी ने लिखा है—राणा विक्रमाजीत ने अपने एक दीवान को, (जो बीजावर्गी जाति के वैश्य थे) मीरांबाई के पास विष ले जाने को भेजा था। दीवान के वंशधरों की ऐसी धारणा है कि मीरांबाई के अभिशाप से वे लोग वंशपरम्परा से दरिद्रता का दुःख भोग रहे हैं।

"मीरा माधुरी" ग्रन्थकार ने कहा है—विक्रमाजीत ने अपने एक बीजावर्गी जातीय मुसाहिब के परामर्शानुसार दयाराम नामक एक व्यक्ति को चरणामृत-विष मीरांबाई के पास ले जाने को भेजा था।

राणा जी द्वारा चरणामृत रूप में विष मीराबाई के पास भेजे जाने का उल्लेख बहुत से ग्रन्थों मे मिलता है। नाभादास, प्रियादास, ध्रुवदास

प्रभृति लेखकों के भक्तमाल ग्रन्थों में, राधाबाई कृत "मीरा माहात्म्य" और "दयाबाई" रचित "विनय मालिका" ग्रन्थों में विष भेजने की बात का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है।

सांप-पिटारी

मीराबाई प्रभु की असीम कृपा से इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गयीं। राणा ने जब देख लिया कि तीव्र विष का भी मीराबाई के शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब ऐसा कुछ करना चाहिये, जिससे तुरन्त ही मीरा की मृत्यु हो जाय। राणा के मस्तिष्क में एक उपाय उद्भावित हुआ। मीरां तो सारा दिन गोविन्द की पूजा में रत रहती हैं। विविध फूलों से अपने गोविन्द की सजावट-बनावट करती हैं। इस कारण राणा ने एक झांपी में कई विषधर सांप भर कर गोविन्द के लिए फूलों की माला रूप में मीराबाई के पास भेज दिये। राणा ने गोविन्द के लिए फूलों की माला भेजी है यह जानकर मीरा आनन्दित हुईं।

इस सम्बन्ध में मीराबाई ने अपने पद में गाया है—

> सांप पिटारी राणा जी भेज्यो,
> मीरां हाथ दियो जाय।
> न्हाय धाय जब देखन लागी,
> सालगराम गई पाय॥

जिस झांपी में सांप रख कर राणा जी ने भेजी थी—उस झांपी में मीरां ने हाथ डाल दिया। स्नान-ध्यान के अन्त में जब देखने लगीं—तब सभी सर्पों को शालग्राम (नारायण) रूप में पा गयीं।

मीरां के एक और पद में मिलता है—

> मेरे राणाजी, मैं गोविन्द गुण गाना।
> राजा रूठे नगरी राखै, हरि रूठ्या कहँ जाना॥

राणो भेज्या पटक दिया, अमृत कर पी जाना।
पिटारा में काला नाग भेज्या, शालगराम करि जाना॥
मीराबाई प्रेम दीवानी साँवलिया वर पाना।

हे मेरे साथियों! मैं गोविन्द का गुण गाती हूँ। राणा रुष्ट होने पर अपना देश रख लेंगे, किन्तु हरि के रुष्ट हो जाने पर मैं कहाँ जाऊँगी? राणा ने विष-प्याला भेजा था, उसे अमृत समझकर मैं पी गयी। पिटारी में राणा ने विषधर साँप भेजा था—उसे मैंने शालग्रामरूप में ग्रहण किया है। मीरां साँवलिया की प्रेमदिवानी है।

शालग्राम की पूजा करने के लिए फूलों की माला रूप में पाकर मीरां ने पिटारी में हाथ डाल कर देखा—इसमें शालग्राम विद्यमान हैं। राणा की इस बार की चेष्टा भी व्यर्थ हो गयी। कहाँ विषधर साँप और कहाँ शालग्राम! भक्त प्रह्लाद की भाँति मीराबाई विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने लगीं। इन दो षड्यन्त्रों में सफल न होने पर राणा मीराबाई का प्राणनाश करने के लिए अन्तिम चेष्टा का सन्धान करने लगे।

शूल बिछावन

राणा की बुद्धि में इस बार एक नवीन उपाय उपस्थित हुआ। राणाने सोचा, शूलों का बिछौना तैयार कर यदि मीरां के पास भेज दिया जाय, तो मीरां जब उसपर सो रहेंगी, तब शूल से विद्ध होकर निश्चय ही मृत्यु के ग्रास में पड़ जायेंगी। शूलों का बिछौना इस प्रकार तैयार किया गया था कि दूर से देख कर यह समझने का कोई उपाय नहीं था कि भीतर शूल रक्खे हुए हैं।★

शूल बिछावन के सम्बन्ध में मीराँबाई ने अपने पद में गाया है—

शूल सेज राणा ने भेजी,
दीज्यो मीराँ सुलाय।

★दि स्टोरी आफ मीराबाई।

साँझ भई मीराँ सोवण लागी,
मानो फूल बिछाय ।
मीराँ के प्रभु सदा सहाई,
राखे विघन हटाय ।
भक्तिभाव से मस्त डोलती,
गिरिधर पे बलि जाय ॥

मीरां के सोने के लिए राणा जी ने शूलों का बिछावन भेजा था। रात में सोने के लिए जाने पर यह फूलों के बिछावन रूप में परिणत हो गया। मीरा के प्रभु सर्वदा उनके सहाय बने रहते हैं। वे समस्त विघ्नों से रक्षा करते हैं। भक्तिभाव से गिरिधर के सामने मस्तक झुकाती हैं।

राणा जी का इस बार का षड्यन्त्र भी निष्ट हो गया। शूलों का बिछावन फूलों में रूपान्तरित हो गया।

इस प्रकार एक एक करके मीराबाई को राणा के उत्पीडन अत्याचारों का सामना करना पड़ा था। प्रभु की कृपा से मीरा इन असीम यन्त्रणाओं को सह कर भजन के मार्ग में अग्रसर होने लगीं।

व्याघ्र-पिंजर

"मीरा सुधा-सिंधु" में लिखा है—अपने षड्यन्त्र में असफल होने से झुँभलाए हुए राणा ने वन में से एक व्याघ्र पकड़वा मँगाया, और तीन दिन तक उसे भूखा रख कर, कोट के अहाते के भीतर एक ओर से व्याघ्र का पिंजड़ा मँगवाया और दूसरी ओर मीरांबाई को बुलवाया। मीरांबाई उस घेरे में चली गयीं तब उस व्याघ्र को पिंजड़े के बाहर खुला निकलवाया। क्षुधातुर व्याघ्र दहाड़ता हुआ छलांग मार कर मीरा के निकट आया। मीरांबाई को इसकी कल्पना तक नहीं थी, फिर भी धैर्य पूर्वक भगवद् स्मरण करते हुए उसने कहा—अहो मेरे श्यामसुन्दर! आज

क्या इस नारसिंहरूप में दासी को दर्शन देने पधारे हो नाथ। इस प्रकार पूरे बेग से पूँछ कर बदड़ा फाड़ कर आता हुआ, व्याघ्र मीराबाई के निकट आकर शान्त हो गया। सिर नीचे झुकाकर, निकट आकर पालतू श्वान के जैसे शान्ति से बैठ गया। तब मीराबाई ने दासी को पुकार कर कहा—मेरे ठाकुर जी आज नरसिंह रूप में पधारे हैं, शीघ्र पूजा की सामग्री ले आओ। राणा और उनके कपटी साथी जो कोट के ऊपर से देख रहे थे, आश्चर्य विमूढ हो गये। मीराबाई ने वनराज को कुंकुम तिलक किया और लाल कनेर के पुष्प चढ़ाये। तब तो राणा को पूरा विश्वास हुआ कि मीरा अवश्य ही मंत्र-तन्त्रादि में निपुण है।

मीराबाई ने सांप-पिटारी, विष-प्याला, शूल-सिंहासन प्रभृति विपत्तों की कहानियों को अपने भजनों के द्वारा व्यक्त किया है। किन्तु उनके किसी भी भजन में व्याघ्र के विषय में कुछ भी नहीं मिलता। इस कारण इस घटना की सत्यता के सम्बन्ध में सन्देह रह गया है। यह किसी भक्त की रचित काल्पनिक घटना सी ही जान पड़ती है।

बार्ड बार्नर्ड शाने महात्मा गांधीजी की हत्या समाचार सुनकर कहा था—"संसार में सज्जन होने का फल यही है।" श्रीभगवान् का लीला-रहस्य समझना कठिन है। सत्ययुग से देखा जा रहा है कि, सत्य-अहिंसा प्रेम के पुजारियों का जीवन कैसा कठोर और दुःखमय होता है। भक्तप्रवर प्रह्लाद का श्रीहरि का नाम जपने में कितनी अग्नि परीक्षाओं का सामना करना पड़ा था। जब अत्याचार अंतिम सीमा पर पहुँच गया, तब श्रीहरि नृसिंहरूप में अपने प्रिय भक्त की रक्षा करने के लिए प्रकट हो गये। प्रेम पुजारी प्रभु ईसामसीह को प्रेम-मैत्री की वाणी का प्रचार करने से क्रूस में प्राण विसर्जन करना पड़ा था। ग्रीस (यूनान) के ज्ञानी श्रेष्ठ सक्रेटिस सत्य का प्रचार करने लगे थे तो राजद्रोही मान लिये गये। राष्ट्र के विचार से हलाहल पीकर प्राण विसर्जन करना पड़ा। राष्ट्रपिता महामानव महात्मा गांधी के लीलावसान के प्रत्यक्षदर्शी तो

हम लोग हैं। महात्माजी की हत्या के कुछ ही दिनों पूर्व जब उनके प्रार्थना-गृह में बम विस्फोट हुआ, तब ऐसी धारणा हुई थी कि—

"जाको राखे साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय।
बार न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥"

भक्त प्रह्लाद की बात स्मरण करके मन को हमने प्रबोध दिया था कि हमारे प्रिय बापू को कोई भी संहार न कर सकेगा। स्वयं रामजी उनको बचा लेंगे। किन्तु उसके कुछ ही दिन बाद महात्माजी के निधन-समाचार से हम एक कठोर धपले में पड़ गये। 'रघुपति राघव राजाराम पतितपावन सीताराम' ने तो अपनी प्रिय सन्तान को इस बार नहीं बचाया! परन्तु दूसरे ही क्षण ईसामसीह, साक्रेटिस की बातें याद पड़ गयीं, ईसा को क्रूसविद्ध दशा से तो भगवान् ने नहीं बचाया। साक्रेटिस विष प्याला भगवान के नाम पर चढ़ा कर पी गये तो भी शरीर पर विष की क्रिया होने से उन्होंने प्राण त्याग किया। दूसरी तरफ प्रह्लाद को अग्नि-कुण्ड में, हाथी के पैरों के नीचे, फेंक देने पर भी प्रभुने प्रह्लाद को बचा लिया। विष प्याला, साँप पिटारी, शूल-बिछावन कुछ भी मीराबाई का प्राण हरण न कर सका विष अमृत हो गया, विषधर सर्प शालग्राम हो गया, शूल का बिछावन फूल के बिछावन में परिणत हो गया। इसी लिए प्रभु का लीला-रहस्य हृदयङ्गम करना सम्भव नहीं है। यहाँ सभी बातों में प्रभु की लीला का प्रयोजन विभिन्न रूपों में संगठित हो रहा है, इसके अतिरिक्त हम और क्या कह सकते हैं! मीराबाई के जीवन की घटनावली प्रमाणित कर रही है कि भगवत् भजन का पथ कितना कठोर है। प्रभु का नाम लेने में जीवन में कितनी ही अग्नि परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो सकने से ही उनकी कृपा प्राप्त होती है।

सहचरी

अशोक वन में सीता की सहचरी रूप में सरमा नियुक्त हुई थीं। राणा विक्रमाजीत ने अपनी बहन उदाबाई को मीरा के प्रति तीव्र दृष्टि रखने के लिए सहचरी रूप में नियुक्त किया। उदाबाई के साथ विपुला, चम्पा, चमेली, नाम की और भी तीन सहचारियाँ थीं। मीराबाई के मन्दिर में सर्वदा साधु महात्माओं का आगमन होता रहता था। इससे मीराबाई के चरित्र पर सन्देह हो जाने से इन सहचरियों को विक्रमाजीत ने नियुक्त किया था। उदा मीराबाई की मानसिक चिन्ता-धारा में परिवर्तन करने के लिए दिन-रात विविध प्रकारों से प्रबोध देती रहती थीं। उदा और मीराबाई में जो वार्तालाप हुआ था वह यह है—

उदाबाई—मीरा, तुम साधुसंग त्याग दो। समूचे नगर में तुम्हारी निन्दा फैल गयी है।

मीराबाई—उनको निन्दा करने दो, इससे मेरा क्या बिगड़ता है। मैं साधु-सन्तों के ऊपर अनुरक्त हूँ।

उदा—तुम मोतियों का हार, रत्नखचित अलंकार पहनो।

मीरा—मैंने मोतियों का हार फेंक दिया है। सद्भाव और सन्तोष मेरे शरीर के अलंकार हैं।

उदा—अन्यान्य स्थानों में कितने बराती-जनता का समागम होता है, और तुम्हारे यहाँ हरिभक्त और साधु लोग अतिथि होते हैं।

मीरा—प्रासाद की छत पर चढ़ कर देखो, साधु-समागम कैसा चमत्कार हो रहा है।

उदा—तुम्हारे लिए चित्तौड़ गढ़ के सभी लोग लज्जित हैं, गढ़ाधिपति राणा का मस्तक लज्जा से झुक गया है।

मीरा—आज चित्तौड़ मुक्त है—गढ़ाधिपति राणा के उद्धार का पथ भी मुक्त है।

उदा—तुम्हारे मा-बाप लज्जित हैं। तुम्हारी जन्मभूमि कलंकित है।

मीरा—मेरे माता-पिता धन्य हैं। जन्मभूमि भी धन्य है।

उदा—राणा तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध हो गये हैं। उन्होंने तुम्हारे लिए हीरा के पात्र में विष रख दिया है।

मीरा—यदि राणा विष रखते हों तो ठीक ही है, मैं चरणामृत रूप में उसे पी जाऊँगी।

उदा—वह साधारण विष नहीं है। एकदम वासुकी साँप का विष है। उसे देखने के साथ ही तुम्हारा प्राण-पक्षी उड़ जायगा।

मीरा—मेरे माँ-बाप कोई नहीं हैं। धरणी मुझे ग्रहण करेगी।

उदा—राणा जी तुम्हारे द्वार पर खड़े हैं। तुम्हारे जीवन का उद्देश्य जान लेना चाहते हैं।

मीरा—मेरा पथ तलवार की भाँति तेज धार का है।* राणा उस जगत् में कभी जा न सकेंगे।

उदा—राणा जी की बात कभी मत टालो, मान लो, नहीं तो क्षुब्ध हो जाने पर तुमको कोई भी आश्रय न रहेगा।

मीरा—गिरधारीलाल विपद में सहाय हैं—उनके प्रति आन्तरिक विनती व्यक्त कर रही हूँ।†

मीराबाई के जीवन के गति-मार्ग का परिवर्तन करने में उदाबाई की चेष्टा व्यर्थ हो गयी। मीरा क्या अब इस जगत् की नारी रह गयी थीं? उनका केवल शरीर मर्त्य-भूमि में था। मन तो दिव्यधाम में विचरण कर रहा था। इस लिए उदाबाई की विषयी बुद्धि की आलोचना मीराबाई के मन को क्षणमात्र के लिए भी विचलित न कर सकी। मीरा ने तो स्पष्ट ही कहा है, उनका पथ तलवार की तरह तेज धार का है। राणा उस जगत् में कभी जा न सकेंगे।

---

* क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया दुर्गमपथस्तद् कवयः वदन्ति।

† मीराबाई की शब्दावली।

उदाबाई का भगवत्-कृपा लाभ

स्पर्शमणि के स्पर्श से काँच भी कंचन हो जाता है। सज्जन के सानिध्य से दानव भी देवत्व प्राप्त कर सकता है। राणा विक्रमाजीत ने उदाबाई को स्वजन समझ कर ही मीराबाई के मन की गति बदल देने के लिए सहेली और सहचरी रूप में नियुक्त किया था। मीराबाई का संग पाकर उदाबाई को भगवत्-कृपा प्राप्त हुई।

'मीराबाई की शब्दावली' ग्रन्थ में मिलता है, एक दिन जब मीराबाई तन्मय होकर निम्नलिखित भजन गा रही थीं तब उदाबाई का चित्त ऐसा विचलित हो गया कि उसी दिन से उदा ने मीराबाई को गुरु रूप में वरण कर लिया। भजन यह है—

जब से मोहिं नन्दनन्दन दृष्टि पड़्यो माई।
कहा कहौं सुन्दरताई बरनिहुँ नहिं जाई।
कुण्डल की झलकनि कपोलन पर छाई।
मनहुँ मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥
भ्रुकुटि कुटिल चपल नैन चितवन में टौना।
खंजन औ मधुप, मीन भूले मृग छौना॥
अधर सधर मधुर हसी मंद मंद हाँसी।
दसन दमक दामिनि दुति चमकत चपलासी॥
चारु चिबुक नासिका सुक ग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप सब विसेषा॥
छुद्र घंटिका अनूप नूपुर अति सुहाई।
गिरिधर प्रभु अंग अंग 'मीरा' बलिजाई॥

जब नन्दनन्दन पर मेरी दृष्टि पड़ गयी, उनका सौन्दर्य क्या कहूँ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब कानों के कुण्डल की छाया गालों पर पड़ती है, तब जान पड़ता है मानो मीन सरोवर त्याग कर

कुडकी मे मीराँजी के जन्म स्थान
पर मन्दिर

मीरॉ-स्मृति मन्दिर चित्तौड़गढ़

मकर के साथ मिलने के लिए आ रहा है। उनकी भृकुटि कुटिल है, चितवन में टोना है। उनकी दृष्टि से खंजन (शरत्कालीन एक प्रकार का पक्षी) मधुकर, मीन और मृग अपनी सन्तान को भूल जाते हैं। उनके दोनों होंठ अति मधुर अर्थात् सुन्दर हैं। उनकी हँसी अति मधुर है। उनके दाँत विद्युत् की तरह चमकते रहते हैं। दोनों गाल अत्यन्त सुन्दर हैं। नाक नोकीली सुक की तरह है, गले में तीन रेखाएं हैं। नटवर प्रभु एक-एक जगत् में एक-एक विशेष रूप धारण करते हैं। क्षुद्र घटिका कटि में, अनूप नूपुर चरणों में शोभा पा रहे हैं। मीरा प्रभु के प्रति अंग का वर्णन कर रही है (अंग-अंग पर बलिहारी जा रही है)।

सत्संग से उदाबाई के जीवन में विशेष परिवर्तन उपस्थित हो गया। और एक दिन की घटना यह है कि उदाबाई ने अति विनीत भाव से मीराबाई के सामने प्रार्थना की कि मैं प्रत्यक्ष रूप से गिरिधर लाल के दर्शन की आकांक्षा करती हूँ। मीराबाई ने उदाबाई की आकुल वासना देख कर चम्पा चमेली आदि सहचरियों को प्रभु की भोगारती का विशेष आयोजन करने को कहा। भोगारती यथोचित रीति से प्रस्तुत हो जाने पर मीरा सबके बीच में बैठ कर विरह और प्रेम के भजन कातर कंठ से गाने लगीं। आधी रात को गिरिधारीलाल ने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होकर मीराबाई से पूछा—"मीरा, तुम मेरे लिए इतनी अधीर क्यों हो रही हो ?" इसके बाद सबके देखते देखते प्रभु मीरा के सामने बैठकर भोजन करने लगे।*

गंभीर निस्तब्ध निशीथ में भगवान् ने अपने प्राणप्रिय भक्त को दर्शन दिये। मीरा के सत्संग में आकर उदाबाई आदि सहचरियों को भगवद्दर्शन प्राप्त हुआ। सबका जीवन धन्य हो गया।

---

* मीराबाई की शब्दावली–पृ० ४

राणा का कराल मूर्ति दर्शन

राणा के आदेश से मीराबाई के मन्दिर में विशेष प्रहरी की व्यवस्था की गयी थी। एक दिन मीरा के मन्दिर में गंभीर रात्रि में पुरुष का वार्तालाप सुनकर प्रहरी ने राणा को समाचार दिया कि, इतनी गंभीर रात्रि में मीरा किसी पुरुष के साथ रंगरहस्य कर रही है। राणा क्रोध से अन्धे हो कर तलवार हाथ में लिये मीरा के मन्दिर में प्रवेश कर इधर-उधर सर्वत्र निरीक्षण करने लगे। राणा ने किसी भी पुरुष को न देख कर मीरा से पूछा—"तुम अबतक किस पुरुष के साथ रङ्ग रहस्य कर रही थी?" मीरा ने कहा—"मेरे परम मित्र गिरधरलाल तो आपके सामने ही विराजमान हैं। आप क्यों मुझसे इस विषय में पूछ रहे हैं?" राणा गंभीर दृष्टि से चारों तरफ मीरा के प्रेमिक के सन्धान में दृष्टि निक्षेप करने लगे, किन्तु किसी को भी न देख सके। कुछ क्षण बाद पलंग के ऊपर नृसिंहरूपी कराल मूर्ति देख कर भय से काँपने लगे और भूतल पर चेष्टा-हीन अवस्था में गिर पड़े। कुछ देर बाद ज्ञान प्राप्त कर मीरा से उन्होंने कहा—"हमारे कुल-देवता एकलिङ्ग देव को तुम इष्ट रूप में क्यों नहीं मानती? तुम्हारे इष्ट-देव की तो भयंकर मूर्ति है।"*

"मीराबाई की जीवनी और प्राप्ति" ग्रन्थ में मिलता है—प्रहरी के मुँह से समाचार पाकर राणा ने मीरा के मन्दिर में प्रवेश कर मीरा से पूछा—"अब तक तुम किस पुरुष के साथ बातचीत कर रही थी?" मीरा ने कहा—"मैं अब तक गिरिधर गोपाल के साथ वार्तालाप कर रही थी।"

इसके बाद राणा ने देखा कि गिरिधरगोपाल कराल मूर्ति धारण कर उनकी तरफ आ रहे हैं। उनके शरीर से और दो हाथ निकल रहे हैं। मीराबाई तो अपने इष्ट गिरिधरगोपाल को प्रेममय रूप में देख

---

* मीराबाई की शब्दावली—पृ० ४

रही हैं, और अत्याचारी राणा के सामने प्रभु कराल मूर्ति दिखा रहे हैं। यही देव-दानव में पार्थक्य है।

मीराबाई-अकबर-साक्षात्कार

भक्तों का गुण कीर्त्तन कर उनका माहात्म्य बढ़ाने के लिए उनके अनुरागीगण विविध अवास्तव कल्पनाओं की रचना करते हैं। ऐसी कल्पना की रचना अतीत युग से चली आ रही है। मीराबाई के जीवनी-लेखक और नाटककारगण भी यह सुयोग ग्रहण करने में नहीं चूके हैं। सम्राट अकबर सोलहवीं शताब्दी के भारत के अप्रतिद्वन्द्वी नृपति थे। मीराबाई राजपूत-कुलनारी थीं। अकबर के राजत्व के प्रारम्भ में राजस्थान का शौर्यवीर्य प्राय समाप्त हो चला था। परन्तु अकबर की जयजयकार भारत में सर्वत्र फैली हुई थी। इस कारण राजपूत रमणी के निकट मुगल-सम्राट अकबर की उपस्थिति का उल्लेख कर मीराबाई के जीवनी-लेखक और नाटककारों ने गौरव बोध किया है।

राघवदास कृत हस्तलिखित भक्त-चरित्र ग्रन्थ में (२७८ श्लोक) लिखा है—

"भूप अकबर रूप सुन्यो अति
तानहिंसेन लिये चलि आयौ॥"

भूपति अकबर मीराबाई के रूप की बात सुनकर तानसेन को साथ लेकर आये थे। नाभादासजी कृत "भक्तमाल तथा भक्तिरसबोधिनी" टीका ग्रन्थ के ६वें श्लोक में मिलता है—

"रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिए लिए,
संग तानसेन देखिबे को आयो है।"

मीराबाई के रूप की महिमा सुनकर अकबर तानसेन को साथ लेकर मीराबाई को देखने आये हैं।

स्वामी जगदीश्वरानन्द महाराज, प्रीतिकणा दत्तजाया, अयोध्यावासी

श्रीसीताशरण, भगवानप्रसाद जी, गुरुदत्त तथा यादव ने अपने ग्रन्थों और निबन्धों में मीराबाई-अकबर-साक्षात्कार का वर्णन किया है। स्वामी जी महाराज और दत्तबाबा ने लिखा है—अकबर ने मीरा के संगीत से मुग्ध होकर उनको मुक्ताओं का हार देना चाहा था, मीरा ने उसे प्रत्याख्यान किया था। बाद को अकबर ने उसे मीरा को गिरिधरलाल के लिए देने का निवेदन किया। इस पर सहमत होकर मीराबाई ने मुक्ता-हार ग्रहण किया। राणाजी यह समाचार सुन कर तलवार हाथ में लिये मीरा के पास उपस्थित हुए और उनकी भर्त्सना की। मीरा दुःख से तापित होकर प्राण विसर्जन करने को उद्यत हुईं।

ऐतिहासिक प्रमाणों के द्वारा देख लिया जाय कि मीराबाई और अकबर का साक्षात्कार कितना सत्य है। मीरामाधुरी ग्रन्थ लेखक ने "अकबर तानसेन तथा मीराबाई" शीर्षक अंश में लिखा है—अकबर का जन्म सं० १५९९ में (१४ श्रावन, ९४९ हिज्री, २३ नवम्बर १५४२ ई० वृहस्पतिवार को) अमरकोट नामक स्थान में हुआ। जन्म के कुछ दिन बाद अकबर अपने पिता के साथ भारत के बाहर चले गये और बाद को १५५४ ई० के अन्त में भारत लौट आये। सम्वत् १६१३ (२७ जनवरी १५५६ ई०) में हुमायूँ की मृत्यु हुई और १४ फरवरी कलानौर में अकबर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इस समय अकबर की अवस्था केवल तेरह वर्ष ढाई मास थी। सम्वत् १६१६, ई० सन् १५६२ में अकबर राजा रामचन्द्र के यहाँ से तानसेन को अपने दरबार में ले आये।* इसके पाँच वर्ष बाद लगातार चार मास तक संग्राम करके अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग को घेर लिया। १५६८ ई० की २३ फरवरी मंगलवार को चित्तौड़ दुर्ग का संरक्षण करते समय जयमल्ल अकबर द्वारा निहत हुए। चित्तौड़ के इस अंश में अकबर ने जो बर्बरता और

* मआसिरुल उमरा हिन्दी भाग १, पृ० ३३०

उद्दण्डता का परिचय दिया था वह तैमूर और हलाकू की नृशंसता से किसी भी अंश में कम नहीं है। इस कारण अकबर के प्रति राजपूतों का मनोभाव कैसा था वह इस घटना से ज्ञात हो जाता है। भोजराज की स्त्री मीराबाई की अवस्था १५६२ ई० में ६० वर्ष होना आवश्यक है। किन्तु इसके बहुत पहले मीराबाई स्वदेश त्याग कर १५३१ ई० के बाद चित्तौड़ त्याग कर मेड़ता चली गयीं और १५३८ ई० में श्रीवृन्दावन की यात्रा उन्होंने की थी। १५३६ ई० में श्रीवृन्दावन त्याग कर द्वारकाधाम जाकर १५४६ ई० में उन्होंने शरीर त्याग दिया। १५७२ ई० में अकबर ने गुजरात पर आक्रमण किया। इस लिए मीरा अकबर साक्षात्कार काल्पनिक अवश्य ही है।* विक्रमाजीत के राजत्वकाल में परन्तु मीराबाई के चित्तौड गढ में रहते समय अकबर का जन्म ही नहीं हुआ था। परन्तु पूर्ण यौवन प्राप्त कर अकबर द्वारा राजपूतों पर आधिपत्य स्थापित करने के बहुत पहले मीराबाई इस पृथिवी से बिदा हो चुकी थीं। मीराबाई के अन्तर्धान के समय अकबर चार वर्ष के शिशु मात्र थे। इस लिए मीराबाई के रूप-लावण्य की बात सुनकर एक चार वर्ष के शिशु के लिए उनके पास जाना और मोतियों का हार प्रदान करना प्रलाप-वचन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? यदि कोई कहे, अकबर ने गुजरात जाकर मीराबाई के साथ साक्षात् किया था तो यह घटना १५७२ के पूर्व किसी तरह भी नहीं हो सकती। किन्तु इतना दीर्घ जीवन मीराबाई को किसी प्रकार भी नहीं मिला था। ऐसी काल्पनिक घटना जोड़ देने से मीराबाई की महिमा न घटा कर ऐतिहासिक सत्य पर आघात किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास के साथ मीराबाई का पत्र-व्यवहार

लोगों के मुँह से ऐसी बात सुनी जाती है कि मीराबाई ने राणा द्वारा किये गये अत्याचार से उद्वेगित होकर, दूसरा उपाय न देखकर,

---

* मीरामाधुरी पृ० ७४

गोस्वामी तुलसीदास को एक पत्र दिया था, उन लोगों में जो पत्रालाप हुआ था उसका मर्म यह है कि—

मीराबाई का पत्र ऐसा है —

श्रीतुलसी सुखनिधान दुःखहरण गोसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करूँ हरो शोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबहिँ उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेश महाई॥
बालपने से मीरा कीन्ही गिरिधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटे नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हो हरि भगतन सुखदाई।
हमकूँ कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥

श्रीतुलसीदासजी सुख निधान, दुःख हरणकारी गोसाईं, मैं बार बार प्रणाम करती हूँ—मेरा दुःख हरण करो। मेरे घर के स्वजन मेरे साधु-संग में बाधा प्रदान कर रहे हैं और मुझे साधना-भजन में महा क्लेश दे रहे हैं। बाल्य काल से श्रीगिरिधरलाल के साथ मेरी मित्रता हुई है। उनके साथ मेरी मित्रता इतनी सुदृढ़ हो गयी है कि वह अब छिन्न नहीं की जा सकती। हे सुखदानकारी हरिभक्त गोसाईं, आप मेरे माता पिता के समान हैं। अब मुझे क्या करना चाहिये, यह लिखकर समझाइये।

इसके उत्तर में गोसाईंजी ने जो पत्र दिया था, वह इस प्रकार है—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
त्यजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रजबनिता, भये सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद् सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥

तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्राण ते प्यारो ।
जासो होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥

राम और वैदेही जिनके प्रिय नहीं हैं, वे परम स्नेहपात्र होने पर भी कोटि वैरियों की तरह उन्हें त्याग देना चाहिये। ईश्वर के लिए प्रह्लाद ने पिता को, विभीषण ने भ्राता को, भरत ने माता को, व्रजबालाओं ने अपने पतियों को त्याग दिया था, इस लिए उनका आचरण अपने और जगत् के मंगल का कारण हुआ है। एक मात्र श्रीराम के सम्पर्क से ही आत्मीय स्वजन श्रद्धा और भक्ति के पात्र हैं। जिस आँजन से आँख ही फूट जाती है, उसको लगने से लाभ ही क्या है? तुलसी कहते हैं कि वही परम हितकारी है, पूज्य है और प्राण से भी प्रिय है, जिससे रामपद में स्नेह उत्पन्न होता है। इसलिए रामपद में जिस बात से भक्ति उत्पन्न होती हो, वही तुमको करना चाहिये।

प्रश्न यह है कि मीरा के पत्र में जो भाषा है, वह मीराबाई की अपनी नहीं है। मीरा के भजनों के साथ तुलना करके देखने से स्पष्ट रूप से ही अनुमान किया जायगा कि ऐसी भाषा उन्होंने कभी किसी भजन में नहीं लिखी है। इसके सिवा मीराबाई ने जीवन में कुछ भी गिरधरलाल को छोड़ कर नहीं किया। मीरा की तुलसीवन्दना, शिववन्दना सभी भजनों में गिरिधर विद्यमान हैं। विषपान से लेकर अन्य सभी परीक्षाओं में जो हास्यपूर्ण मुख से उत्तीर्ण हुई हैं—उसके लिए किसी मनुष्य विशेष के सहायतार्थ ऐसा पत्र लिखना कितना सम्भव है, बताना कठिन है।

अब ऐतिहासिक प्रमाणों के द्वारा देख लेना चाहिये कि इस पत्र की यथार्थता कितनी है। 'मीरा माधुरी' ग्रन्थ लेखक कहते हैं—गोसाई जी का जन्म १४९७ ई० में (गोसाई चरित मत से) हुआ। विक्रमाजीत सिंहासनारूढ होने के बाद मीराबाई के ऊपर यथेच्छ अत्याचार करके १५३६ ई० में परलोकवासी हुए। इस लिए कहना पड़ता है कि इसी समय के बीच मीरा तुलसीदास पत्र व्यवहार हुआ था। उधर मीराबाई,

विक्रमाजीत के सिंहासन पर आसीन होने कुछ दिन बाद ही चित्तौड़ त्याग कर मेड़ता चली गयीं और वहाँ से श्रीवृन्दावन गयीं। १५३८ ई० में उदयसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर आसीन हुए। बाहरी शत्रुओं के द्वारा चित्तौड़ विध्वस्त हुआ और सर्वत्र अमंगल प्रकट हुआ तो द्वारका से मीराबाई को लौटा लाने के लिए एक ब्राह्मण को भेजा गया। १५२६ ई० में तुलसीदास का विवाह हुआ। पाँच वर्ष गृहस्थाश्रम में रहकर १५३२ ई० के बाद उन्होंने प्रयाग, अयोध्या, रामेश्वर, द्वारकाधाम, बद्रीनाथ, मानसरोवर प्रभृति स्थानों में जाकर तीर्थ पर्यटन किया। इन तीर्थ-पर्यटनों में उनके १४ वर्ष १० मास १७ दिन व्यतीत हुए थे। इस अवधि में पत्रालाप सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए विचारपूर्वक देखने से यही प्रतीत होता है कि मीराबाई और गोसाईं'जी में पत्रों का आदान-प्रदान होना असम्भव है। एक और विषय पर विचार करना आवश्यक है कि मीराबाई के इष्टदेव श्रीकृष्ण थे। उस समय उनके स्वधर्मी बहुत से भक्त श्रीवृन्दावन में थे, तो फिर उन्होंने किस कारण रामभक्त वैरागी को पत्र देकर उपदेश माँगा था? परन्तु उन दिनों लोकसमाज में गोसाईं'जी का विशेष प्रचार नहीं हुआ था। (मीरा-माधुरी ७१ पृ०)

अनाथबन्धु रचित "मीराबाई" ग्रन्थ में मिलता है—

"Mira Tulsidas letter–it might be to any one else– This would go against the sense of historical chronology."

इस कारण ऐतिहासिक प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास और मीराबाई में पत्रों का आदान-प्रदान होना असम्भव है।

मेवाड़-त्याग

मीराबाई के ऊपर अमानुषिक अत्याचार का समाचार मीरा के पितृव्य वीरमदेवजी के पास पहुँच जाने पर वीरमदेवजी १५३५ ई० में

मीराबाई को चित्तौड़ से मेड़ता ले गये थे।* मीरा ने वैधव्य-जीवन के १३ वर्ष मेवाड़ में बिताये। १५२२ ई० में गुजरात के बहादुर-शाह ने चित्तौड़ आक्रमण किया। १५३४ ई० में फिर आक्रमण करके उन्होंने चित्तौड़ को ध्वंस-स्तूप मे परिणत कर दिया। उन दिनों विक्रमाजीत का शासनकाल था। उसी समय मीराबाई मेवाड़ त्याग कर मेड़ता चली गयीं और वहाँ परम आनन्द से साधु-सेवा और भजन में समय बिताने लगीं। 'मीरा माधुरी' ग्रन्थ के मतानुसार १५३१ ई० से १५४० ई० के बीच मीराबाई चित्तौड़ त्यागकर मेड़ता चली गयीं। १५३८ ई० में जब राव मालदेवने मेड़ता आक्रमण किया, तो यह समझकर कि इस रणभेरी में साधना-भजन में बाधा पहुँचेगी, मीरा ने तीर्थ-यात्रा की इच्छा से मेड़ता त्याग दिया। मेड़ता त्याग कर मीरा ने कौन कौन तीर्थों का दर्शन किया था, उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। नागरीदासजी ने अपने एक पद में कहा है—राणा के कनिष्ठ भ्राता देह-सम्पर्क से मीरा के भर्ता थे। भर्ता की पारलौकिक क्रिया का सम्पादन के लिए मीरा गंगादिक तीर्थ सम्पन्न कर श्रीवृन्दावन चली गयीं। मेड़ता त्याग कर मीरा का श्रीवृन्दावन जाना १५३८ ई० में हुआ था, ऐसा अनुमान किया जाता है।

श्रीवृन्दावन का संक्षिप्त परिचय

श्रीकृष्ण का धाम व्रजभूमि पूर्णरूप से चित्तत्व है। उसमें सर्व चिद्गत विचित्रताएं विद्यमान हैं। चिद्गत प्रकरण, चिद्गत स्थान, चिद्गत मृत्तिका जलादि, चिद्गत नद-नदी-सरोवर, चिद्गत चन्द्र-सूर्य-नक्षत्रादि व्रजधाम में अवस्थित रह कर श्री नन्दनन्दन का आनन्द बढ़ा रहे हैं। दृष्टि से मायिक जाल न हटने से ये विचित्रताएं दिखाई नहीं पड़तीं।

* "मीरा"—श्यामपति पाण्डेय (इन्दौर)

श्रीवृन्दावन अप्राकृतधाम है। ब्रज के ८४ कोस प्रभु का लीलास्थान है। एक मात्र प्रत्यक्षदर्शी के अतिरिक्त दूसरों के लिए ब्रज का आनन्द व्यक्त करना कठिन है। ब्रज में दो वस्तुएँ हैं—प्रभु और उनका भक्त। वहाँ युक्ति-तर्कों की आवश्यकता नहीं है। प्रभु को कोई गोपाल, कोई सखा, कोई पति, कोई प्रभु भाव से पुकार-पुकार कर आकुल है। सभी प्रभु को प्रत्यक्ष भाव से पाने के अभिलाषी हैं।

वराह पुराण में ऐसा विवरण मिलता है कि वराहरूपी नारायण ने अपने दाँतों के ऊपर पृथ्वी को धारण कर चलना प्रारम्भ किया। तब पृथ्वी ने पूछा—भगवान्, महाप्रलय हो जाने से चारों तरफ तो केवल जल ही दिखाई पड़ रहा है, आप मुझे कहाँ स्थान दीजियेगा?" वराह रूपी भगवान ने कहा—"जहाँ केवल हरी पत्रावली तुमको दिखाई पड़े वहाँ तुम्हारा स्थान होगा।" इसके बाद धरणी ने चलते-चलते देखा, एक स्थान में वृन्दा और लता का कुंज विद्यमान है। इसके पास से एक नीलवर्णी नदी बह रही है। इस सुन्दर अप्राकृत धाम में उपस्थित होकर भगवान् ने कहा—"यही स्थान श्रीधाम श्रीब्रज वृन्दावन है। महाप्रलय के समय भी यह स्थान ध्वंस न होगा।"

ऐसा ही प्रसङ्ग गर्ग-संहिता में भी है। भक्त वृन्दावन की ही तरफ ताक रहे हैं।

श्रीवृन्दावन-माहात्म्य

परमा वैष्णवी मीराबाई के प्रभु गिरिधरनागर की लीलाभूमि श्री वृन्दावन है। इस कारण प्रभु का लीला-वर्णन के साथ प्रभु के लीला-स्थान का माहात्म्य वर्णन किया जा रहा है।

पाद्मे पाताल खण्डे—

श्री पार्वत्युवाच

वृन्दावनस्य माहात्म्यं रहस्य परमाद्भुतम्।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो॥

पार्वती ने महादेव से पूछा—हे महाप्रभो! वृन्दावन का परमाद्भुत माहात्म्य-रहस्य सुनने की इच्छा करती हूँ। इस कारण मेरे निकट उसका वर्णन करो।

ईश्वरउवाच

कथितं ते प्रियतमे गुह्यतमोत्तमम्।
रहस्यानां रहस्यं यत् दुर्लभानाञ्च दुर्लभम्॥
त्रैलोक्य गोपित देवि देवेश्वर सम्पूजितम्।
ब्रह्मादि वाञ्छित स्थानं सुरसिद्धादिसेवितम्॥
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्नृत्य गीत निरन्तरम्॥
श्रीमद् वृन्दावन रम्यं पूर्णानन्द रसाश्रयम्॥

महादेव ने कहा—हे प्रियतमे! तुमको मैं गुह्य से भी अति गुह्य, रहस्य से भी रहस्य और दुर्लभ से भी दुर्लभ वृन्दावन के विषय में सुना रहा हूँ। हे देवि, यह स्थान त्रिभुवन में गोपनीय है: देवेश्वर द्वारा पूजित है। ब्रह्मादि का भी अभिलषित है और सुरसिद्धगण द्वारा सेवित है। योगन्द्र और मुनीन्द्रादि सभी सर्वदा उनके ध्यान में निरत रहते हैं। उस स्थान में अप्सराकुल निरन्तर नृत्य और गन्धर्वगण निरन्तर गीतों में समासक्त रहते हैं। रमणीय वृन्दावन धाम पूर्णानन्द रसका एक मात्र आधार है।

भूमिश्चिन्तामणि स्तोयममृतं रसपूरितम्।
वृक्षा. सुरद्रुमास्तत्र सुरभिवृन्दसेविता।
स्त्री लक्ष्मी पुरुषो. विष्णुस्तद्दशांशा समुद्भवः।

वृन्दावन की भूमि चिन्तामणि के तुल्य है, जल अमृत है, और सुरभिगण सेवित तरुराजि सुरद्रुम सम है। उस स्थान की नारियाँ साक्षात् लक्ष्मी हैं, नरगण विष्णु हैं और उनके अंशांशजात सभी श्रीहरि के स्वरूप हैं।

तत्र कैशोर वयसं नित्यमानन्द विग्रहम् ।
गतिर्नाट्यं कथा गानं स्मितवक्त्रं निरन्तरम् ॥

वहाँ सभी किशोरवयस्क हैं, सभी नित्यानन्द विग्रह हैं। वहाँ के सभी लोगों की गति ही नृत्य है, बातचीत ही गान है और सभी के वदन निरन्तर मृदु हास्य से विराजित हैं।

शुद्ध-सत्त्वैः प्रेमपूर्णं वैष्णवै स्तद्वनाश्रयम् ।
पूर्णं ब्रह्म सुख मग्नं स्फुरत्तन्मूर्ति तन्मयम् ॥

शुद्ध सत्व प्रेमपूर्ण वैष्णवगण सर्वदा वृन्दावन का आश्रय किये हुए हैं। सभी पूर्ण ब्रह्म सुख में मग्न हैं और सभी तन्मय भाव से तन्मूर्ति स्वरूप में अवस्थित हैं।

प्रमत्त कोटि भृङ्गाद्यै कूजत् कलमनोहरम् ।
कपोतक सुसगीतमुन्मत्तालि सहस्रकम् ॥
नाना वर्णैश्च कुसुमैस्तद्रेणु परिपूरितम् ।
सुस्निग्ध सौरभश्रान्त मुग्धीकृत जगत्रयम् ॥

प्रमत्त कोटि कोटि भ्रमर वृन्दावन में सर्वदा मनोहर गुंजन कर रहे हैं। कपोतों के सुसगीत से और उन्मत्त अलि सहस्र की ध्वनि से वह स्थान शब्दायमान है, नाना वर्णों के कुसुमों और उनकी रेणुओं से सर्वत्र परिपूरित है। उसकी सुस्निग्ध सुरभिगन्ध से त्रिजगत् मोहित हो रहे हैं।

मन्द मारुत संसिक्त वसन्तऋतु सेवितम् ।
पूर्णेन्दु नित्याभ्युदयं सूर्यमन्दांशु सेवितम् ॥
अदुःख सुख विच्छेद जरामरण वर्जितम् ।
अक्रोधगत मात्सर्यमभिन्नमनहङ्कृतम् ॥

वृन्दावन निरन्तर मन्द मारुत संसिक्त वसन्तऋतु, पूर्ण चन्द्रमा और मन्दांशु सूर्यदेव द्वारा परिसेवित होता रहता है। वहाँ दुःख सुखविच्छेद—जरामरण, क्रोध, मात्सर्य, अहंकार कुछ भी नहीं है।

यत्र वृक्षादि पुलकैः प्रेमानन्दाश्रु वर्षितम् ।
किं पुनश्चेतना युक्तै विष्णुभक्तैः किमुच्यते ॥

हे प्रियतमे, जहाँ वृक्षादि के पुलक से प्रेमानन्दाश्रु वर्षित होता है वहाँ चेतनवान विष्णु भक्तों की बात और क्या कहूँ।

गोविन्दङ्घ्रि रजस्पर्शान्नित्यं वृन्दावनं शुचि ।
यस्य स्पर्शन मात्रेण पृथ्वी धन्या जगत्त्रये ॥

गोविन्द के पादपद्मों के रेणुस्पर्श से वृन्दावन निरन्तर पवित्र बना हुआ है। वृन्दावन के स्पर्श से पृथिवी त्रिजगत् में धन्या है।

गोविन्द देहतोऽभिन्नं पूर्णं ब्रह्म सुखाश्रयम् ।
मुक्ति स्तत्र यतः स्पर्शात्तन्माहात्म्यं किमुच्यते ॥
तस्मात् सर्वात्मना देवि हृदिस्थं तद्धाम ।

पूर्ण ब्रह्म सुखाश्रय यह वृन्दावन गोविन्द की देह से अभिन्न है, वृन्दावन के स्पर्श से जब मुक्ति प्राप्ति होती है, तब इसका माहात्म्य क्या वर्णन किया जा सकता है ! अतएव हे देवि, सर्वान्तःकरण से वृन्दावन को हृदय मे धारण करो।

गोलोकैश्वर्यं यत्किञ्चित् गोकुले तत् प्रकीर्त्तितम् ।
वैकुण्ठादि वैभवं यत् द्वारकायां प्रकाशयेत् ।
तस्मात्त्रिलोक मध्ये तु पृथ्वी धन्येति विश्रुता ॥

भगवान् ने गोलोक का ऐश्वर्य गोकुल में और वैकुण्ठादि का वैभव द्वारका में प्रकाशित किया है, किन्तु परम ऐश्वर्य ब्रह्म निरन्तर वृन्दावन में प्रकाश किये हुए हैं। इस कारण पृथिवी त्रिभुवन में धन्या नाम से प्रसिद्ध है।

द्वादशारण्यमत्रैव प्रधानं कथितं क्रमात् ।
भद्रश्रीलौहभाण्डीर महातल खदीरकाः ।
बहुलं कुमुदं काम्यं मधुवृन्दावनं तथा ।

पूर्वे पञ्चवनं प्रोक्तमन्दयो परनं ततः।
कदम्ब खण्डीकं नन्दवनं नन्दीश्वरं तथा।
नन्दनानन्द खण्डञ्च पालाशा शोकवेतकम्।
सुगन्धिमादनं कैलममृतं भोजनस्थलम्।
सुख प्रसाधनं वत्स हरणं शेषशायनम्।
श्यामपुच्छ दधिग्रामं चक्रभानुपुरं तथा।
शङ्कित विरदञ्चैव बालक्रीडञ्च धूसरम्।
केमुद् मयरो वीरमुत्मुकञ्चापि नन्दनम् ॥

इस वृन्दावन में द्वादश वन प्रधान हैं। ये मद्रवन श्रीवन, लौहवन, माण्डीर वन, महावन, तालवन, खदिरवन, बहुलवन, कुमुदवन, काम्य वन, मधुवन, और वृन्दावन नाम से कीर्तित हैं। इनमें मद्रादि पञ्चवन कालिन्दी के पूर्व में और अवशिष्ट सात पश्चिम में अवस्थित हैं। इन द्वादश वनों के अतिरिक्त उक्त कदम्ब खण्डीकादि और भी तीन संख्यक उपवन व्रज में विद्यमान हैं।

वृन्दावन विहारेषु कृष्ण कैशोर विग्रहम्।
अन्यारण्येषु स्थानेषु बालपौगण्डयौवनम् ॥

श्रीकृष्ण वृन्दावन विहार में किशोर रूप, वन विहार में बाल्य, पौगण्ड और यौवन रूप धारण करते थे।

ब्रह्म वैवर्त पुराण जन्मखण्डे—

तथान्यच्चेतिहासञ्च वक्ष्यामि शृणुपुण्यदन्।
येन वृन्दावनं नाम पुण्यक्षेत्रञ्च भारते ॥
राधा षोडशनाम्नाञ्च वृन्दानाम श्रुतौ श्रुतम्।
तस्या क्रीडावनं रम्या तेन वृन्दावनं स्मृतम् ॥
गोलोके प्रीतये तस्या कृष्णेन निर्मितं पुरा।
क्रीडार्थे भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावन स्मृतम् ॥

इसके बाद अन्य पुण्यप्रद इतिहास कहता हूँ सुनो। जिस प्रकार

पुण्यभूमि भारत में वृन्दावन नाम से प्रसिद्ध है वह वर्णन करता हूँ। श्रुति में ऐसा लिखा हुआ है कि, राधा के षोड़श नामों में वृन्दा एक नाम है; उस राधिका का रमणीय क्रीडावन वृन्दावन नाम से अभिहित है। पुराकाल में श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को प्रीति प्रदानार्थ गोलोक में उस वन को बनाया था—तत्पश्चात् क्रीड़ार्थ भूलोक में यह वृन्दावन नाम से प्रथित हुआ है।

श्रीवृन्दावन और मीराबाई

हमारे स्वजन परम देवता भगवान श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने युगावतार रूप से आविर्भूत होकर अपनी भक्त-मण्डली के सम्मुख श्रीवृन्दावन माहात्म्य व्यक्त किया है। व्रज के चौरासी कोसों में लुप्त तीर्थों का उद्धार महाप्रभु ने स्वयं और उनके पार्षद श्रीरूपसनातन गोस्वामीगण ने प्रभु की आज्ञा से किया है।

ध्रुवदासजी ने मीराबाई के श्रीवृन्दावन-दर्शन के सम्बन्ध में लिखा है—

"आनंद सो निरखत फिरै, वृन्दावन रसखेत।"

मधुर श्रीवृन्दावन धाम में आनन्द से मीरा सब निरीक्षण करके परिभ्रमण करती थीं। और भी उन्होंने लिखा है—

नृत्यत नूपुर बांधि के, नाचत लै करतार।
विमल हियौ भक्तिनिमिज़ी, तृण सम गन्यो संसार॥

मीरा पैरों में नूपुर पहन और हाथ में करताल लेकर नाचती थीं। विमल (शुद्ध-चित्त) होकर उन्होंने भक्ति प्राप्त की थी। वे तृणतुल्य संसार की गणना करती थीं।

श्रीवृन्दावन के सम्बन्ध में मीराबाई ने स्वयं राग सारंग में गाया है—

आली म्हांने लागे वृन्दावन नीको।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्दजी को।

निरमल नीर बहत जमुना में, भोजन दूध दही को ॥
रतन सिंहासण आप बिराजे, मुगट धरयो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका, शबद सुनत मुरली को ॥
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, भजन बिना नर फीको।

हे सखी! मुझे वृन्दावन अति उत्तम लगता है। घर-घर तुलसी-ठाकुर पूजा होती है, गोविन्दजी के दर्शन होते हैं। यमुना में निर्मल जल बह रहा है, यहाँ दूध दही भोजन सामग्री है। प्रभु रत्न सिंहासन पर विराजते हैं। तुलसी को मुकुट रूप में धारण किया है। श्रीराधा कुंज-कुंज में प्रभु की मुरली-ध्वनि सुन कर भ्रमण कर रही हैं। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हैं, प्रभु के भजन के बिना अनुरूप जन्म फीका है।

वृन्दावनवासियों पर मुग्ध होकर मीराबाई कहती हैं—

गोकुल के बासी भले हो आये गोकुल के बासी।
गोकुल की नारि देखत, आनंद सुख रासी।
एक गावत, एक नाचत एक करत हाँसी।
पीताम्बर फेंटा बाँधे अरगजा सुवासी।
गिरधर से सुनवल ठाकुर मीरासी दासी।

गोकुलवासी अति उत्तम हैं, गोकुल की नारियों को देखने से ज्ञात पड़ता है ये आनन्द की मतिमूर्तियाँ हैं। एक नाच रही हैं, एक और हँस रही हैं। वे *पीताम्बर की किंकिणी बाँधकर कितनी ही सुगन्धमय* वस्तुएँ लेप करती रहती हैं। मेरे गिरिधर सुन्दर हैं, प्राण प्रिय ठाकुर हैं। मीरा उनकी दासी हैं।

मीराबाई के प्राणप्रिय ठाकुर का लीलास्थल श्रीवृन्दावन है। इस कारण यह पवित्र स्थान उनका प्राणप्रिय होगा इसमें सन्देह क्या हो सकता है? वृन्दावन की प्रति धूलि कण में प्रभु और गोपियों का पदरज रहता है। वृन्दावन परम पवित्र धाम है।

श्रीवृन्दावन में मीराबाई

मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ की ममता त्याग कर मीराबाई कुछ दिन अपने पितामह के घर मेड़ता में ठहरी रहीं। वहाँ से १५३८-३६ ई० में श्रीवृन्दावन दर्शन करने के लिए आयीं।* मीराबाई के श्रीवृन्दावन आगमन के सम्बन्ध में मीराबाई ग्रंथ रचयिता स्वामीवामदेवानन्द ने लिखा है—'व्रजबिहारीलाल के लीलास्थल श्रीवृन्दावन धाम की बात मीरा बहुत दिनों से सुनती आ रही थीं, किन्तु वहाँ जाने का कोई सुयोग नहीं मिला था। इस बार वे धीरे धीरे सुमधुर कंठ से गिरधारीलाल का जयगान करते करते वृन्दावन की तरफ अग्रसर होने लगीं। सुदीर्घ-पथ मे बहुत से लोग उनके हरिनाम गान से आकर्षित हो गये। कोई-कोई इतने मोहित हो गये कि, मीरा के साथी होकर श्रीवृन्दावन की तरफ अग्रसर होने लगे। कहा जाता है कि चरवाहे के वेश में स्वयं श्रीकृष्ण मीरा के साथ साथ रहते थे। मीरा जिस स्थान म ही जाती थीं, अपूर्व भावावेग से वह स्थान परिपूर्ण हो उठता था। पता नहीं, किस मोहिनी शक्ति का आकर्षण या—जिसके लिए इतने लोग एकदम मोहित हो जाते थे। वृन्दावन में आकर मीरा एकदम अपने आप को भूल गयीं। राह, घाट, वन, उपवन जहाँ ही जाती थीं, श्रीकृष्ण की सुमधुर स्मृति ही जाग उठती थीं। उनको मुहुर्मुहु भाव समाधि होने लगी। वे अपना अस्तित्व मानो भूल ही गयीं। कहा जाता है कि, इस समय वे भावावेश में प्राय: ही श्रीकृष्ण के दर्शन पाती थीं। यमुना के तट पर श्रीकृष्ण चरवाहे बालकों के साथ खेल रहे हैं, व्रजगोपियों के साथ वन वन में विहार कर रहे हैं—मीरा भावावेश में सजल नेत्रों से खड़ी हो वहा सुमधुर दृश्य देख रही हैं। उनके आगमन से वृन्दावन ने मानो अल्प दिनों में ही नवीन रूप धारण कर लिया मीरा की बातें

* "मीरा-माधुरी।

सुनकर चारों तरफ से बहुत से भक्त उनके सुमधुर कण्ठ का संगीत सुनने के लिए वहाँ आ पहुँचे। अविलम्ब ही अशेष उत्सवानन्द से वृन्दावन-वासी मत्त हो उठे।'

'दि स्टोरी आफ मीराबाई' ग्रंथ के प्रणेता श्रीबांकेबिहारीजी ने 'इन क्वेस्ट आफ दि फ्लूट प्लेयर (मुरलीधर का संधान) शीर्षक अध्याय में लिखा है—राजपूताने की उत्तप्त बालुकाराशि अतिक्रम करने पर भी मीरा को किसी दुःख कष्ट या शारीरिक क्लान्ति से कोई परिवर्तन प्रकट नहीं हुआ। पथ में सर्वदा ही 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' यही संगीत श्रीमुख से ध्वनित हो रहा था। जिसने मीरा को देख लिया वही विचलित होकर उनकी तरफ दौड़ने लगा। सर्वस्वहीन दरिद्र ने उनको देखकर उनके प्रति सान्त्वना दिखा कर, अपने पास जो भी थोड़ा बहुत खाद्य पदार्थ था, उसे ग्रहण करने का उनसे अनुरोध किया। बहुत दिनों के बाद उनको पाकर सभी ने उनको मातृरूप में ग्रहण किया। मीरा ने इन प्यारे सन्तानों को गोद में उठा लिया। प्रत्येक को एक एक गोपाल रूप में वे देखने लगीं। उनका स्पर्श दैवीशक्ति सम्पन्न था। उनकी दृष्टि अन्तरस्पर्शी थी। प्रत्येक ही उनका आशीर्वाद माँगने लगा। उनके श्रीमुख से निकले प्रभु का नाम सुनकर सभी मुग्ध हो गये। इससे यही प्रतीति होता है कि, प्रभु ने राजस्थानवासियों के प्रति कृपाभाव से प्रेरित होकर अवतार रूप में रहस्यमयी दैव वाणी का प्रचार करने के निमित्त मीरा को भेजा है। भक्तों ने किसी प्रकार भी उनके सत्संग से वंचित होना न चाहा था—प्रभु का दर्शन-लाभ ही मीरा का प्रधान काम्य था, इस कारण वे कैसे दैवी आह्वान पर उसका उत्तर देने में विलम्ब करतीं। इस कारण मीरा दिन-रात श्रीवृन्दावन के मार्ग में अग्रसर होने लगीं। मार्ग में मीरा सर्वदा ही चित्त में हर्षित और क्षुधाहीन थीं। ब्रज के मार्ग में गोपालक बालकों ने उनको पहचान लिया। स्वाभाविक शुचिता भूल कर उनके निकट आकर उनको चुम्बन

देकर उच्चस्वर में वे कहने लगे—"सखागण, आओ वे आ गयी हैं।" व्रजगोपालकों को मीरा का परिचय व्रजगोपी रूप में हुआ। मीरा तो बहुत दिनों से व्रजधाम छोड़ कर अन्यत्र चली गयी थीं फिर लौट आयी हैं। मीरा ने अपने प्रति प्रदर्शित प्रेमप्रीति सभी को ग्रहण किया। यह सब क्या सचमुच ही देवी प्रेम नहीं है ? व्रजबालकों ने मीरा को नृत्य करने के लिए बाध्य किया यद्यपि उनको विदित था कि, ये दोनों चरण कभी क्लान्त नहीं हो सकते—तथापि उनको क्लान्त समझ कर उन्होंने उनको ताजा दूध और रोटी खाने को दिया। जल लाकर मीरा के दोनों चरण धोये। इस स्नेह ममता के बीच उन्होंने मस्तक ऊपर उठाकर एक बार दृष्टिनिक्षेप किया—कौन इन सभी म विराजता हुआ लीला कर रहा है। उनको देख लेना अब शेप नहीं रहा। स्वय प्रभु ही तो वृक्ष शाखा पर बैठ कर अपनी लीला देख रहे थे। उनको पकड़ने के लिए मीरा वेग के साथ दौड़ पड़ीं, किन्तु वे अदृश्य हो गये। मीरा रोने लगीं। सब बालकगण उनको सान्त्वना देने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने पुन यात्रा प्रारम्भ की। बालकों ने उनको पकड़ रखने के लिए कितनी ही चेष्टाएँ कीं।

मीरा का लक्ष्य प्रभु के प्रति था। जागतिक कुछ भी उनको इस पथ से विचलित न कर सका। अन्त में मीरा प्रभु के लीलास्थल में पहुँच गयीं। स्वप्न की भांति सब कुछ ही उनको परिचित सा प्रतीत होने लगा। वे प्राचीन स्थानों का अन्वेषण करने लगीं। प्रभु के मन्दिर में जाकर उन्होंने विश्राम लिया। अपराह्न में मीरा भिक्षा ग्रहण करने निकल पड़ीं। भिक्षा ग्रहण करके यमुना पुलिन में जाकर प्रभुको चढ़ाकर उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। रात को वे भजन करने बैठ गयीं। उनके गिरधर गोपाल सामने थे। नूतन पारिपार्श्विक अवस्था में सम्पूर्ण रूप से अनासक्त रहकर वे भजन में मग्न हो रहीं। उनके सम्मुख कुछ भी नवीन-सा नहीं प्रतीत हुआ। अपने आवासगृह में लौटने पर सामान्य

भ्रान्ति मात्र भी उनके मुखमण्डल पर दिखाई नहीं पड़ रहा था। वहाँ वे केवल भगवान् भजन के ही लिए ठहरी हुई थीं।

श्रीकृष्ण मीराबाई के प्राणनाथ प्रियतम हैं। श्रीवृन्दावन प्रभु का लीलाधाम है। इसलिए श्रीवृन्दावन मीराबाई का कितना आदरणीय स्थान है, यह वर्णन करना कठिन है। मीराबाई वृन्दावन के कुंज-कुंज में भ्रमण करके गान गाने लगीं।

म्हाने चाकर राखोजी।
गिरधारी लाल! चाकर राखोजी॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठि दरसन पासूँ।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूँ॥
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी॥
मोर मुगट पीताम्बर सोहै, गले बैजन्ती माला।
बिन्द्राबन में धेनु चरावें, मोहन मुरलीवाला॥
हरे हरे नित बाग लगाऊँ, बिच बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुम्भी सारी॥
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करने संन्यासी।
हरीभजन कूँ साधू आया, बिन्द्राबन के बासी॥
मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधीरात प्रभु दरसण दीन्हें, प्रेम नदी के तीरा॥

हे गिरीधारी लाल, तुम मुझे चाकर रखो। चाकर रखने से मैं बाग तैयार करूँगी अर्थात् माली का काम करूँगी। ऐसा होने से मैं प्रतिदिन उठकर तुम्हारे दर्शन पाऊँगी। वृन्दावन के प्रति कुंज में तुम्हारी लीला का गान गाऊँगी। चाकर रहने के फलस्वरूप तुम्हारे दर्शन पाऊँगी और पारिश्रमिक रूप में तुम्हारी स्मृति रक्खूँगी। जागीर के बदले में भक्ति पाऊँगी। ये तीनों बातें ही उत्तम हैं। तुम्हारा मोर मुकुट, गले

में पीताम्बर और बैजन्ती माला गलेमे शोभा पा रही है। हे मोहन मुरली वाले, तुम वृन्दावन में धेनु चराया करते हो। नित्य ही हरे हरे बाग लगाऊँगीऔर बीच-बीच मे क्यारियाँ बना दूँगी। क्यारियों में थोड़ी भूमि अलग कर रक्खूँगी। कुसुम्मी साड़ी पहन कर साँवरिया के दर्शन करूँगी। योग-साधना करने के लिए योगी आते हैं और संन्यासी तपस्या करने के लिए आते हैं। हे वृन्दावनवासी, हरिभजन करने के लिए साधु आते हैं (किन्तु) मीरा के प्रभु का स्वभाव अत्यन्त गम्भीर है। हे मन, धीरज रक्खो। मन शुद्ध हो जाने पर प्रभु दर्शन देंगे।

वृन्दावन जाकर मीरा ने किस तरह प्रभु को प्राप्त किया था, यह उनके इस भजन से परिस्फुट हो गया है।

श्रीवृन्दावन में मीराबाई का प्रभु-मन्दिर-दर्शन

श्रीवृन्दावन में जाकर मीराबाई ने प्रभु के किन-किन मन्दिरों के दर्शन किये थे इसका विवरण मीराबाई कृत 'नरसीजी रो माहेरो' ग्रंथ में मिलता है। मीरा ने जिन तीन मंदिरों के दर्शन किये थे उनका वर्णन ऐसा है—

(१) माई म्हां ने लागे वृन्दावन को।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसन गोविन्द जी को।

(२) हमरो प्रणाम बांके बिहारी को।
यह छवि देखि मगन भइ मीरा मोहन गिरिवरधारी को।

(३) निपट वकट छवि अँटके, मेरे नैना।
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूख न मटके॥

हे मा, मुझे वृन्दावन अच्छा लगता है। घर-घर तुलसी और ठाकुर जी की पूजा होती है। गोविन्दजी का दर्शन होता है। बांकेबिहारी को मेरा प्रणाम। यह मूर्ति देख कर मीरा गिरधर जी के प्रति मग्न हो गयी हैं। विशुद्ध बंकिम मूर्ति देख कर मेरे नयन मोहित होते हैं। मदन मोहन का रूप देख कर अभ्रान्त रूप से मैंने अमृत पान किया है।

मीराबाई ने श्री वृन्दावन में गोविन्द बाँकेबिहारी और मदन मोहन मंदिर दर्शन किये थे। मंदिरों का ऐतिहासिक इतिवृत्त दिया जा रहा है।

१८६१ ई० में पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के ऐतिहासिक मंदिर और शिला-लेखादि के विषय में एक वृहत् ग्रंथ सरकार द्वारा डा० फुहरर के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इसमें लिखा है कि वृन्दावन की सीमा के भीतर प्रायः एक सहस्र मंदिर विद्यमान हैं। सम्राट अकबर के समय में गोविन्द गोपीनाथ, युगल किशोर, मदन मोहन मंदिर अन्यतम हैं।

मीराबाई ने जिन तीन मन्दिरों के दर्शन किये थे, उनका विवरण इस प्रकार है—

गोविन्दजी का मन्दिर—श्रीमन्महाप्रभु बंगदेश में अवतीर्ण होकर श्रीवृन्दावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार करने के लिए वहाँ गये। श्रीरूप, सनातन, रघुनाथदास प्रमुख महाप्रभु के छः पार्षद श्री-वृन्दावन में जाकर हरिनाम संकीर्तन और लुप्त तीर्थों का उद्धार करने लगे। श्रीरूप गोस्वामी को योगपीठ या गोमाटीला नामक स्थान में १५३४ ई० में श्रीगोविन्दजी की मूर्ति मिली। वहाँ एक मन्दिर बनवा-कर व ठाकुरजी की सेवा-पूजा करने लगे। उत्कलनरेश प्रतापचन्द्र के पुत्र राजा पुरुषोत्तम ने श्रीराधाजी की एक मूर्ति गोस्वामी प्रभु के पास भेज दी। गोस्वामी प्रभु युगल मूर्ति की सेवा करने लगे। इस युगल-मूर्ति के ही दर्शन मीराबाई ने किये थे। इस मन्दिर के जीर्ण हो जाने के बाद १५८८ ई० में अम्बराधिपति मानसिंह द्वारा गोविन्दजी का मन्दिर पुनर्निर्मित हुआ। औरंगजेब की तोपों के गोले से पुनः यह मन्दिर विध्वंस हो गया। आज तक भी यह ध्वंसस्तूप विद्यमान है। राजा राजसिंह ने औरंगजेब के आक्रमण काल में गोविन्दजी को जयपुर में स्थानान्तरित किया था।

"श्रीवृन्दाबन की सेवा प्राकट्य और इष्टलाभ के दिन निर्णय" नामक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ में मिलता है—गोविन्दजी का मन्दिर वृन्दावन में सर्वापेक्षा प्राचीन है। अकबर के सेनापति मानसिंह ने १५६१ ई० में लाल पत्थरों से यह विशाल मन्दिर बनवाया। इसके निर्माण के पारिश्रमिक माल मसाले में तेरह लाख रुपये खर्च हुए थे, और बादशाह की कृपा से पत्थर बिना मूल्य मिले थे। १६७० ई० में औरंगजेब ने यह मन्दिर और नाट मन्दिर की चूड़ा को तोड़ डाला। १८७३ ई० में मथुरा के कलक्टर मि० ग्रस साहब ने अड़तीस हजार रुपये खर्च करके इस मन्दिर का संस्कार कराया। सुना जाता है, औरंगजेब द्वारा मन्दिर का ध्वंस होने के पहले गोविन्दजी, गोपीनाथ और मदन मोहन मूर्तियाँ जयपुर में स्थानान्तरित हुई थीं। गोविन्दजी आजतक जयपुर के राजप्रासाद के सम्मुखस्थ उद्यान मंदिर में विराजमान हैं। और नूतन गोविन्द मूर्ति वृन्दावन के पुराने भग्न मंदिर के पीछे एक नूतन मंदिर में प्रतिष्ठित हैं।

मदन मोहन—श्रीसनातन श्रीरूपगोस्वामी के ज्येष्ठ भ्राता थे। दोनों भाई धर्म प्रचार के लिए एक साथ श्रीवृन्दावन में आये। १५३३ ई० में उन्हें आदित्य टीला में श्रीमदनमोहनजी की मूर्ति मिली। माघ मास की द्वितीया तिथि को उन लोगों ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इस मंदिर के निर्माण का समय नहीं मिलता। राधाकृष्णदास ने लिखा है—एक शिलालिपिसे ज्ञात होता है कि, गुणानंद नामक एक व्यक्ति ने यह मंदिर बनवाया था। अन्य वृत्तान्त में मिलता है कि, मुलतान निवासी लाला रामदास कपूर ने सनातन गोस्वामी के समय यह मंदिर बनवाकर ठाकुरजी की सेवा पूजा के लिए कई ग्राम प्रदान किये। मुलतान में आजतक भी ठाकुरजी की जमींदारी है।

श्रीबांकेविहारी—इस मंदिर का इतिहास ऐसा है कि, स्वामी हरिदास ने यह मंदिर बनवाया था। साधुजी का जन्म संवत् १४४१

भाद्रपद कृष्णा (१३८४) ई० में हुआ था। वे २५ वर्ष की अवस्था में वृन्दावन होकर श्रीवृन्दावन वास करने आये। निधुवन में उनको राधाविहारी की मूर्ति मिली थी। आज तक भी ठाकुरजी की सेवा-पूजा आडम्बर के साथ होती है।

श्रीवृन्दावन में और भी सैकड़ों मंदिर विद्यमान हैं—मीराबाई ने अवश्य ही और भी मंदिर दर्शन किये थे। किन्तु वे विशेष रूप से इन तीनों मंदिरों के प्रति आकर्षित हुई थीं। इसीलिए इन तीनों मंदिरों की प्रशंसा उन्होंने की है।

श्रीजीवगोस्वामी और मीराबाई

श्रीवृन्दावन में मीराबाई के साथ एक गोस्वामीपाद का साक्षात्कार हुआ था और उनके वार्तालाप में मीरा-दर्शन (Philosophy of Mirabai) परिस्फुट हुआ है। किन्तु किस गोस्वामी प्रभु के साथ मीराबाई का वार्तालाप हुआ था यह विचारणीय विषय है। श्रीजीवगोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी इन तीन गोस्वामीपादों का विवरण पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में विभिन्न रूपों में मिलता है। राजस्थान के मीराबाई सम्बन्धी ग्रन्थों की आलोचना के बाद यही प्रतीत होता है कि मीराबाई और श्रीजीवगोस्वामी का साक्षात्कार हुआ था। इस सम्बन्ध में ही अधिक प्रमाण मिलते हैं।

बंगदेश के मालदह निवासी श्रीहाराधन दास रचित "मीराबाई करचा" और श्रीरूप गोस्वामी के शिक्षातत्व नामक चालीस-पचास वर्ष पूर्व-काल में लिखित काव्यग्रन्थ में मीराबाई द्वारा श्रीरूप गोस्वामी को प्रेमतत्व शिक्षा देना और गोस्वामी की स्त्री-जाति के प्रति उदासीनता की बात लिखी हुई है।

"मीराबाई" ग्रन्थ प्रणेता स्वामी वामदेवानन्द ने मीराबाई-श्रीरूप गोस्वामी के साथ साक्षात्कार का उल्लेख किया है।

श्रीविनोदविहारी बन्द्योपाध्याय ने "श्रीरामकृष्ण जीवन और साधना" ग्रन्थ के ५६ पृ० में लिखा है कि भक्तमाल ग्रन्थ में वर्णित भक्तश्रेष्ठा मीराबाई के जीवन की एक घटना में भगवान को सहज और निविड़ भाव से पाने का ऐसा उपाय ही निर्दिष्ट दिखाई पड़ता है। मीराबाई ने वृन्दावन जाकर श्रीरूप गोस्वामी के साथ साक्षात् करने की इच्छा व्यक्त की। परम भक्त वैष्णव चूड़ामणि श्रीरूप गोस्वामी ने संन्यासियों के लिए नारी-दर्शन निषिद्ध है—कहकर मीराबाई का अनुरोध ठुकरा दिया। तब मीराबाई ने उनको जो उत्तर लिखा था—उसका मर्म जितना गंभीर है उतना ही सुन्दर भी है। श्रीकृष्णदास गोस्वामी द्वारा अनूदित बंगला भक्तमाल ग्रन्थ में ऐसा वर्णन है—

गोस्वामी कहेन मुइ वने करिवास।
नाहि करि स्त्री लोकेर सहित सम्भाष॥
ए कथा शुनिया बाई क्षोभ पाइ मने।
पुनः कहि पाठाइलो गोस्वामीर स्थाने॥
एत दिन शुनि नाइ श्रीधाम वृन्दावने।
आर केह पुरुष आछेन कृष्ण विने॥

अर्थात् गोस्वामी ने कहा—"मैं वन में रहता हूँ, किसी भी स्त्री के साथ मैं बातें नहीं करता।" यह सुनकर मीराबाई के मन मे क्षोभ हुआ। उन्होंने फिर गोस्वामी के पास कहला भेजा कि आज तक मैंने यह बात सुनी ही नहीं थी कि श्रीधाम वृन्दावन में कृष्ण के अतिरिक्त और भी कोई पुरुष रहता है।

उस परम पुरुष भगवान को प्रकृति रूप में मान कर मधुर रस के द्वारा उनकी सेवा करना ही उनकी श्रेष्ठ पूजा है, मीराबाई ने यही इङ्गित किया था। श्रीरूप गोस्वामी ने मीराबाई के इस भक्तिपूर्ण मधुर रस की शिक्षा को उपलब्धि करके उसी क्षण उस भक्तश्रेष्ठा के साथ साक्षात्कार किया था।

लाभ की प्रबल वासना व्यक्त की। श्री जीवगोस्वामी ने उत्तर में कहा कि, वे हैं बालब्रह्मचारी, स्त्री का मुख देखना उनके लिए निषिद्ध है। यह सुनकर मीराबाई ने हँसकर कहा कि आप आज तक प्रकृति-पुरुष-भेद में पड़े हुए हैं। आपको तो समदर्शी होना चाहिये था। इसके बाद परदे की आड़ में बैठकर मीराबाई के साथ आलाप आलोचना आरम्भ हुई। मीरा ने कहा—'वासदेव पुमानेक स्त्रीमयमितरज्जगत्।'

'वासुदेव ही एक मात्र पुरुष हैं—और सभी जगत् में प्रकृति हैं।' यह श्रीमद्भागवत् की वाणी है। आप अपने को पुरुष कह रहे हैं। व्रज में श्रीगिरिधर के अतिरिक्त अन्य पुरुष हैं यह बात मुझे आज ही ज्ञात हुई।" मीराबाई के श्रीमुख से निकली ऐसी भागवतवाणी सुन कर श्रीजीव गोस्वामी चमत्कृत हो गये, और मीराबाई के साथ प्रेम पूर्वक मिलकर हरिकथा सुन कर परमानन्दित हुए। (मीरा माधुरी, पृ० ७८)

भक्तमाल (६३ पृ० कविता ४६७) और नागरीदास कृत 'पद-संग्रह-माला' ग्रंथ में श्रीजीवगोस्वामी मीरा संलाप वर्णित है। गुजराती कवि दयाराम ने "जीवगोसाईं ने शिक्षा" में मीराबाई-श्रीजीवगोस्वामी के प्रसंग का उल्लेख किया है।

'मीरा पदावली' ग्रंथ में मिलता है कि श्रीजीवगोस्वामी श्रीरूप गोस्वामी और श्रीसनातन गोस्वामी के अनुज श्रीअनूपजी के पुत्र थे। वे अपने दो पितृव्यों के साथ श्रीवृन्दावन में रहते थे, इस कारण मीराबाई श्रीजीव गोस्वामी के साक्षात्कार के विषय में सन्देह करने का अवसर नहीं है। इस प्रकार विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न गोस्वामियों के नाम विद्यमान हैं। किन्तु प्रत्येक ग्रन्थकार ने ही यह उल्लेख किया है कि, गोस्वामी नारी का मुख नहीं देखते थे, इसलिए मीरा के साथ साक्षात्कार करना उन्होंने नहीं चाहा। विषय-वस्तु सभी ग्रंथों में एक है, केवल नाम भेद

मात्र है। मीराबाई श्रोजीव गोस्वामी-प्रसङ्ग वार्ता की समीक्षा परवर्ती विशेष भाव से विश्लेषण अध्यात्म-अध्याय में (मधुरभाव की उपासना में) किया गया है।

छद्मवेश में मीरा के पति का श्रीवृन्दावन आगमन

'दि स्टोरी आफ मीराबाई' ग्रंथ में मिलता है—मीराबाई के भक्ति-माहात्म्य का समाचार पाकर उनके पति भोजराज ने छद्मवेश में श्रीवृन्दावन में आकर मीरा से भिक्षा माँगी थी। प्रसङ्ग इस प्रकार है—

मीरा—[भिखारी से] आप हमसे क्या आशा कर सकते हैं?
राणा—मैं जो चाहता हूँ, वह आप दे सकती हैं।
मीरा—तो आप आज्ञा करें।

इसके बाद राणा ने छद्मवेश त्याग अपना परिचय दे कर मीरा से क्षमा-याचना की। मीरा अपने पति का परिचय पाकर उनके पैरों पर गिर पड़ीं। इसके बाद पति के साथ चित्तौड़ जाकर कुछ दिन उन्होंने साधन-भजन में बिता दिये।

अब ऐतिहासिक प्रमाणों से देखना चाहिये कि मीरा का विवाह १५१६ ई० में हुआ और भोजराज की मृत्यु १५२३ ई० में हुई। मीरा ने केवल सात वर्ष गार्हस्थ्य-जीवन बिताये। मीराबाई का श्रीवृन्दावन आगमन १५३८-३९ ई० में अर्थात् भोजराज की मृत्यु के १५ वर्ष बाद हुआ। मीरा ने वैधव्य-जीवन आरम्भ कर के साधन-भजन में आत्म-नियोग किया। मीरा साधना-जीवन-यापन काल में ही राणा विक्रमाजीत द्वारा उत्पीड़ित होने लगीं। उसके बाद मेवाड़ त्याग कर मेड़ता चली गयीं और वहाँ से फिर श्रीवृन्दावन गयीं। प्रथमतः भोजराज ने युवराज अवस्था में ही शरीर त्याग किया। राणा होने का सुयोग उनको अपने जीवन में नहीं मिला। द्वितीयतः वे मीराबाई के श्रीवृन्दावन आगमन के बहुत पूर्व ही धरणी से विदा हो गये। मीराबाई का वृन्दावन-आगमन

श्रीयतीशचन्द्र मित्र ने अपने "षट्-गोस्वामी" ग्रन्थ के २१४ पृष्ठ में लिखा है—

गोस्वामी लोग निरर्थक किसी भी आगन्तुक के साथ मिलना नहीं चाहते थे। कहा जाता है, किसी समय प्रसिद्ध मीराबाई ने वृन्दावन में आकर रूपगोस्वामी के साथ भेंट करना चाहा। तब उन्होंने स्त्री के साथ भेंट करने की अनिच्छा व्यक्त की। प्रकृति-सम्भाषण करना गौड़ीय मतगण दोषावह समझते थे। यह बात सुनकर मीराबाई ने कहला भेजा, "वृन्दावन में तो एकमात्र पुरुष श्रीकृष्ण हैं, और कोई पुरुष है ऐसी जानकारी मुझे नहीं है।"

इस बात से मीरा के हृदय का प्रकृत तत्त्व समझ कर श्रीरूप गोस्वामी ने मीरा के साथ साक्षात्कार किया।

श्रुताञ्जली ग्रन्थकार श्रीदिलीपकुमार राय ने मीरा-सनातन गोस्वामी साक्षात्कार का उल्लेख किया है।

प्रियादासजी ने लिखा है—

"वृन्दावन आई जीव गोसाईं जी सों मिलिझिली।
तिया मुख देखिबे को पन लै छुटायो है॥"

श्रीजीवगोस्वामी ने वृन्दावन में आकर मीराबाई के साथ भेंट की थी। स्त्रियों का मुख न देखने की उनकी प्रतिज्ञा थी, किन्तु बाद को वह भंग हो गयी।

"मीरा-माधुरी" ग्रन्थकार ने "श्रीजीवगोस्वामी तथा मीराबाई" अध्याय में लिखा है—

श्रीरूप गोस्वामी और श्रीसनातन गोस्वामी के अनुज वल्लभी के पुत्र श्रीजीवगोस्वामी ने गौड़देश के रामकेली ग्राम में १५११ ई० में जन्म ग्रहण किया। बाल्यकाल से ही वे श्रीकृष्ण के भक्त थे। बाल्यकाल में खेलकूद के बहाने वे श्रीकृष्ण की पूजा आदि करते थे। उनकी माता श्रीजीवगोस्वामीजी के पितृव्यों के संसार-वैराग्य की बातें सुना कर उनको

जीवन-साधना के पथ में प्रेरणा देती थीं। स्थानीय पाठशाला में शिक्षा पाकर वेदांतादि गम्भीर शास्त्रका अध्ययन करने के लिये ये श्रीधाम नवद्वीप चले गये। प्रभुपाद श्रीनित्यानंद के आदेश से काशी धाम में आकर श्रीमधुसूदन वाचस्पति के निकट चार वर्ष शास्त्रादि का अध्ययन किया। १५३५ ई० में २४ वर्ष की अवस्था में वे श्रीवृन्दावन चले गये। उन्होंने चिर ब्रह्मचारी रूप में जीवन बिताया।

श्रीवृन्दावन में आकर श्रीजीवगोस्वामी श्रीरूप गोस्वामी के साथ रहने लगे। 'भक्ति रसामृत सिन्धु' ग्रंथ प्रणयन करने के बाद उन्होंने श्रीराधा दामोदर प्रभु की सेवा में अपने आपको सौंप दिया। श्रीमन्महाप्रभु प्रेरित सप्त गोस्वामियों में श्रीजीवगोस्वामी एकमात्र युवक और कर्मठ पुरुष थे। श्रीरूपसनातन वैकुण्ठ वासी हो गये—अन्य चार गोस्वामी लोग वृद्धावस्थाग्रस्त हुए और श्रीजीव प्रधान अध्यक्ष रूप में रहे। उस समय श्रीवृन्दावन में वे प्रधान थे। १५३६–१५४३ ई० के बीच श्रीजीव-गोस्वामी और मीराबाई का साक्षात्कार हुआ। सम्राट अकबर की प्रेरणा से श्रीवृन्दावन में मंदिर प्रतिष्ठा हुई और गोहत्या बन्द हुई। श्रीजीव गोस्वामी ने २५ मुख्य ग्रंथ रचे। इनके अतिरिक्त छोटे–बड़े और भी अनेक ग्रंथ उन्होंने लिखे थे। श्रीजीव गोस्वामी ने बहुत ग्रंथ देकर श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानद जी को बंगदेश, उड़ीसा और बिहार में हरिनाम कीर्तन करने के लिए भेजा। ये तीनों गोस्वामी यथा-साध्य काम कर रहे थे। वे लोग सर्वदा गोस्वामी प्रभु के साथ पत्र व्यवहार करते थे। श्रीजीव गोस्वामी की वृद्धावस्था में एक एक करके अन्यान्य गोस्वामी गण अन्तर्हित होने लगे। श्रीवृन्दावन को केन्द्र बना-कर वैष्णव धर्म प्रचार करते हुए पौष शुक्ल ६, संवत् १६५२(१५६५ ई०) में वे परलोकगामी हुए।

कहा गया है कि, मीराबाई ने तीर्थ पर्यटन करके श्री वृन्दावन आने पर महात्मा श्रीजीवगोस्वामी का भक्ति वृत्तान्त सुनकर उनके दर्शन

१५२८-२६ ई० में हुआ और भोजराज की मृत्यु १५२१ ई० में हुई। इस कारण मीरा के पति का श्रीवृन्दावन में छद्मवेश में आगमन कल्पना मात्र है।

मीराबाई का श्रीवृन्दावन त्याग और द्वारका गमन

मीराबाई का श्रीवृन्दावनवास अति अल्प दिनों का रहा। भक्त की लीला सर्वसाधारण के लिए हृदयङ्गम करना कठिन है। महाप्रभु ने श्री-वृन्दावन धाम त्याग कर श्रीक्षेत्र में शरीर त्याग किया। श्रीवृन्दावन में रह कर वे जीवन बिता सकते थे। तो फिर क्यों यह आनन्दमय धाम त्याग कर श्रीक्षेत्र चले गये—इसका उत्तर मिलना कठिन है। श्रीभगवान अपने प्रियजनों द्वारा विश्ववासियों को अपनी लीला दिखाने के लिए विभिन्न भावों से विविध कार्य सम्पन्न कराते रहते हैं। मीराबाई तो रसिकेन्द्र चूड़ामणिप्रेममय श्रीगिरिधर के अतिरिक्त और किसी को भी नहीं जानती थीं। तो फिर क्यों प्रभु की लीलाभूमि त्याग कर द्वारका चली गयीं। प्रभु विश्व के कल्याण के ही लिए ऐसे विधान किया करते हैं। इसका गूढ़ रहस्य हृदयङ्गम करना अत्यन्त कठिन है। 'मीरा-जीवनी और काव्य ग्रन्थ' के अनुसार मीरा १५४२ ई० में वृन्दावन त्याग कर द्वारका चली गयीं। "मीरा माधुरी" ग्रन्थ के अनुसार १५३६ ई० में वृन्दावन त्याग कर मीरा के द्वारका जाने का उल्लेख है। समय की ठीक खबर न मिलने पर भी यह खूब ही सत्य है कि मीरा वृन्दावन से द्वारका चली गयी थीं।

मीराबाई का द्वारकावास और अन्तर्धान

मीराबाई के मन की प्रबल वासना द्वारका वास करने की थी। इस प्रसङ्ग में मीराबाई ने अपने चचेरे भाई को एक पद में कहा है—

"राय श्रीरणछोड़ दीज्यो द्वारिका को वास"

श्रीरणछोड़जी मुझे द्वारका-वास का सुयोग दें।

द्वारका में श्रीकृष्ण रणछोड़जी नाम से परिचित हैं। इसीलिए प्रभु की लीलाभूमि द्वारका दर्शन की प्रार्थना उन्होंने की थी। द्वारका में मीरा ने महानन्द से साधन-भजन में दिन बिताये। द्वारका धाम गुजरात में स्थित है। वहाँ की भाषा गुजराती है। मीराबाई ने गुजराती भाषा सीख ली थी। 'गर्बा गीत' गुजरात का निजस्व सङ्गीत है। मीरा ने बहुत भजन गुजराती भाषा में रचे थे। "मीरा-माधुरी" के ग्रन्थकार मीरा के लिखे गुजराती भाषा में १४२ भजन संग्रह करने में समर्थ हुए। मीरा के अमायिक व्यवहार से गुजरातवासी मोहित हुए थे।

इधर मेवाड़ त्याग करने के बाद राज्य में सर्वत्र अमंगल की सूचना मिली। १५३५ ई० में गुजरात के बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इन सभी दुर्दशाओं के होते रहने पर भी विक्रमाजीत के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। १५३८ ई० में उदयसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उदयसिंह धर्मप्राण सरल हृदय राजा थे। उदयसिंह सम्पूर्ण रूप से अनुभव कर सके कि मीराबाई के ऊपर अत्याचार अविचार होने के फलस्वरूप मेवाड़ की यह दुर्दशा हो रही है। "मीराबाई की शब्दावली ग्रंथ में ऐसा वर्णन है कि, उदयसिंह ने मीरा की भक्ति महिमा जान कर मंत्रियों के परामर्श से एक प्रभावशाली ब्राह्मण को मीराबाई को स्वदेश लाने के लिए भेजा। "मीरा जीवनी और काव्य" ग्रंथकार कहते हैं—मीराबाई के द्वारका पहुँचने के बाद बार-बार उनके पास समाचार जाने लगा कि वे स्वदेश लौट आवें। मीराबाई के साथ राणा उदयसिंह का भेजा पुरोहित और अन्य भी अनेक सहायक लोग थे। लोग सर्वदा मीराबाई के स्वदेश लौटने का अनुरोध करते थे। किन्तु मीरा इन बातों की कुछ भी चिन्ता नहीं करती थी। इसकी परवर्ती घटना सभी ग्रंथों में ऐसी मिलती है—जब ब्राह्मण पुरोहित बार-बार मीराबाई से स्वदेश लौटने का अनुरोध करके सफल नहीं हुए, तब उन्होंने मीराबाई से कहा—आप स्वदेश न लौटेंगी तो मैं आहार-

निद्रा त्याग दूँगा। ब्राह्मण के ऐसे सत्याग्रह से मीरा भयङ्कर विपद में पड़ गयीं। दूसरा उपाय न देख कर रणछोड़जी से विदा होने के लिए वे मन्दिर में प्रवेश कर गयीं। मीरा ने प्रभु के सम्मुख कातर स्वर से भजन गाया—

(१)

राग—तेताला

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रोपदी की लाज राख्यौ तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारन रूप नरहरि धर्‌यो आप शरीर।
हिरनकस्यप मारि लीन्हों धर्‌यो नाहिन धीर।
बूड़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरिधर दुःख जहाँ तहँ पीर।

(२)

राग—काफी

सजन सुध ज्यों जाणो त्यों लीजै हो।
तुम बिन मोरे और न कोई कृपा रावरी कीजै हो।
दिन नहिं भूख रैण नहिं निंदिया यूँ तन पल-पल छीजै हो।
मीरा कहै प्रभु गिरिधर नागर मिलि बिछुड़न मत कीजै हो।

प्रभो, तुम मानवों का दुःख दूर करो। शरीर का वस्त्र बढ़ा कर तुमने द्रौपदी की लज्जा रक्खी थी। भक्त के लिए नरहरि (नृसिंह) *रूप धारण किया था। हिरण्यकश्यप का वध करके धीरज न रख सकने* पर तुम पूर्व रूप में लीन हो गये थे। गजराज डूबने लगा तो जल से *बाहर निकाल कर तुमने उसे बचा लिया था। हे गिरधरलाल, मीरा* तुम्हारी दासी है, जहाँ दुःख है वहाँ ही पीर है।

हे सजन सुन्दर, *तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही करो।* तुम्हारे

अतिरिक्त मेरे ऊपर कृपा करनेवाला और कोई भी नहीं है। दिन में भोजन नहीं, रात को नींद नहीं। पलपल पर शरीर क्षीण हो रहा है। हे गिरिधरनागर, ऐसा करो जिससे मैं तुमको पा जाऊँ तुम मुझे भूल मत जाना।

जगत् निस्तब्ध है। सागरतट पर श्रीरणछोड़जी का मन्दिर है। मन्दिर में मीरा और उनके प्रभु हैं। मन्दिर के प्राङ्गण में महाराणा उदयसिंह का भेजा हुआ राजपुरोहित प्रतीक्षा कर रहा है। राजस्थान निवासी मीरा के आने की आशा में बैठे हुए हैं। उनकी राजलक्ष्मी शीघ्र ही उनके पास आयेगी। वे अपनी हृतश्री वापस पा जायेंगे। मन्दिर का बन्द दरवाजा खुल नहीं रहा है, प्रहर बीतने लगे। उधर मीरा साश्रु नेत्रों से समाधि में डूबी हुई हैं। प्रभु आर्त्त के त्राणकर्त्ता हैं। मीरा पर क्या कृपा न करेंगे? सभी ने धीरज खो दिया। मीरा मन्दिर से निकल कर दर्शन नहीं दे रही हैं। बड़ी देर बाद मन्दिर-द्वार खोल कर देखा गया—मीरा मन्दिर में नहीं हैं—मन्दिर निस्तब्ध है। परम कारुणिक प्रेममय भगवान ज्योतिर्मय रूप में विराज रहे हैं। मन्दिर द्वार तो बन्द था। द्वार के सामने पुरोहित थे, चारो तरफ दर्शन-प्रार्थी-भक्तजन थे। कोई तो उस समय तक सोया नहीं था। किसी को तन्द्रा नहीं आयी थी कि नींद के नशे में सबको छोड़ कर मीरा अन्तर्हित हो जायँगी। लीलामय की यह कैसी लीला है। एक ही पल पूर्व सभी ने मीरा के आर्त्त कंठ से सुमधुर संगीत सुना है। पल भर में यह क्या हो गया। किसी में भी बात कहने का सामर्थ्य नहीं रहा। सभी शान्ति भाव से किंकर्तव्य-विमूढ होकर खड़े थे। राजपूत कुल-लक्ष्मी कृष्णप्रेम-मतवाली मीरा मन्दिर में नहीं हैं। कुछ देर बाद दिखाई पड़ा, लीलामय प्रभु श्रीरणछोड़जी के मुख में मीरा की ओढनी का अंश विशेष पड़ा हुआ है। किसी को अब समझ लेना बाकी न रहा कि मीरा अपने प्राणप्रिय इष्ट श्रीगिरिधर श्रीरणछोड़जी की देह में लीन हो गयी हैं। मीरा की मृत्यु नहीं हुई है।

मीरा अपना पंचभूत निर्मित शरीर त्याग कर नहीं गयी हैं, मीरा सशरीर प्रभु की देह में विलीन हो गयी हैं।

यह विश्वसनीय है या नहीं, यह प्रश्न हो सकता है। लीलामय की लीला से अतीन्द्रिय जगत् में और भी कितनी घटनाएँ हो सकती हैं इसका सन्धान कौन रखता है। महामहोपाध्याय गोपी नाथ कविराज महोदय ने बातचीत के प्रसङ्ग में प्राच्य पाश्चात्य जगत् में इस प्रकार इष्ट के शरीर में भक्त के विलीन होने के बहुत दृष्टान्त दिये हैं। प्रेमावतार श्रीचैतन्य देव-पुरीधाम में श्री टोटागोपीनाथ विग्रह में लीन हो गये थे। टोटा उद्यान अर्थ बोधक है। पुरीधाम में समुद्रतट पर गोपीनाथ का मंदिर है। महाप्रभु गधा भाव से वहाँ मग्न करते थे। मग्न करते-करते गोपीनाथ विग्रह में विलीन हो गये थे। (श्री टोटा गोपीनाथ नामामृत ग्रंथ)। दक्षिण भारत की कृष्ण प्रेम-मतवाली अण्डाल या गोदा देवी और साधु तुका राम के जीवन-इतिहास में इस प्रकार अपने इष्टदेव के शरीर में विलीन हो जाने का विवरण मिलता है। चित्तौड़गढ़ के संत आनंद स्वरूप ब्रह्मचारी ने कहा है, अब भी द्वारकाधाम में रणछोड़ की मन्दिर में प्रभु को शयन कराते समय उनके मुँह में वस्त्र-खण्ड लगा दिया जाता है।

मीराबाई के अन्तर्धान का समय विभिन्न ग्रंथकारों ने भिन्न भिन्न बताया है। जोधपुर के राठौर भाटों ने १५४६ ई० कहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने १५६३ से १५७३ ई० के बीच मीरा के लीलावसान का उल्लेख किया है। चतुरकुलचरित्र में, 'मीरामाधुरी' ग्रंथ में १५४६ ई० मिलता है। मुंशी देवीप्रसादजी ने मारवाड़ के लुनवी परगना के भारोटे ग्राम के मरिदान भाट से ज्ञात किया है, मीरा का लीलावसान १५४६ ई० में हुआ था। जोधपुर राज्य द्वारा सन् १६४७ ई० में तीसरी बार मुद्रित "जोधपुर राज्य का राष्ट्रीय गीत" नामक पुस्तक में मीरा के निधन की तिथि वि० सं० १६०५ चैत्र सुदी ३ सोमवार बतायी गयी है

यही तिथियां जोधपुर राज्य के महकमे तवारीख (इतिहास कार्यालय) के पुराने रेकर्ड के लाल लुंगी वाले रजिस्टर (पृ० ४५) में लिखी हैं।

गुरु रैदास

शास्त्रों में मिलता है—'गुरुब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरुदेव महेश्वर।' गुरु मानव को अज्ञान से प्रकाश में ले जाते हैं, अविद्या दूर कर विद्या प्रदान करते हैं। मनुष्य जितने भी शास्त्रज्ञ क्यों न हों, किस मंत्र से किस पथ से प्रकृत आनन्दानुभूति हो सकती है इसका संधान गुरु के बिना नहीं होता। गुरु के बिना "अन्धनैव नीयमाना यथा अन्धाः" की दशा होती है। गुरु की कृपा से साधक प्रकृत साधन-पथ में अग्रसर होने में समर्थ होता है। गुरु कृपापूर्वक शिष्यको बीजमंत्र देकर सूक्ष्म भाव से साधन-पथ में अग्रसर कराते रहते हैं। गुरु की कृपा मिलने से तीन जन्मों में मानव मुक्त होता है। यह शास्त्र का निर्देश है। स्मरणातीत काल से साधकगण गुरुमहिमा की उपलब्धि करते आ रहे हैं। पुराकाल में शिष्य गुरुगृह में रहकर गुरुसेवा कर के ब्रह्मविद्या लाभ करते थे। अतीतकाल में उपमन्यु ने गुरुभक्ति द्वारा, एकलव्य ने दक्षिणाङ्गुली गुरुदक्षिणा रूप में प्रदान कर गुरुभक्ति की पराकाष्ठा दिखायी है। कठोर साधक काठिया बाबा ने गुरु का अजस्र कठोर शासन अम्लान वदन से सहकर भी "मेरे गुरु परम दयाल" इस वाक्य से गुरुमहिमा का प्रचार किया है। छत्रपति शिवाजी की गुरुभक्ति ने इतिहास उज्ज्वल कर रक्खा है। स्वामी विवेकानन्द गुरुकृपा से ही विश्वविजयी हुए थे।

> गुरुकृपा जेहि नर पर कीन्हीं, तिन्ह जग जुगति पिछानी।
> नानक लीन भयो गोविन्द संग, ज्यों पानी में पानी॥
>
> (नानक)

> अविद्या हृदय ग्रन्थिर्बन्ध मोक्षो यतो भवेत्।
> तमेव गुरुरित्याहु गुरुशब्देन योगिनः॥

हृदय में अविद्या-ग्रन्थि के कारण हुआ भवबन्धन जिसकी कृपा से छूट जाता है, योगी लोग उसी को गुरु कहते हैं।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीनकाल से आषाढ़ शुक्ला १५ (गुरुपूर्णिमा) को गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता निवेदन करने का दिन है। शिक्षा-प्राप्ति के लिए पौराणिककाल में जब गुरुकुल में रहने की प्रथा थी उन दिनों *शिष्य गुरु दक्षिणा देकर उस दिन अपनी पूज्य भावना व्यक्त* किया करता था।

सन्त कबीर ने कहा था—

> गुरुदेव बिना जीवकी कल्पना मिटै
> *गुरुदेव बिना जीवका भला नहीं।*
> गुरुदेव बिन जीवका तिमर नासे नहीं
> कहै कबीर पूरण मिलै।

गुरुदेव के बिना जीव की कल्पना नहीं मिटती। गुरुदेव के बिना जीव का मंगल नहीं होता। गुरुदेव के बिना जीव का अन्धकार दूर नहीं होता। कबीर कहते हैं, गुरु कृपा से ही पूर्णता प्राप्त होती है।

मीराबाई ने जन्म से भगवती की शक्ति पाकर भी गुरु का आश्रय ग्रहण किया था। मीराबाई ने अपने पद में गाया है—

> गुरु म्हारे रैदास सरनन चोई।
> गुरु *मिलिया* रैदास जी, दीन्हों ज्ञान की गुटकी।
> रैदास सन्त मिले सत् गुरु, दीन्ह सुरत सहदानी।

मेरे गुरु रैदास हैं—वे ही मेरे आश्रय हैं। रैदास जी को मैं गुरु रूप में पा गयी हूँ। उन्होंने ज्ञान का आधार प्रदान किया है। संत रैदास को गुरु रूप में पा गयी हूँ। उन्होंने ध्यान का संकेत दिया है।

मीराबाई के भजनों के बहुत से स्थानों में गुरु रैदासजी का उल्लेख पाया जाता है। किन्तु रैदासजी को गुरुरूप में वरण करने का गुह्य रहस्य

उद्‌घाटन करना कठिन विषय है। मीराबाई भक्तिमार्गी मधुर भाव की उपासिका थीं। परन्तु संत रैदास के उपास्यदेव का आकार ऐसा था—

> वहु रैदास मैं ताहि को पूजूँ,
> जाको ठाँय, नाँय नहिं होई।
> निरंजन, निराकार, निरलेपो, निरविकार
> निसाशी रैदास।

रैदास कहते हैं, मैं उनकी ही पूजा करता हूँ—जिनका कोई रूप नहीं है, जो निरजन, निराकार, निर्लिप्त, निर्विकार और अटल हैं। इस लिए सोचने का विषय यह है कि, निराकारवादी गुरु के पास से इष्ट मंत्र ग्रहण कर मीरा अपने प्राणनाथ गिरिधारीलाल के लिए इतनी व्याकुल कैसे हुई थीं ? किन्तु साधना रहस्य सर्वदा गुप्त भाव से रहता है। शास्त्र का निर्देश, अपना इष्ट मंत्र प्राणाधिक प्रिय व्यक्ति को भी न बताना चाहिये। इसलिए कृष्णप्रेमा—पागलिनी मीरा ने किस तरह निराकारवादी से इष्टमंत्र ग्रहण किया था, इसका रहस्य उद्‌घाटन करना कठिन है। बीकानेर निवासी नरोत्तमदासजी ने मीरामन्दाकिनी ग्रन्थ में लिखा है—अनेक पदों से यह बात समझ में आती है कि महात्मा रामानन्द जी के शिष्य रैदासजी मीराबाई के गुरु थे। किन्तु दोनों को समकालीन कहना सिद्ध नहीं है। सम्भव यही है कि रैदासजी की वाणियों के ऊपर मीराबाई की दृष्टि पड़ी थी। इसीलिए उन्होंने मीराबाई को गुरु स्वीकार किया है। डा० पी० दत्त बड़थ्वाल का भी यही मत है। 'मीराबाई की पदावली' ग्रन्थ के बहुत स्थानों में रैदास मीराबाई के गुरु थे—ऐसा उल्लेख विद्यमान है।

प्रोफेसर एस० एल्० पाण्डेय, एम० ए० इलाहाबाद, विश्वविद्यालय Indian philosophy and culture April 1958 St. Ravidas, the man and his works. निबंध म लिखा है

"Ravi das was a contemporary of Mira Bai and was older than her by at least 50 years."

इसलिए मीराबाई की अपनी भजनावली के अनुसार सन्त रैदास को मीराबाई का गुरु स्वीकार करने के सम्बन्ध में रैदासजी की संक्षिप्त जीवनी आलोचना करके देखनी चाहिये।

सन्त रैदासजी ने सम्वत् १५०७ माघी पूर्णिमा तिथि को काशीधाम में जन्म ग्रहण किया। वे जाति के चमार थे। भक्तमाल (हरिभक्ति प्रकाशिका ग्रन्थों में मिलता है) रैदास जूता सिलाई करके अपनी जीविका निर्वाह करते थे। साधुओं को बिना मूल्य लिए जूता सी देते थे। बंगला भक्तमाल ग्रंथ में मिलता है—रामानन्द के एक ब्रह्मचारी शिष्य भिक्षा माँगते समय खाद्य सामग्री विक्रेता एक यौगिक वणिक की दूकान से भीख माँग कर लाये थे। रामानन्द भोग लगाने को बैठकर जान गये कि भोग में व्यतिक्रम हो रहा है। शिष्य ने बताया कि अस्पृश्य का अन्न लाया है—यह सुनकर रामानन्द ने उसे "चमार" कह कर तिरस्कार किया। गुरु वचन व्यर्थ नहीं हो सकता। ब्रह्मचारी ने देह त्याग कर एक चर्मकार के घर में जन्म लिया।

यह शिशु जन्म काल से ही जाति-स्मर थे। सद्गुरु विच्छेद से शिशु ने मातृ स्तन पीना त्याग दिया। रामानन्द कृपा से प्रेरित होकर शिशु को देखने गये। शिशु उनको देखकर चौंक पड़े।

> तृषित चातके येन जलधारा मिले।
> दरिद्रेर रतन येन मिले हाराइले॥
> दु नयने बहे धारा ना पारे कहिते।
> गुमरिया बहे नीर दुःख निवेदिते॥
>
> (बंगला भक्त माल)

प्यासे चातक को जैसे जलधारा मिल जाती है, खोया हुआ रत्न जैसे दरिद्र को मिल जाता है, उसी तरह दोनों नेत्रों से जलधारा बह चली।

कुछ भी कह नहीं सकता। दुःख का निवेदन अश्रुधारा के कारण न कर सका।

रामानन्द ने कृपापूर्वक ज्योंही शिशु के कानों में नाममन्त्र डाल दिया, त्योंही उसने मातृ स्तन पीना आरम्भ कर दिया। शिशु क्रमशः बढ़ता हुआ और विष्णुपद में अनुरक्त होने लगा। वे निज वृत्तिचर्मकार का कर्म कर परिवार पालन करने लगे। देश में भीषण दुर्भिक्ष दिखाई पड़ा। वे भयंकर विपद् में पड़ गये। एक दिन श्रीविष्णु ने रैदासजी की परीक्षा करने के लिए वैष्णव रूप में उनके पास उपस्थित होकर उनको एक स्पर्श मणि देना चाहा तो उन्होंने इस विषय पर बिन्दु मात्र ध्यान नहीं दिया।

बगला भक्तमाल में लिखा है—

से कि वस्तु ज्ञान करे परश रतन।
नित्यानन्दे पूर्ण यार सदानन्द मन॥

जिसका सदानन्द मन नित्यानन्द में पूर्ण रहता है वह क्या रतन को कोई चीज समझ सकता है।

अनन्तर तेरह साल के अन्त में स्वयं विष्णु ने पुनः आविर्भूत होकर देखा, स्पर्शमणि प्रदान करना व्यर्थ हो गया है। तब श्रीभगवान ने कुछ सुवर्ण मुद्राएँ रैदास के सामने बिखेर दीं। तदनन्तर भगवान ने सपने में दर्शन देकर आदेश दिया। "रैदास, तुम अपने लिए अथवा देव सेवा में यह अर्थ व्यय करो।" रैदासने इष्ट देवता की आज्ञा से एक मंदिर प्रतिष्ठित कर वहाँ शालग्राम स्थापित किया। यह देखकर ब्राह्मणों ने राजा के सम्मुख निवेदन किया।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्य पूजा व्यतिक्रमम्।
तत्र त्रीणि प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जहाँ अपूज्य व्यक्ति द्वारा पूजा और पूज्य व्यक्ति का व्यतिक्रम होता है, वहाँ दुर्भिक्ष, मृत्यु, भय विराजता है। ब्राह्मणों ने और भी कहा कि

एक चमार शालग्राम अर्चना करके सबकी जाति नष्ट कर रहा है। इस कारण ब्राह्मणों की धर्मरक्षा के लिए रैदास को देशान्तरित करना आवश्यक है। राजा ने रैदास को शालग्राम त्याग करने का आदेश दिया। रैदास ने कहा—"मेरी एकांत याचना है—महाराज के सामने ब्राह्मण को शालग्राम अर्पण करूँ।"

राजा ने सम्मति दे दी। कोई भी ब्राह्मण शालग्राम को स्थानान्तरित न कर सके। जयजयकार हुआ, स्तुतिवन्दना हुई सब व्यर्थ हो गया। प्रभु की लीला देखकर रैदास गद्गद कंठ से प्रभु की स्तुति करने लगे।

हे प्रभो, तुम मेरे आश्रय हो, तुम परम आनंद के मूल हो, तुम अद्वितीय हो, पदागत भक्त के प्रति दृष्टिपात करो। मैंने नाना योनियों में भ्रमण किया है, मृत्युभय से उत्तीर्ण नहीं हुआ हूँ। मैं रिपुओं और माया में पड़ा हुआ हूँ। ऐसा करो कि तुम्हारे ऊपर विश्वास रखकर भय से मुक्त हो जाऊँ। लोग जिसे धर्म कहते हैं, उसके ऊपर निर्भर न करूँ। हे भगवान्, अपने सेवक रैदास का प्रीति-उपहार ग्रहण करो। अपने पतितपावन नाम की महिमा सार्थक करो।

अश्रुपूर्ण नेत्रों से रैदास की स्तुति समाप्त होते न होते भक्तवाञ्छा कल्पतरु भक्ताधीन शालग्राम भगवान रैदास की गोद में उपस्थित हुए। राजा ने विस्मित होकर ब्राह्मणों को तिरस्कार कर के विदा कर दिया।

चित्तौड़ की रानी झाली रैदास की शिष्या हुईं। एक यज्ञ में रानी झाली ने रैदास को बुलाया था। पर रैदास अस्पृश्य थे—उनको यज्ञ के उपलक्ष्य में उपस्थित देख कर ब्राह्मणों ने कहा कि हम पकाया हुआ अन्न ग्रहण न करेंगे।

ब्राह्मणों ने अपने हाथ से अन्न पका कर भोजन करने के लिए बैठ कर देखा कि प्रति दो जनों के बीच एक एक रैदास बैठ कर भोजन कर रहे हैं। रैदास का योगबल देख कर सभी लज्जित और विस्मित हुए।

भक्तमाल, हरिभक्ति प्रकाशिका ग्रन्थों में रैदास के विषय में और

गुरु रुइदास और मीराँबाई

श्री वृन्दावन मे मीराँजी का मन्दिर

भी अनेक तथ्य मिलते हैं। रैदास अतिथि-सेवापरायण थे। जब ही कहीं साधु-महात्माओं से मिलन होता था साधु-महात्माओं की सेवा करने का कार्य-भार रैदास स्वयं ग्रहण करते थे। तरुणों और युवकों को वे विशेष स्नेह करते थे। बहुत से लोग अभियोग करते थे कि, रैदास तरुण युवकों की मति-गति बिगाड़ रहे हैं। सेवा के प्रसंग में रैदास की प्रार्थना और प्रणति अतीव अपूर्व थी।

भक्तमाल, ग्रन्थ साहब आदि ग्रन्थों में रैदास की कतिपय वाणियाँ लिपिबद्ध हैं। "रैदासजी की बाणी" और "रैदासजी के पद" नामक हिन्दी ग्रन्थों में उनकी भक्ति-ज्ञान मिश्रित उपदेशावली विद्यमान है। वे एकेश्वरवादी सन्त थे। धर्म समन्वय उनका अभिप्रेत था। उनके एक भजन में है—

कृष्ण करीम राम रहिम हरि
जब लागि एक न पेखा
बेद किताब पुराणनि तब लागि
भ्रम ही देखा।

जब तक तुम कृष्ण करीम, राम और रहीम में अभेद दृष्टि से न देखोगे तब तक वेद में कुरान में और पुराण में तुमको भ्रम ही दिखाई पड़ता रहेगा।

रैदास के भजन अति अपूर्व हैं। अमृतमय भगवद्भक्ति वर्णन कर के वे गा रहे हैं—

प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी।
जाके अंग-अंग बास समानी॥
प्रभुजी, तुम घनबन हम मोरा।
जैसे चितवत चन्द चकोरा॥
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती।
जाकी ज्योति बरै दिन राती॥

प्रभुजी, तुम मोती हम धागा।
जैसे सोनहि मिलत सोहागा॥
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

हे प्रभो, तुम चन्दन हो, मैं जल हूँ, तुम्हारी सुगन्ध मेरे शरीर में अनुस्यूत है। हे प्रभो, तुम गहन वन हो और मैं प्रेमोन्मत्त मोर हूँ। हे प्रभो, तुम प्रदीप हो और मैं बत्ती हूँ। तुम्हारी ज्योति से मेरा अन्तर दिनरात प्रकाशित हो रहा है। हे प्रभो, तुम मोती हो और मैं धागा हूँ। प्रभो, तुम स्वामी हो, मैं दास हूँ। इस तरह रैदास भक्ति करता है।

सन्त रैदास की ईश्वर दर्शन में व्याकुलता इस तरह थी—

सबकी फेरौं प्रेमकी, दिलमे करौं नमाज।
फिरौ संतन दीदार को उसी सनम के काज॥

मैं सर्वदा प्रेम की माला जपता हूँ। हृदय में नमाज पढ़ता हूँ। मैं प्रिय प्रभु के दर्शन के लिए नाना स्थानों में घूमता हूँ।

रैदासजी को रविदास और रुद्रदास भी कहते हैं। क्रुक्स साहब ने The North Western Province of India ग्रन्थ में लिखा है—संख्या में रुद्रदासी लोग रामानन्द या कबीरपंथियों के परवर्ती हैं। रैदास कबीर के सम सामयिक थे। रैदास सम्प्रदाय उत्तर भारत में विशेष प्रभावशाली है। मोची या चमार जाति के लोगों से नाम पूछने पर श्रद्धा पूर्वक नाम के अन्त में रैदास उच्चारण करते हैं। प्रति वर्ष रैदास-जयन्ती महासमारोह से सम्पन्न होती है। रैदास ने १२० वर्ष की अवस्था में प्राण त्याग दिया।

रैदास सिद्ध महापुरुष थे,—मीराबाई के इन दो दोहों में उसका परिचय मिलता है—

खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ,
मरम न कोई जाना।
सतगुरु औषध ऐसी दीनी,
रोम-रोम भयो चैना॥
नहीं मैं पीहर सासरे रे,
नहीं पियाजी के पास।
मीरा ने गोविन्द मिलिया रे,
गुरु मिलियो रैदास॥

खड़ी-खड़ी मैं जीवन-पथ निरीक्षण कर रही थी, मैंने देखा मेरा मर्म कोई भी नहीं जानता। सद्गुरु ने भवरोग की ऐसी औषधि दी है कि जिससे प्रेमावेश से मेरी देह रोमाञ्चित हो गयी। मैं पिता श्वसुर या पति के पास नहीं रहती। इष्टदेव गोविन्द और सद्गुरु रैदास को पा गयी हूँ।

सन्त रैदास को कृपा पाकर मीराबाई धन्य हो गयी थीं। चित्तौड़गढ़ में मीराबाई के मंदिर के सम्मुखस्थ मंदिर में रैदास जी के पदचिन्ह अंकित हैं। रैदास ने साधना द्वारा प्रमाणित किया है—जो बंगला में इस प्रकार उद्धृत है—

"मूची-हये शुचि हय यदि हरि भजे।
शुचि हये मुची हय यदि हरि त्यजे॥"

हरि भजन करने से मोची भी पवित्र हो जाते हैं और हरि को त्याग देने से पवित्र कुल में उत्पन्न भी मोची हो जाती है। रैदास ■ हरि को भजकर शुचि अर्थात् परम भागवत हुए थे। मीराबाई उनकी शक्ति से शक्तिमती होकर जगत् में प्रेम धर्म का प्रचार करने में समर्थ हुई थीं।

सम्प्रदाय

वैष्णव चार सम्प्रदायों में मीराबाई किस सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त थीं, इसका निर्णय करना कठिन काम है। इस सम्बंध में सविशेष सिद्धान्त जानने

के लिए ग्रंथकार ने पास चारों तरफ से अनुसंधान आया है। ग्रंथकार स्वयं गलताधाम, मथुरा, वृन्दावन प्रभृति भ्रमण करके और बहुत सज्जन महदनियों के साथ इस विषय में आलाप-आलोचना करके भी किसी स्थिर सिद्धांत पर न पहुँच सके हैं। गुरु परम्परा रूप से देखने से मीराबाई को रामानुज या रामानन्द सम्प्रदाय युक्त होना चाहिये किन्तु यह गुरुपरम्परा किस तरह चली आ रही है यह एक विचारणीय विषय है। रामानुजाचार्य लक्ष्मीनारायण के उपासक (विशिष्टाद्वैतवाद ऐश्वर्य भाव) थे। उनके ही पञ्चम शिष्य रामानंद ने लक्ष्मीनारायण त्याग-कर सीताराम की उपासना (द्वैत–दास्य भाव) का प्रवर्तन किया। रामानंदजी के शिष्य रैदास मीराबाई के गुरु थे। रैदास की जीवनी तथा साधना पद्धति की आलोचना करने से दिखाई पड़ता है कि यद्यपि अपनी जीवन-साधना के पथ में श्रीविष्णु को लेकर उन्होंने विविध लीला क्रीड़ाएँ की थीं, तथापि वे एकेश्वरवादी सन्त थे। उनकी दोहावली में श्रीवृन्दावन-चन्द्र, श्रीकृष्ण या व्रजगोपियों के लीला क्रीड़ाविषयक मधुरस का कोई इङ्गित नहीं मिलता। कृष्ण-प्रेम पागलिनी मीरा संत रैदास से इष्टमन्त्र प्राप्त होने पर भी, उनको कैसे रामा-नुजी या रामानंदी सम्प्रदाय युक्त कहा जाय? मीराबाई की भजनावली में लक्ष्मीनारायण या सीताराम के लीलावर्णना का कोई परिचय नहीं मिलता। मीराबाई की जीवनसाधना में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि बाल्य काल से एक श्रीगिरिधर-गोपाल के अतिरिक्त और किसी की उपासना उन्होंने नहीं की। श्रीकृष्ण को ही प्राणप्रिय पतिरूप में अंतिम क्षण तक अवलम्बन किया था। 'भजचन्द्रचकोरी मीरा' 'दि स्टोरी आफ मीराबाई' प्रभृति ग्रन्थों के लेखक श्रीबाँकेबिहारीजी के साथ आलोचना करते समय उन्होंने मीराबाई को रामानंदी सम्प्रदायभुक्ता कह मन्तव्य किया था। किंतु रामानंदी सम्प्रदाय में श्रीगिरधर गोपाल को इष्ट मान कर गोपी भाव से उपासना करने का नाम निशान क्या है? तो भी रामानंदी

सम्प्रदाय के सन्त रैदास को मीरा ने गुरु रूप में स्वीकार किया था। यह बात सच है।

पहले देखने से ज्ञात होता है कि रामानन्द जी ने रामानुजसम्प्रदाय मुक्त होकर भी गुरु परम्परा को पर्याप्त परिवर्तित करके लक्ष्मीनारायण के बदले श्रीराम सीता की उपासना का प्रवर्तन किया। उसी जगह तो सम्प्रदाय या इष्ट का परिवर्तन हो गया।

बहुग्रन्थलेखक मित्रवर श्रीराजमोहन नाथ ने एक पत्र में लिखा है—'प्रथमत जिस गुरु से बीज मन्त्र लिया जाता है, उनका ही सम्प्रदाय स्वीकार करना पड़ता है। यह बीज मन्त्र क्षेत्र विशेष में भिन्न फल भी धारण कर सकता है और बाद को निजस्वरूप का वैशिष्ट्य लेकर प्रतिभात हो सकता है। मीराबाई रामानुजी श्रीसम्प्रदायमुक्त होकर उस सम्प्रदाय के आदि अण्डाल और तिरुमल के भावों से पुष्ट हुई हैं और बाद को स्वस्वरूप में प्रतिभात होकर मीरा सम्प्रदाय की आदि हुई हैं। मीरा को रामानुजी श्रीसम्प्रदाय की शिष्या कहने में यथेष्ट युक्ति विद्यमान है।'

रामानुज और रामानन्द सम्प्रदायगत भावस एक होने पर भी, इष्ट के निर्णयानुसार पृथक हो गये हैं। मीराबाइ के साथ रामानुज का सम्बन्ध गौण, और रामानन्द का सम्बन्ध मुख्य मानना पड़ेगा, क्योंकि रैदासजी रामानन्द के शिष्य थे और मीराबाई रैदास की शिष्या थीं। इस कारण इस दृष्टि स लक्ष्मी नारायण की अपेक्षा सीताराम के साथ मीरा का सम्बन्ध अधिक रहना आवश्यक है। किन्तु इन दोनों में से किसी के साथ भी उनका सम्बन्ध नहीं था। इस लिए मीराबाई को रामानुज सम्प्रदाय की कैसे कह सकते हैं।

श्रीवृन्दावन से अधिकारी श्री ब्रजवल्लभ वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ महाशय ने एक पत्र में लिखा है—"क्योंकि मारवाड का राठौर कुल निम्बार्क सम्प्रदायभुक्त वैष्णव हैं, परन्तु उनमें यह ऐसी प्रथा थी कि

विवाह और यज्ञोपवीत संस्कार के समय वैष्णव मंत्र की दीक्षा लेनी पड़ती थी।" कुलप्रथानुसार मीराबाई ने विवाह के समय निम्बार्क मत से दीक्षा होने पर भी, उन्होंने विवाह के बाद सन्त रैदास से दीक्षा ग्रहण की थी। निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीराधाकृष्ण की उपासना रहने पर भी गोपीभाव की उपासना का सम्बन्ध किस मात्रा में मिलता है! इसलिए कृष्णप्रेम पागलिनी गोपीभाव की उपासिका मीराबाई को निम्बार्क सम्प्रदाय युक्त कहना उचित नहीं है।

"मीराबाई" ग्रन्थ प्रणेता स्वामी वामदेवानन्द ने लिखा है—"मीराबाई के भक्तगण मीराबाई सम्प्रदाय नाम से परिचित है। यह सम्प्रदाय वल्लभाचारी की एक शाखा है।"

राजस्थान भ्रमण काल में बहुत अनुसंधान करने पर भी "मीराबाई सम्प्रदाय" नामक किसी भी सम्प्रदाय का पता मुझे नहीं चला। परन्तु वल्लभाचारी या श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के लोग बालगोपाल के उपासक हैं—वात्सल्य भाव से उनकी उपासना चलती है। इस कारण मीराबाई वल्लभाचारी सम्प्रदाय की भीन हीं हो सकतीं।

श्यामसुन्दर दासजी ने मीराबाई को माधवाचार्य सम्प्रदायभुक्त बताया है। फिर इन्दौर के 'मीरा' पुस्तक के लेखक श्रीश्यामापति पाण्डेय कहते हैं कि माधवाचार्य सम्प्रदाय में श्री राधा का उल्लेख नहीं है। श्रीचैतन्य देव ने श्रीराधा को प्रधानता दी है। मीराबाई ने भी श्रीराधा का उल्लेख विशेष भाव से नहीं किया है। श्रीग्रानन्द शङ्कर ध्रुवजीने "नरसिंह और मीरा" निबन्ध में लिखा है कि चैतन्य सम्प्रदाय के साधुओं के साथ मीरा विशेष समागम की सम्भावना प्रतीत होती है।'

श्री वियोगी हरि ने कहा कि श्रीजीवगोस्वामी मीरा के सिद्ध गुरु थे। इसलिए मीरा श्रीचैतन्य सम्प्रदाय की वैष्णवी थीं। क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभु के विषय में मीरा के एक पद में मिलता है—

अब तो हरी नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धरयो बैरागी।
कित छोड़ी यह मोहन मुरली, कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूँड मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाको पाँव।
स्यामकिसोर भयो नवगोरा, चैतन्य जाको नाव।
पीताम्बर को भाव दिखावैं, कटि कौपीन कसै।
गौर कृष्ण * की दासी मीरा रसना कृष्ण बसै॥

अब हरिनाम में प्रेम लग गया है (श्रीगौरांग को लक्ष्य करके) सब स्थानों में वे माखन चोरा है, अब उन्होंने वैराग्य नाम रूप लिया है। मोहन मुरली गोपियों को छोड़ कर सिर मुँड़वा कर डोर कौपीन बाँध ली है। और मोहन टोपी पहन ली है। माता जसोमती ने माखन चुराने के कारण उनके पैर बाध रखे थे—उसी श्याम किशोर ने अब नव गौराग होकर चैतन्य नाम ले लिया है। पिताम्बर का भाव देख कर कटि में कौपीन बाँध ली है। गौरकृष्ण की दासी मीरा रसना में कृष्ण नाम जप रही है।

इससे अनुमान होता है कि श्रीमन्महाप्रभु चैतन्य देव के प्रति मीरा विशेष अनुरक्ता थीं। मीराबाई के दार्शनिक मतवाद की चर्चालोचना करने से प्रमाणित होता है कि वे मधुर भाव की उपासिका थीं। उस भाव के प्रवर्तक और भावुक चूड़ामणि युगावतार श्रीचैतन्यदेव का विशेष प्रभाव मीराबाई के ऊपर पड़ा था। मीराबाई के भजनों में श्रीराधा का स्थान न रहने पर भी महाप्रभु का स्थान अद्भुत भाव से विद्यमान है।

'मीरा माधुरी' ग्रन्थ के लेखक ने मीराबाई के सम्प्रदाय के सम्बन्ध में सुन्दर रूप से मीमांसा करके लिखा है—'गोपियों ने भक्ति के एक निजस्व प्रेम पद्धति प्रचलित की थी, और उस पद्धति में मीराबाई ने अपनी

* संगीतराग कल्पद्रुम।

साधना का पथ निर्धारित कर लिया था। मीरा ने किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होने का प्रयास नहीं किया और किसी को भी इस साधना पथ में आने का आह्वान नहीं किया। उनकी भक्ति स्वभावज थी। वे स्वयं पूर्वजन्म में गोपी थीं। अपने उपास्य श्रीकृष्ण को उन्होंने पति रूप में मान लिया था।

आचारगत भाव में वैष्णवों के चारों सम्प्रदायों में पार्थक्य रह सकता है। यह बाहिर व्यापार मात्र है, किन्तु सबका लक्ष्य एक है इष्ट एक है। सभी एक प्राणनाथ की तरफ दौड़ रहे हैं। उनकी तृप्ति सबकी तृप्ति है। मीराबाई ने समाज और सम्प्रदायगत किसी भी बन्धन में न पड़कर बचपन काल से कृष्ण प्राणनाथ रूप में वरण कर लिया था। इसलिए मीरा भी समष्टिगत सम्प्रदाय से बहुत ऊपर है। उनका सम्प्रदाय था—प्रेममय श्रीकृष्ण सम्प्रदाय—जो कृष्ण सबके नाथ हैं, सबके इष्ट हैं।

मीराबाई तथा अन्य भक्त

मीराबाई की जीवनी और उनके दर्शन (फिलासफी आफ मीराबाई) की आलोचना करने में प्रवृत्त होकर उनको जिस दृष्टि से अनुभव कर सकता हूँ, उसे व्याख्यान में रख कर यह बता देना कठिन है कि उनके जीवन, उनकी साधना और उनके दर्शन के साथ दूसरों के जीवन, दर्शन और उनकी साधना की तुलना किस सीमा तक सम्भव हो सकेगी। भागवत जीवन बिताकर कैवल्य मुक्ति प्राप्त करना ही साधक के जीवन का लक्ष्य होता है।। वैष्णव साधना में भक्त कैवल्य मुक्ति प्राप्ति की आकांक्षा न करके श्रीकृष्ण सेवा प्राप्ति को ही साधना का चरम लक्ष्य मानकर अग्रसर होते हैं। इस अग्रगति के मार्ग में ८ स्तर विद-

मान हैं। छठे स्तर की प्राप्ति के बाद साधक नित्यानन्द में मग्न रहते हैं। वैष्णव साधना में विराट सागर और उसको वारिविन्दु के रूप में केवल आनन्दानुभूति के लिए वे अपने इष्ट के साथ लीलाक्रीड़ा करने में विद्यमान रहते हैं। यह द्वैत भाव सच्चिदानन्द की आनन्दानुभूति के लिए होता है। कौन साधक किस स्तर में रहकर प्रभु के साथ लीला-क्रीड़ा कर रहे हैं इसे भागवत परायण साधक ही अनुभव कर सकते हैं। मेरा जन्म पूर्वीय बंगाल के निभृत ग्राम में हुआ। वहाँ की जलवायु में लालित-पालित हुआ हूँ। किन्तु जीवन के एक अध्याय में दृष्टि पड़ गयी सुदूर राजस्थान की महीयसी देवी मीराबाई के प्रति। उनका जीवन साधना और दार्शनिक चिन्ताधारा से विमुग्ध होकर उनको परम भागवत साक्षात् देवी रूप में मैंने देखा है। वे अपने जीवन में किस स्तर पर पहुँच गयी थीं इसका निर्णय करना मेरे समान एक नगण्य व्यक्ति के लिए कठिन है। इसी प्रकार उनका जीवन-साधना के साथ उनके पूर्ववर्ती या परवर्ती भक्तों की तुलना करते समय उनमें से कौन किस स्तर पर थे इसका निर्णय करना भी कठिन विषय है। इसलिए बाहरी रूप से केवल मीराबाई के बाहरी रूप और अन्यान्य भक्तों के भी बाहर के रूप की समालोचना मात्र की जायगी।

मीरॉबाई और महाप्रभु श्रीचैतन्य देवः—

मीराबाई की प्रेमभक्ति और श्रीकृष्ण सेवा के विषय में आलोचना करते समय पहले ही बंगदेश के पतितपावन प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेव पर दृष्टि पड़ती है। श्रीचैतन्यदेव १४०७ शकाब्द फाल्गुनी पूर्णिमा को (१४८६ ई० १८ वीं फरवरी) नवद्वीप में आविर्भूत हुए। श्रीचैतन्यदेव के पूर्वपुरुष श्रीहट्ट के अधिवासी थे। इसी श्रीहट्ट भूमि में स्वयं जन्म ग्रहण करके मैं धन्य हुआ हूँ। श्रीचैतन्य-देव समस्त [illegible]

चैतन्यदेव रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। शङ्कराचार्य के बाद श्री चैतन्यदेव ही दिग्विजयी धर्मप्रचारक हुए हैं। जिन्होंने पैदल ही चल कर बंग देश से लेकर समग्र दक्षिण भारत और उत्तर भारत की प्रदक्षिणा करके प्रेम धर्म का प्रचार किया था। शंकर के धर्म प्रचार का मूल था अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा करना। और महाप्रभु चैतन्यदेव ने प्रचार किया अचिन्त्य भेदाभेदवाद। उन्होंने दक्षिण भारत से अमूल्य ग्रन्थ "श्रीकृष्ण कर्णामृत" आदि वैष्णव ग्रन्थों का और श्रीवृन्दावन की श्रीकृष्ण-लीलाभूमि के लुप्त तीर्थों का पुनरुद्धार किया। वैष्णव-साधना में गोपी भाव या मधुर रस की उपासना के प्रवर्तक श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव थे। गोपी-भाव या मधुर रस का रूपान्तर ही प्रेम भाव है। इसी प्रेम भाव की उपासिका मीराबाई थीं। महाप्रभु चैतन्यदेव की प्रवर्तित साधना-पद्धति और मीराबाई की साधना-पद्धति दोनों एक हैं। यह विषय अवश्य गम्भीर भाव से अनुभव या विचार करने की अपेक्षा रखता है। अन्यान्य भक्तों के साथ तुलना करने में केवल मीराबाई के साहित्य या दर्शन आंशिक रूप से मेल में आ सकते हैं किन्तु महाप्रभु के साथ तुलना करने से दोनों की साधना पद्धति सम्पूर्ण रूप से एक ही ज्ञात होती है। सत्य है कि महाप्रभु चैतन्यदेव की प्रवर्तित साधनपन्थ से मीराबाई विशेष रूप से प्रभावान्वित हुई थीं। श्रीवृन्दावन में श्रीचैतन्यदेव के अन्यतम पार्षद श्रीजीवगोस्वामी के साथ मीराबाई का साक्षात्कार हुआ था। श्रीजीवगोस्वामी श्रीचैतन्यदेव के प्रवर्तित अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त के अन्यतम प्रचारक थे। दोनों के मिलन काल में जो आलोचना हुई थी उससे श्रीचैतन्यदेव की चिन्ताधारा में मीराबाई का विशेष रूप से प्रभावान्वित होना स्वाभाविक है। किन्तु पुरुष होने के कारण मोहग्रस्त श्रीजीवगोस्वामी का अहंभाव मीराबाई की अमृतमयी युक्ति से ही भंग हुआ था। भारतवर्ष के वैष्णव आचार्यों में, गोपी भाव या मधुर रस के उपासकों में श्रीचैतन्यदेव और मीराबाई अन्यतम हैं।

मीराबाई और नरसी मेहताः—

श्रीनरसी मेहता का जन्म कृष्ण के अन्यतमलीला क्षेत्र सौराष्ट्र या गुजरात में सं १४७० (१४१३ ई) में हुआ था ।* जन्मकाल से ही वे गूँगे थे । एक दिन हाटकेश्वर महादेव के मन्दिर में एक सन्त द्वारा उनकेकानों में 'राधाकृष्ण, राधाकृष्ण' नाम प्रदान करते समय नरसी ऊँचे स्वर से 'राधाकृष्ण, राधाकृष्ण' पुकारने लगे। नरसी की कठोर साधना से मुग्ध होकर शिव ने उनको श्रीकृष्ण दर्शन का वरदान दिया। नरसी के जीवन की बहुत सी घटनाओं से प्रमाण मिलते हैं कि श्रीकृष्ण ने स्वयं साक्षात रूप से उनके साथ मिलकर क्रीड़ा की थी। मीराबाई ने अपने जीवन का अन्तिम काल गुजरात के द्वारकाधाम में व्यतीत किया था। उन्हीं दिनों सम्भवतः वे नरसी जी की साधना से विशेष रूप से प्रभावित हुई थीं। मीराबाई ने 'नरसीजी रो माहेरो' नामक ग्रन्थ में लिखा है—

नरसी को माहेरो मगल गावे, मीरा दासी।
हूँ प्रसन्न मीरा तब भाख्यो, सुन सखि मिथुला नामा॥
नरसी की विर गाय सुनाऊं, सारे सब ही कामा।

इसका कोई भी प्रमाण नहीं मिला है कि मीराबाई को नरसी के दर्शन मिले थे। मीराबाई ने बहुत भजन गुजराती भाषा में रचे थे। नरसी परम वैष्णव थे, इसीलिए मीरा ने उनकी साधना से मुग्ध होकर ऐसे गुणगान किये हैं। नरसी ने एक पद में गाया है—

कोई एक जल भजनी गोपी,
भने नरसैयारे।

---

* श्री मंगल लिखित "भक्त नरसी मेहता।"

जिस रस की रसिक व्रजगोपी थीं, नरसी वही रस स्वयं उपभोग कर रहा है। इस स्थान पर मीरा और नरसी में गोपीभाव की रस-साधना एक प्रकार शांत हो रही है।

मीराबाई और सूरदासः—

ब्रज के चौरासीकोस के अन्तर्गत अथवा या आगरा के बल्लभगढ़ के सीही नामक स्थान में सूरदास ने संवत् १५३५ (१४७८ ई०) में जन्मग्रहण किया।*

स्वयं जन्मान्ध होकर भी सूरदास ने गुरु आज्ञा से श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की बाललीला से लेकर मथुरा-गमन लीला तक का वर्णन करके सवालाख पदों की रचना की। यही ग्रन्थ सूरसागर नाम से प्रसिद्ध है। सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाललीला अर्थात् वात्सल्य रस के पद विशेष रूप से रचे थे। मीराबाई की भाँति उन्होंने विरहलीला के पद भी गाये हैं।

जैसे—"नैना भए अनाथ हमारे" "सूरश्याम प्रभु करि विष ऐसी मृत बहुते पुनि मारे।" प्रेम के विषय में मीरा ने जैसे "बिना प्रेम से नहीं मिले नन्दलाला" गाया है, उसी प्रकार सूरदास ने भी 'प्रेम प्रेम ते होई, प्रेम ते पारहि पइये' आदि पद गाये हैं। श्रीकृष्ण को एक मात्र प्रेम से पा सकते हैं। दोनों की वाणी एक प्रकार है। मिलन के गान में मीरा प्रभु के साथ मिल सकी थीं। और सूरदास ने राधामाधव, माधव-राधा कह कर दोनों को एक मूर्ति में मिलाकर रस उपभोग किया है।

मीराबाई और घनानन्द तथा नागरीदासः—

घनानन्द का जन्म मीराबाई के आविर्भाव के प्रायः १५० वर्ष बाद हुआ था। मीराबाई और घनानन्द का विरहलीला-वर्णन एक प्रकार है। घनानन्द के विरहवर्णन में शारीरिक यातना अधिक प्रकट हुई है।

* सूरदास, एक विश्लेषण।

घनानन्द ने विरहलीला को "अजौं धुनि बाँसरी की तान बोलै" और "सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति हैं" आदि कविताओं द्वारा अपने स्मृतिजनित कष्ट का वर्णन किया है।* घनानन्द अपने विरह-निवेदन में वास्तव में अद्वितीय हैं। मीराबाई के साथ कभी-कभी घनानन्द के प्रिय भक्त नागरीदास की भी तुलना की जाती है।

नागरी दास ने श्रीराधाकृष्ण के भक्तिविषयक सुन्दर ग्रन्थ की रचना की है। नागरीदास अपने प्रेम की तन्मयता में बहुत कुछ मीरा के समान थे और उनका भी हृदय मीरा की भाँति अलौकिक सौन्दर्य द्वारा प्रभावित था।

मीराबाई और जायसी:—

भक्त मुसलमान कवि मलिक मुहम्मद जायसी मीराबाई के पूर्ववर्ती थे। जायसी बहुत दिन तक जीवित थे। उन्होंने दोहा चौपाइयों में "पद्मावत" नामक प्रेमगाथा की रचना की और उक्त मसनवी पद्धति के अनुसार, उसके द्वारा अपने सूफी सिद्धान्तों का विशेष वर्णन किया। मीरा ने अपने भजन की रचना अधिकतर ब्रजभाषा एवं राजस्थानी में की है। जायसी की रचना अवधी भाषा में है। मीरा और जायसी दोनों द्वारा प्रदर्शित प्रेम आरम्भ से ही विरह-गर्भित और अलौकिक है। और दोनों ने ही उसके कारण स्वरूप किसी पूर्व सम्बन्ध का संकेत किया है। जायसी ने पद्मावती या "सपन विचारूँ" के द्वारा परिचय दिया है। प्रायः इसी प्रकार मीरा ने अपने "सुपने में परण" जाने का विवरण देकर उसका समर्थन "पूर्व जनम के भाग" द्वारा ही किया है।*

* परशुराम चतुर्वेदी—विरही कवि घनानन्द।

* जायसी ग्रन्थावली।

मीराबाई और नामदेव—

भक्त कवियों में नामदेव मीराबाई से लगभग दो सौ से अधिक वर्ष पहले आविर्भूत हुए थे। उनकी रचना मराठी भाषा में है। मीराबाई और नामदेव सगुणोपासक थे। वे मीरा की भाँति अपने इष्टदेव "विट्ठल" को प्राणनाथ मानते थे। मीरा जिस प्रकार "स्यूँ स्यूँ बाही" दिखाने में प्रवृत्त होती थी, नामदेव के भी "सब गोविन्द है, सब गोविन्द बिन नहीं कोई" का भाव था। १

मीरा और कबीर:—

रैदासजी मीराबाई के गुरु थे। कबीर साहब रैदासजी के समकालीन और वय. में कुछ बड़े भी थे। कबीर एवं मीरा की रचनाओं में भावसाम्य के उदाहरण प्रचुर मात्रा में दीख पड़ते हैं। २ मीरा ने अपने पदों के द्वारा दाम्पत्यभाव के गीत गाये और कबीर ने भी बहुत पद इसीरूप से रचे हैं। विरहिनी मीरा सारे जगत् के सोने पर भी जागती बैठी हुई "असुवन की माला" गूँथा करती है, दुनिया कबीरदास भी सुखिया संसार को सदा चैन पूर्वक खाता और सोता पाकर जागते व रोते रहा करते हैं। ३

मीराँबाई व अंडाल या गोदा देवी:—

मीराँबाई की भाँति भक्तों और भावुकों में दक्षिण भारत के तामिल प्रान्त की आलवार भक्तिन अंडाल या गोदादेवी का नाम लिया जाता है।

लगभग साढ़े सात सौ वर्ष पूर्व मदुरा जिला के विल्लीपुत्तर ग्राम निवासी पेरी या विष्णुचित्त ने वटपत्रशायी भगवान की पूजा के लिए पुष्पचयन करते समय तुलसी वृक्ष की वेदी पर एक परमा सुन्दरी बालिका को प्राप्त किया। पहले उसका नाम कोदई अर्थात् सुमनों की मालाकी भाँति कमनीय रक्खा गया था। कोदई बड़ी होने पर भी भगवान के लिए गुँथी हुई मालाओं को स्वयं अपने गले में डालने लगी जिससे

१. नामदेवजी की गाथा २. मीराँबाई की पदावली ३. कबीर ग्रन्थावली।

रणछोड़जी (द्वारकानाथ जी)
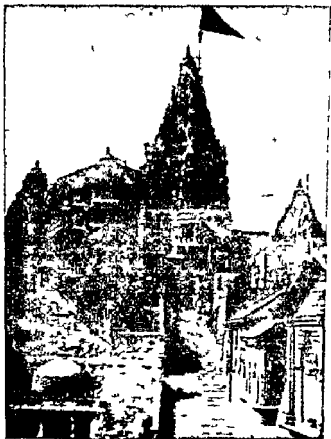
रणछोड जी का मन्दिर द्वारका धाम

विष्णुचित्त को अप्रसन्न होकर उसे मना करना पड़ा। पीछे जब विष्णुचित्त ने अनुभव किया कि भगवान उसकी पहनी हुई माला से अधिक प्रसन्न होते हैं तो उन्होंने उसे अनुमति प्रदान कर दी। कोदई के हृदय में भगवान के प्रति अहेतुकी प्रेम का और श्रीकृष्ण-मिलन की तीव्र वासना का संचार हो गया। सब लोग उनको गोपी अवतार तक समझने लगे। विवाह योग्य होने पर कोदई ने अपने गुरुजनों को बतला दिया कि मैं श्रीरंगनाथ को छोड़ कर किसी दूसरे को पति रूप में वरण नहीं कर सकती। स्वप्न द्वारा विष्णुचित्त को जब आदेश प्राप्त हुआ तो उन्होंने कोदई को वैवाहिक विधि से श्रीरंगनाथ को समर्पित किया। कथित है कि अन्त में श्रीभगवान से मिलते ही वह सबके सामने रंगनाथ के साथ लीन हो गई। तब से तामिल प्रान्त में उसकी पूजा देवताओं की भाँति होती है और वह अंडाल अर्थात् शासन करने वाली या 'स्वामिनी' नाम से परिचित है। कोदई का तीसरा नाम 'गोदा' अर्थात् वाणी को श्रीभगवान के प्रति अर्पित करने वाली है। इसीलिए इस नाम से वह पुकारी जाती है। गोदा की दो कृतियों में तिरुमावै अथवा 'श्रीव्रत' एवं नाच्चियार तिरमोलि अथवा 'गोदा की सूक्तियाँ अभी तक प्रसिद्ध हैं।

'श्रीगुरु-परम्परा प्रभाव' ग्रन्थ में लिखा है, कि मीराँबाई जैसे रणछोड़ जी की देह में लीन हो गयी थीं उसी प्रकार गोदादेवी भी अपने इष्टदेव श्रीरंगनाथ जी के साथ विलीन हो गयी थीं।

मीराँबाई और गोदादेवी में तुलना मूलक भाव से समालोचना करने से ज्ञात होता है कि दोनों की साधन-पंथा में अपूर्व सामंजस्य विद्यमान है। दोनों ही रसिकेन्द्र चूड़ामणि श्रीकृष्ण प्रेम-पागलिनी थीं। पार्थिव पति के साथ भोग-सुख को अति तुच्छ समझ कर मीराँ और गोदा ने श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण किया था। दोनों की साधना गोपी भाव में, मधुर रस में है। गोदा देवी की जीवन-साधना सरल सहज भाव से बाधा-विघ्न के बिना व्यतीत हुई थी। किन्तु मीराँबाई का जीवन भक्-

बाल प्रह्लाद की तरह कठोर अग्नि-परीक्षा के बीच से उत्तीर्ण हुआ। शिशु वयस से आरम्भ करके प्रति पग पग पर ही मीरां को कठोर अग्नि परीक्षा के सम्मुखीन होना पड़ा था। मीरांबाई का जैसे चार वर्ष के वयःक्रम में श्रीजगदीश के साथ विवाह हुआ, था उसी प्रकार श्रीरंगनाथ के साथ गोदा देवी के विवाह का प्रसंग उनके श्रीसूक्ति ग्रन्थ में मिलता है। मीरांबाई ने जिस प्रकार श्रीकृष्ण विरह से कातर होकर मिलन के लिए पपीहा, कोयल, जोशी को दौत्यकार्य करने के लिए आह्वान किया था। उसी प्रकार गोदादेवी ने भी प्रभु के साथ मिलन के लिए कोयल आदि को आह्वान किया था। दोनों ही प्रेम-धर्म प्रचारिणी भक्त देवियाँ थीं।

मीरांबाई की जीवनी संश्लिष्ट ऐतिहासिक समय धारा

१३८२	राणा लाखाजी की राजगद्दी
१३६५	मारवाड़ राज्य-सस्थापन
१३८०	जोधाजी का जन्म
१४४०	रावदूदाजी का जन्म
१४५८	जोधपुर राजधानी बसाना
१४६१	मेड़ता राज्य सस्थापन
१४६८	राणा कुम्भ की मृत्यु
१४७३	राणा रायमल की राजगद्दी
१४७७	राव वीरमदेव का जन्म
१४८१	राणा सांगा का जन्म
१४८८	जोधाजी की मृत्यु
१५००	भोजराज का जन्म
१५०३$	मीरांबाई का जन्म

$ चतुरकुल चरित्र में सं० १५५५ (ई० १४९८) मिला है। सुखसिंह गहलत, जन्म तिथि श्रावण शुक्ल १ सं० १५६१ (ई० १५०४) लिखते हैं।

१५०७	जयमलजी का जन्म
१५०६	राणा साँगा की राजगद्दी
१५१६	मीराबाई का विवाह
१५१६	श्रीरूपगोस्वामी का वृन्दावन में आना
१५२१	राणा उदयसिंह का जन्म
१५२३	भोजराज की मृत्यु, मीरा का वैधव्य
१५२७	मीराबाई के पिता रत्नसिंह तथा पितृव्य रायमल की मृत्यु
१२७५	राणासाँगा की मृत्यु, राणा रत्नसिंह की राजगद्दी
१५३१	राणा रत्नसिंह की मृत्यु, विक्रमाजीत की राजगद्दी, बहादुरशाह गुजराती का चित्तौड़ पर आक्रमण, मालदेव की राजगद्दी, मालदेव का वीरमदेव की सहायता से भद्राजुॅन पर अधिकार
१५३१-३२	मीराबाई का मेवाड़ त्याग कर मेड़ता गमन
१५३४	मालदेव की मेड़ता पर चढ़ाई
१५३३	दौलत खा ने मेड़ता पर चढ़ाई की तब मालदेव ने वीरमदेव की सहायता के लिए नागौर पर अधिकार कर लिया
१५३५	बहादुरशाह गुजराती का चित्तौड़ पर अधिकार श्री जीव गोस्वामी का वृन्दावन में आना
१५३६	विक्रमाजीत का मारा जाना, बनवारी की राजगदी
१५३८	उदयसिंह की राजगद्दी, मालदेव का मेड़ता पर अधिकार तथा मीराबाई का मेड़ता त्याग
१५३८—१५३६	मीराबाई का वृन्दावन-गमन, द्वारिका-गमन
१५४२	अकबर का जन्म
१५४३	मालदेव तथा शेरशाह का युद्ध, मेड़ता पर वीरमदेव का अधिकार

मीरां-साहित्य

साहित्यिक, कवि, सङ्गीतज्ञ, शिल्पी—ये जाति के (राष्ट्र के) प्राण स्वरूप हैं। य सा रक गण जाति को सजीव और प्राणपूर्ण बना रखते हैं। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, सूरदास, कबीर, दादू, रामप्रसाद, बङ्किम, रवीन्द्रनाथ प्रमुख भक्त साहित्यिक मरमी साधकगण काल-प्रभाव से जाति के सम्मुख से तिरोहित हो गये हैं। उनके साहित्य, काव्य की मर्मवाणी, संगीत की लहरी ने जाति के अन्तर को चिर जाग्रत कर रखा है। उत्तर भारत का श्री वृन्दावन और अयोध्या धाम श्रीभगवान कृष्णचन्द्र और श्रीरामचन्द्र की लीलाभूमि है। कृष्णजी भारतात्मा हैं। समग्र भारतवासियों के हृदय पर कृष्णजी ने अपनी लीला-क्रीड़ा द्वारा अधिकार कर रखा है। और रामनाम समग्र जाति का एक मात्र सम्बल बना हुआ है, किन्तु यह सब तत्व और लीला क्रीड़ा किसके द्वारा जाति के सम्मुख प्रचारित हुई? इसके मूल में है साहित्य और साहित्यिक। कृष्ण-लीला वर्णन में—व्यासदेव और रामचन्द्रजी का नाम प्रचार करने में वाल्मीकि का निपुण हाथ नियोजित न होता तो सम्भव है इतने सहज में वे लोग जाति के हृदय पर अधिकार न कर सकते। इसके मूल में लीलामय की लीला विद्यमान है यह अवश्य स्वीकार करने योग्य है। भगवान ने ही अपने प्रयोजन से भक्तों के द्वारा अपनी लीला जगत् वासियों के सम्मुख प्रचारित की है। वास्तवतः अवश्य ही इन कर्मों के मूल में व्यास-देव, वाल्मीकि, परवर्ती काल में चण्डीदास, तुलसीदास आदि का महत् प्रयास और कृतित्व विद्यमान हैं। यह परम सत्य है कि समग्र उत्तर भारत के अधिवासियों के हृदय पर रामचन्द्रजी की लीला और उनके नाम माहात्म्य ने जिस तरह अधिकार कर रखा है—उसके मूल में गोस्वामी तुलसीदास की एक मात्र साधना है। तुलसीदास की जड़ देह ध्वंस हो चुकी है, किन्तु उत्तर भारत के प्रति जनपद में, मन्दिर-मन्दिर में ग्रामों के दीनतम के कुटीर-प्राङ्गण तक में तुलसीदास का रामगुणगान दिन

१५२६ॐ	मीराबाई का निधन (चतुरकुल चरित्र के अनुसार)
१५५४	मेड़ता पर मालदेव का पुनः अधिकार अकबर की गद्दी
१५६३	तानसेन का अकबर के दरबार में आना, मेड़ता पर अकबर का अधिकार
१५६७	अकबर का चित्तौड़ पर अधिकार, जयमल मेड़तिया की मृत्यु
१५७१	माद्र शुक्ल १२ राणा उदयसिंह की मृत्यु

ॐ श्री सुखवीरसिंह गहलत, मृत्यु तिथि चैत-शुक्ल ३ सं० १६२५ लिखते हैं ।

द्वितीय खंड

मीराँ-साहित्य

३—फुटकर पद (इस ग्रन्थ का वह संग्रह)

४—रागसोरठ (कबीर, नामदेव और मीराबाई के पद)

महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मीराबाई-रचित 'राग गोविन्द' और 'मीरा की मलार' नामक और दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

श्री के० एम० झवेरी ने मीराबाई-रचित गुजरात में प्रचलित "गर्बा गीत" नामक एक ग्रन्थ का नाम लिया है। इस प्रकार मीराबाई रचित सात ग्रन्थों का सन्धान अब तक मिलता है।

५—गीतगोविन्द की टीका—यह ग्रन्थ वर्तमान काल में दुष्प्राप्य है। गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव थे।

मीरा के पतिकुल के महाराणा कुम्भ ने 'रसिकप्रिया' नामक गीतगोविन्द की टीका की थी। बहुतों की धारणा है—यही ग्रन्थ बाद में मीराबाई के नाम से प्रचलित हो गया। ऐसी धारणा करने की विशेष युक्ति नहीं है। क्योंकि जयदेव जिस रस के रसिक थे, उस रस के पूर्णतम पर्याय में मीराबाई पहुँच गयी थी, इसलिए जयदेव के गीतगोविन्द पर टीका लिखना मीरा के लिए कोई असम्भव काम नहीं था। श्रीकृष्ण ने स्वयं जयदेव के गीतगोविन्द की परिसमाप्ति की थी—मीराबाई के जीवन में भी श्रीगिरिधर की अपरिसीम कृपा से मीरा अमृतमयी यह भजनावली रचना करने में समर्थ हुई थी। इस कारण मीराबाई ने स्वयं गीतगोविन्द का रसास्वाद करने के लिए टीका लिखा थी यही जान पड़ता है।

२—नरसी जी रो माहेरो:—

मुंशी देवी प्रसाद जी ने 'हस्तलिखित संग्रहालय' से इस ग्रन्थ का विवरण संग्रह किया है। यह ग्रन्थ आदि, मध्य और अन्त इन तीन भागों में विभक्त है। मीराबाई की मिथुला नामक एक सखी थी। उनके बीच जो प्रश्नोत्तर हुए थे—वही इस ग्रन्थ की विषय वस्तु है प्रश्नोत्तर [illegible] 'दासी उवाच' 'मीरा उवाच' शब्दों का [illegible]

मिलता है। राजस्थान और गुजरात में एक लोक प्रिय प्रथा है कि अपनी कन्या और बहन की सन्तानों के विवाहोपलक्ष्य में पहरावनी अर्थात् परिधान वस्त्रादि देने पड़ते हैं, इसको माहेरी कहते हैं। कहते हैं कि भक्त कवि नरसी मेहता की कन्या नानाबाई को श्रीकृष्ण ने माहेरी दी थी।

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार है—

गणपति कृपाकरो गुन सागर, जन को जस
सुभ गाय सुनाऊँ।
पश्चिम दिशा प्रसिद्ध धाम सुख, श्रीरणछोड़ निवासी।
नरसी को माहेरो मंगल गावे, मीरा दासी॥
छत्री वंस जनम मम जानो, नगर मेड़ते वासी।
नरसी को जस बरन सुनाऊँ, नाना विधि इतिहासी॥
सखा आपने संग जु-लीन, हर मन्दिर में आए।
भक्ति कथा आरम्भी सुन्दर, हरिगुण सीस नवाए॥
को मण्डल को देस बखानूँ, सन्त के
जस वारी।
को नरसी सो भयो कौन विध,
कहो महिराज कुँवारी॥
है प्रसन्न मीरा तब भाख्यो,
सुन सखि मृथुला नामा।
नरसी को विध गाय सुनाऊँ,
सारे सब ही कामा॥

हे गणपति! कृपा करो, तुम गुणों के सागर हो, जन गण को शुभ मंगल गान करके सुना रही हूँ। पश्चिम दिशा में प्रसिद्ध धाम श्रीरणछोड़ जी का निवास है। मीरा दासी नरसी जी के माहेरा का मंगल गान कर रही है। मैं मेड़ता नगर वासिनी क्षत्रियवंशजाता हूँ। नाना

रात गाया जाता चला आ रहा है। प्राकृतिक विपर्यय से उत्तर भारत परिवर्तित हो सकता है, किन्तु एक व्यक्ति के जीवित रहते भी तुलसीदास के रचित दोहे लोगों के मुख से उच्चरित होते रहेंगे।

समग्र उत्तर भारत परिभ्रमण कर मैंने देखा है, कि तुलसीदास को त्याग देने से उत्तर भारत की जातीय सम्पद कुछ भी न रहेगी। वंग देश में वैष्णव धर्म, तन्त्र या शक्ति धर्म के मूल में चण्डीदास, गोविन्ददास, मुरारी गुप्त, रामप्रसाद की देन विद्यमान है। उत्तर भारत में कजली, गुजरात में गर्बागीत, पूर्वी बंगाल में भटियाली संगीत, मुकुन्द दास का यात्रा कीर्तन, पश्चिम बंगालमें बाउल संगीत, कीर्तिवास का रामायण, काशीरामदास का महाभारत प्रभृति संगीत और साहित्य ने जाति के प्राण को उदार और भाव प्रवण कर रखा है।

मीराबाई षोडश शताब्दी के राजस्थान की महीयसी नारी हैं। राजस्थान के महा विस्तृत भूखण्ड में उनकी लीला क्रीड़ा प्रकट हुई थी। चारसौ वर्ष परचात् आज भी समग्र भारत में हम सुन पाते हैं—"मीरा के प्रभु गिरिधर नागर" की अमृत गीति मधुर भजनावली। यह भजन मधुर संगीत केवल राजस्थान में सीमाबद्ध नहीं है, समग्र भारत में ही नहीं परन्तु समग्र विश्व में समादृत है और आनन्द के साथ आस्वादित हो रहा है।

भक्तकवि जयदेव के गीतगोविन्द ग्रन्थ में श्रीकृष्ण प्रेम लीला का वर्णन पहले पहल मिलता है। जयदेव ने संस्कृत में ग्रन्थ रचना की थी। इसके परवर्ती काल के कवि मिथिला के विद्यापति, गुजरात के नरसी मेहता और बंगदेशके चण्डीदास हैं। मीरा साहित्य की उत्पत्ति इन भक्त कवियों के परवर्ती काल में है। भक्त सूरदास, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, नन्ददास, कृष्णदास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, हरिव्यास और महाप्रभु के पार्षद जीवगोस्वामी मीराबाई के समकालीन या किंचित् परवर्ती काल के रहे होंगे, ऐसा ही अनुमान होता है। इन साधक कवियों में से प्रत्येक ने ही अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के रूप, नाम, और लीला का वर्णन करके

आनन्द उपभोग किया है। उनके साहित्य में श्रीकृष्ण और श्रीराधा की रूपक-रचना ही अधिक है। चण्डीदास, गोविन्ददास की कविताओं में युगल-लीला की ही बातें अधिक मिलती हैं। इन सब वैष्णव साहित्य और मीरा-साहित्य में अन्तर यह है कि, मीरा ने राधाकृष्ण का रूपक नहीं रचा है, मीरा के भजनों में श्रीराधा का विशेष उल्लेख नहीं है, यह कहने में अत्युक्ति नहीं है। केवल गुजराती भाषा के भजन में मिलता है—"मैं वृजभानु नन्दिनी।"

मीराबाई ने गिरिधारीलाल के प्रति सीधे भाव से विनय, लीला वर्णन, विरह, अनुराग, मिलन प्रभृति भजनों के माध्यम से आत्म निवेदन किया था। मीरा-साहित्य गौड़ीय वैष्णव के मधुर भाव की भाँति है किन्तु श्रीराधा का प्रकट वर्णन न रहने से मीरा-साहित्य ने स्वयं ही एक वैशिष्ट्य प्रकट किया है।

षोड़श शताब्दी में मीराँबाई की भजनावली हिन्दी साहित्य-जगत् में एक नवयुग लायी थी। बंगदेश में जिस तरह चण्डीदास, रामप्रसाद प्रभृति मरमी साधक कवियों के अनुकरण से परवर्ती काल में उनके नाम से नयी-नयी चण्डीदास, रामप्रसाद पदावली रचित हुई है। उसी तरह "मीरा कहे गिरधर नागर' वाक्य जोड़ कर मीराबाई के नाम से बहुत भजन हिन्दी, गुजराती, पंजाबी भाषाओं में रचित हुए हैं। इसलिए वास्तव में मीराबाई रचित कौन कौन ग्रन्थ और भजनावलिया हैं। इसका संधान पाना कठिन है।

मीराबाई के रचित ग्रन्थ और भजनावली

राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुन्शी देवी प्रसाद जी ने 'राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज"नामक ग्रन्थ के (संवत् १६६८) ५, ६, १२, १७ पृष्टों में मीराबाई रचित चार ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है—

१—गीत गोविन्द टीका
२—नरसीजी रो माहेरो

३—फुटकर पद (दस भक्तों का पद संग्रह)

४—राग सोरठ (कबीर, नामदेव और मीराबाई के पद)

महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मीराबाई-रचित 'राग-गोविन्द' और 'मीरा की मलार' नामक और दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

श्री के० एम० झवेरी ने मीराबाई रचित गुजरात में प्रचलित "गर्बा-गीत" नामक एक ग्रन्थ का नाम लिया है। इस प्रकार मीराबाई रचित सात ग्रन्थों का सन्धान अब तक मिलता है।

१—गीतगोविन्द की टीका—यह ग्रन्थ वर्तमान काल में दुष्प्राप्य है। गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव थे।

मीरा के पतिकुल के महाराणा कुम्भ ने 'रसिकप्रिया' नामक गीतगोविन्द की टीका की थी। बहुतों की धारणा है—यही ग्रन्थ बाद को मीराबाई के नाम से प्रचलित हो गया। ऐसी धारणा करने की विशेष युक्ति नहीं है। क्योंकि जयदेव जिस रसके रसिक थे, उस रस के पूर्णतम पर्याय में मीराबाई पहुँच गयी थीं, इसलिए जयदेव के गीतगोविन्द पर टीका लिखना मीरा के लिए कोई असम्भव काम नहीं था। श्रीकृष्ण ने स्वयं जयदेव के गीतगोविन्द की परिसमाप्ति की थी—मीराबाई के जीवन में भी श्रीगिरिधर की अपरिसीम कृपा से मीरा अमृतमयी यह भजनावली रचना करने में समर्थ हुई थीं। इस कारण मीराबाई ने स्वयं गीतगोविन्द का रसास्वाद करने के लिए टीका लिखी थी यही जान पड़ता है।

२—नरसी जी रो माहेरो —

मुंशी देवी प्रसाद जी ने 'हस्तलिखित संग्रहालय' से इस ग्रन्थ का विवरण संग्रह किया है। यह ग्रन्थ आदि, मध्य और अन्त इन तीन भागों में विभक्त है। मीराबाई का मिथुला नामक एक सखी थी। उनके बीच जो प्रश्नोत्तर हुए थे—वही इस ग्रन्थ की विषय वस्तु है प्रश्नोत्तर में समय समय पर 'सखी उवाच' 'मीरा उवाच' शब्दों का उल्लेख

मिलता है। राजस्थान और गुजरात में एक लोक प्रिय प्रथा है कि अपनी कन्या और बहन की सन्तानों के विवाहोपलक्ष्य में पहरावनी अर्थात् परिधान वस्त्रादि देने पड़ते हैं, इसको माहेरी कहते हैं। कहते हैं कि भक्त कवि नरसी मेहता की कन्या नानाबाई को श्रीकृष्ण ने माहेरी दी थी।

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार है—

गणपति कृपाकरो गुन सागर, जन को जस
सुभ गाय सुनाऊँ।
पश्चिम दिशा प्रसिद्ध धाम सुन, श्रीरणछोड़ निवासी।
नरसी को माहेरो मगल गाये, मीरा दासी॥
छत्री वंस जनम मम जानो, नगर मेड़ते वासी।
नरसी को जस बरन सुनाऊँ, नाना विधि इतिहासी॥
सखा आपने सग जु-लीन, हर मन्दिर में आए।
भक्ति कथा आरम्भी सुन्दर, हरिगुण सीस नवाए॥
को मण्डल को देस बखानूँ, सतन के
जस धारी।
को नरसी सो भयो कोन विध,
कहो महिराज कुँवारी॥
है प्रसन्न मीरा तब भाख्यो,
सुन सखि मृथुला नामा।
नरसी को विध गाय सुनाऊँ,
सारे सब ही कामा॥

हे गणपति ! कृपा करो, तुम गुणों के सागर हो, जन गण को शुभ मगल गान करके सुना रही हूँ। पश्चिम दिशा में प्रसिद्ध धाम श्रीरणछोड़ जी का निवास है। मीरा दासी नरसी जी के माहेरा का मंगल गान कर रही है। मैं मेड़ता नगर वासिनी क्षत्रियवंशजाता हूँ। नाना

भगियों से नरसी जी का यश वर्णन करके सुना रही हूँ। सखा, जो मेरे साथ लीन रहते हैं, वे हर मन्दिर में आये थे। सुन्दर भक्ति कथा आरम्भ करके हरि गुण गान में शिर नत कर रही हूं। कितने ही महलों और कितने देशों में सखों की यश-व्याख्या कर रही हूँ। हे महि-राज कुमारी, बताओ नरसी का भय कहाँ है किस बात का है। हे मिथुला सखी, सुनो मीरा प्रसन्न हो कर व्याख्या कर रही है। जो नरसी की विधि गाकर सुनावेगा उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायगी।

मध्य में—

सोवत ही पलंका में मैं तो।
पल लागी पल में पिउ आए॥
मैं जु उठी प्रभु आदर दैन यूँ।
जाग परी पिउ ढूँढ न पाए॥
और सखी पिउ सोय गमाए।
मैं जु सखि पिउ जागि गमाए॥
आज की बात कहा कहुँ सजनी।
सपना में हरि लेत बुलाए॥
वस्त्र एक जब प्रेम की पकरी।
आज भए सखि मन के भाए।

पलंग पर जब मैं सोयी थी तब पलक गिरते ही पल भर में प्रिय आ गये थे। मैं जब जाग कर प्रभु को सम्भासण करने जाती हूँ फिर सोचती हूँ—प्रभु कहीं भाग कर चले न जायँ। अन्य सखी ने सोकर प्रिय को खो दिया। मैंने उनको जाग जाग कर खो दिया। हे सजनी, आज की घटना में क्या कहूँ। सपने में हरि ने मुझे बुलाया था। उनका प्रेम वस्त्र पकड़ने को जाकर मन की दुर्बुद्धि के कारण सखा आज चले गये।

अन्त में—

यौ माहेरो सुनैरु गुँनि है,
बाजे अधिक बजाय।
मीरा कहै सत्यकरि मानो,
भक्ति मुक्ति फल पाय॥

जो माहेरो सुनता है, वह गुणवान है। और जो सुन कर अधिक सुनाता है—मीरा कहती है इसे सच मानो कि वह भक्ति मुक्ति का फल पाता है।

२—स्फुट पद —

मीराबाई के ग्रन्थ के बिना अन्यत्र प्राप्त भजनावली ही स्फुट पद नाम से परिचित है।

मीराबाई की भजनावली की प्रकृत सख्या निर्णय करना कठिन है। श्री झावेरी जी कहते हैं कि, गुजराती भाषा में सगृहीत पदों के सहित मीराबाई की भजनावली की सख्या २५० होगी। जयपुर के पुरोहित हरिनारायण जी ने एक पत्र में उल्लेख किया है—उनके पास लिखित, मुद्रित, श्रुत मीराबाई के ५०० भजन विद्यमान हैं। किन्तु इनमें अनेक पद ही सन्देह जनक हैं। जोधपुर के जगदीश गहलोत और बड़ौदा के मंजुला प्रमुख विद्वानों में मीराबाई के भजनों का सग्रह करने में सविशेष चेष्टा की है। ग्रन्थकार के पास अबतक ५०८ मीरा के भजन हैं। मीरा सुधा-सिन्धु के ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ में १३१२ भजन सग्रह किये हैं। प्रश्न यह है—मीराबाई तो केवल कवि नहीं थीं, साधन भजन में मग्न रहा करती थीं। इतने भजनों की रचना करने का अवकाश उन्होने कैसे प्राप्त किया। 'मीराँबाई की पदावली, के ग्रन्थकार ने लिखा है कि, वास्तव में मीरांबाई के अनेक पदों की भी, कबीर साहब आदि के पदों की भाँति ही बहुत कुछ दुर्दशा हो गयी है। जिस जिसने गाया है, उसने उन्हें अपने रंग में रंगने की चेष्टा की है और अपने

अपने विचारानुसार मीरां के ढर्रे पर कितने ही ऐसे स्वरचित पद प्रचलित कर दिये हैं, जो बिना ध्यान पूर्वक देख भाल किये, मीरा रचित ही जान पड़ते हैं ।

४ राग सोरठ—इस ग्रन्थ में कबीर, नामदेव, मीरांबाई के अपने भजन हैं । राग सोरठ भक्तों के लिए अति प्रिय भजन है । यह ग्रन्थ अवश्य ही दुष्प्राप्य है ।

५ रागगोविन्द—इस ग्रन्थ का प्रकृत तथ्य निर्णय करना सम्भव नहीं है । वास्तव में गोविन्द नामक कोई राग है ऐसा संगीत शास्त्र में कहीं भी नहीं मिलता । 'मीरां' ग्रन्थ लेखक गहलोतजी का मत है कि मीरां ने गोविन्द गुण गाया है इस लिए रागगोविन्द की उत्पत्ति हो सकती है । ओझा जी की धारणा है कि यह मीरांबाई का एक कविता-ग्रन्थ है ।

६ मीरां की मल्हार—यह ही सम्भव है कि मीरांबाई द्वारा गाया हुआ यह मल्हार राग विशेष है । ओझा जी कहते हैं कि, यह राग आज तक प्रचलित है और विशेष प्रसिद्ध है । इसके अधिक इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में और कोई तथ्य नहीं मिलता है ।

७ गर्बागीत —भावेरी जी के मत से गुजरात में प्रचलित गर्बागीत मीरांबाई का रचित है । गुजरात में इसका विशेष प्रचलन है । उत्तर प्रदेश के काशी, मिरजापुर प्रभृति स्थानों की स्त्रियां जिस तरह घूम घूम कर 'कजली' गाया करती हैं । उसी तरह गुजरात की स्त्रियां भी अनेक स्थानों में घूम कर गर्बागीत गाया करती हैं । जान पड़ता है, पूर्वी बंगाल में प्रचलित 'जलधामइल' गान की तरह यह गर्बागीत है । राजस्थान में भ्रमण काल में ग्रन्थकार को जयपुर और कांकरौली में गर्बागीत सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । गुजराती और राजपूत बालाएं माथे पर दीपक रख कर गर्बागीत गाती हैं । इसका दृश्य अत्यन्त सुन्दर और आनन्द प्रद है । मीराबाई ने अपने इष्टदेव गिरिधरगोपाल को पति के रूप में वरण करके गर्बागीत संगीत की रचना की थी । गर्बागीत रासमण्डली का लीला विषयक संगीत है ।

भाषा

मीराबाई राजस्थान की कवयित्री है। राजस्थान की तत्कालीन भाषा उनकी राष्ट्र भाषा थी। सम्भवत भारत में बहुतों की धारणा है कि बंगदेश के अतिरिक्त उत्तर भारत और पश्चिम भारत की भाषा हिन्दी है। किन्तु ग्रन्थकार ने बहुत दिनों तक उत्तर भारत में रह कर, विहार, उत्तर भारत, राजस्थान प्रभृति स्थानों में भ्रमण कर अपनी अभिज्ञता से लिखा है कि विहार, उत्तर प्रदेश तथा पूर्वाचल देश और राजस्थान की भाषा हिन्दी है। दिल्ली, आगरा, लखनऊ, पूर्वी पंजाब की भाषा उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी है। राजस्थान की हिन्दी के साथ बम्बई, मध्यप्रदेश, विहार की हिन्दी का सामजस्य विद्यमान है। राजस्थान की हिन्दी संस्कृत और बंगाली की भांति है। इस स्थानोंकी भाषा में तारतम्य का कारण यह है कि जिन स्थानों में मुसलमान बादशाहों का प्रभाव अधिक पड़ा था, वहां की भाषा ही उर्दू हो गयी है। राजस्थान, मध्यप्रदेश के उत्तरांश, और विहार म मुसलमान प्रभाव अल्प ही पड़ा था। इस कारण उनकी भाषा में स्वतंत्रता विद्यमान है।

मीरा साहित्य की भाषा हिन्दी होने पर भी वर्तमान काल की उर्दू-मिश्रित हिन्दी की तरह यह नहीं है। मीरा साहित्य में उर्दू शब्द प्राय नहीं है।

मीराबाई राजस्थान की नारी हैं। राजस्थानी भाषा उनकी मातृ भाषा थी। राजस्थानी भाषा का क्रम विकाश देख लिया जाय, विक्रमीय द्वितीय और तृतीय शताब्दी में (खीष्टीय प्रथम और द्वितीय) राजस्थान की स्वीय भाषा विकृत प्राप्त हुई। उस समय गुर्जर नामक एक विदेशी जाति ने भारत में प्रवेश करके राजस्थान के कुछ अंशों पर अधिकार स्थापित कर लिया। उसी समय से राजस्थान की प्राकृत भाषा विकृत होने लगी। यह विकृत भाषा सप्तम विक्रम शताब्दी में राज्य भाषा में परिणत हो गयी। क्रमश विस्तार लाभकर यह भाषा विभिन्न

दशम शताब्दी में मगध से सौराष्ट्र तक विस्तृति प्राप्त हुई, बाद को इस भाषा ने नागर या शौर सेनी भाषा में संस्कृत का प्रभाव कम था। चारण और जैन कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं से इस भाषा को समृद्ध बनाया, राजस्थान के पूर्वांचल की भाषा के ऊपर संस्कृत प्रभाव अधिक पड़ने लगा। इसके बाद संस्कृत की प्रभाव युक्त और संस्कृत की प्रभाव युक्त भाषाओं के सम्मिश्रण से क्रमशः राजस्थानी या व्रज भाषा की उत्पत्ति हुई। राजस्थान वासियों ने व्रज भाषा के प्रभाव से प्रभावान्वित होकर एक नवीन पद्धति से साहित्य रचना आरम्भ की—यही बाद को पिङ्गलनाम से परिचित हो गयी। अब भी पिङ्गल भाषा राजस्थान में प्रचलित है। किन्तु हिन्दी के प्रभाव से वह अब लुप्त होने लगी है। मीराबाई की पदावली की भाषा पिङ्गल भाषा के अन्तर्गत हिन्दी भाषा के अनुरूप है। किन्तु उर्दू मिश्रित हिन्दी नहीं है।

मीराबाई ने मेड़ता, मेवाड़, श्रीवृन्दावन और द्वारकाधाम में जीवन के विभिन्न समय बिताये थे। जिस समय जिस स्थान में रहीं, वहाँ की भाषा सीखकर उन्होंने उसी भाषा में भजनावली की रचना की। मेड़ता और चितौड़ की भाषा एक प्रकार की है। द्वारका धाम गुजरातमे अवस्थित है। द्वारका धाम में रहते समय। निश्चय ही मीरा ने गुजराती भाषा को प्राप्त किया। गुजराती भाषा में ११७ भजन मिलते हैं। इसके अतिरिक्त गुजराती भाषामें मीराबाई के रचित गर्बा गीत तो विद्यमान है। मीराबाई की भाषा सरल और माधुर्य पूर्ण है। उनकी भजनावली में भावों की प्रधानता ही अधिक है। प्रत्येक भजन का छन्द इतना सुन्दर और प्राणपूर्ण है कि, सहज भाव से ही वह राग रागिनी के साथ संगीत में रूपान्तरित हो सकता है। इसी लिए संगीतज्ञ और भावुकों के सम्मुख मीराबाई की भजनावली इतनी समादृत हो रही है। मीराबाई केवल हिन्दी, गुजराती, व्रजभाषा में सुनिपुण नहीं थी परन्तु संस्कृत भाषा में भी विशेषज्ञ थी। 'मीरांबाई की पदावली ग्रन्थ' में मिलता है कि,

मीरां हिन्दी, ब्रजभाषा गुजराती, के अतिरिक्त संस्कृत में भी विशेष पारदर्शिनी थी। साधु सन्तो के साथ वे उपनिषद आदि ग्रन्थों की आलोचना में अधिकाश समय बिताती थी।

विभिन्न भाषाओं में मीरां के पदों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

राजस्थानी:—

थेतो पलक उघाड़ों दीना नाथ।
मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।

ब्रजभाषा—

यही विधि भक्ति कैसे होय।

पंजाबी—

लागी सोही जाणै कठण गलणा दी पीर।

गुजराती—

जल जमुना माँ भरवा गमाँतां।
हती गागर माथे हेमनीरे आदि।
प्रेमनी प्रेमनीरे प्रेमनी मेरे लागी कटारी प्रेमनी।

खड़ी बोली—

श्रीगिरिधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि पिव-रसिक रिझाऊँ।

पूरबी—

जसुमति के दुवरवां, ग्वालिन सब जाय।
बरजहु आपन दुलरुवा हमसों अरुझाय।

वर्णविषय—मीरां बाई की पदावली की पर्यालोचना करनेसे दिखाई पड़ता है कि मीरां केवल गायिका अथवा सुनिपुण, कवयिनी ही नहीं थी—अन्तर की भावधारा व्यक्त करना ही उनके जीवन का प्रधान उद्देश्य था। भक्ति और प्रेमसाधना का ऐसा ज्वलन्त दृष्टान्त और कहीं भी दिखाई

नहीं पड़ता। मीरा के विनय सम्बन्धीय पदों में श्रीहरि का रूप हृदय में स्थापित करने का भाव प्रकट हुआ है।

'बसो मोरे नैनन में नन्द लाल।'

हे नन्द लाल, मेरे नयनों में विराज करो। इस पद में मीरा के प्राणों की आकुल प्रार्थना का परिचय मिलता है।

'चित्त से चित्त लगाओ अंग से अंग लगाओ।'

मीरां प्रार्थना कर रही हैं—प्रभो, प्राण से प्राण को अंग से अंग को एक करो।

इसके बाद— 'जांके सिर मोर मुकुट मेरे पति सोई।'

जिसके सिर पर मोर मुकुट है वे ही मेरे पति हैं। मीरा का लक्ष्य है जगतके एक व्यक्ति, एक पथ के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति या वस्तु में उनकी दृष्टि नहीं थी।

'श्रीगिरिधर आगे नाचूँगी।'

श्री गिरिधर के सामने नृत्य करूँगी। यह प्रभु के प्रति स्पष्ट उक्ति है। एक मात्र प्रभु के प्रति उनका लक्ष्य है।

प्रभु के विरह से विरहिनी होकर जिस तरह मीरा ने हृदय का व्यथा व्यक्त की है। उसमें उसके हृदय की तान सम्पूर्ण रूप से प्रकट हो गयी है। मीरा जिस प्रकार श्रीगिरिधर के लिए व्याकुल हो गयी था ऐसा आकुल अनुराग और किसी भक्त के भजनों में प्रकट हो सका है या नहीं इसमें सन्देह है। मीरा किसी भी अवस्था मे प्रभु को त्याग नही दिया है। मिलन की आशायें कौवा, पपीहा, और जोशी को दौत्य कार्य करने में लगाकर हृदय की प्रार्थना प्रकट की है।

व्रजभूमि क वर्णन प्रसंग में मीरा ने वृन्दावन और गोकुल वासियों की प्रशंसा की है। बाललीला, गोचारण, वंशीवादन, होली प्रभृति लीलाओं का वर्णन भी अपरूप हुआ है।

योग साधना के सम्बन्ध मे मीरा के बहुत से पद हैं। इन में उपनिषदों के गूढ़ रहस्य परिस्फुट हुए हैं। खूब सम्भव है। साधु सन्तों के साथ भाव विनिमय करते समय उन्होंने अध्यात्मतत्व की आलोचना की है।

काव्यत्व

मीराबाई की भजनावली एक हृदयग्राही काव्य है। प्रत्येक भजन ही अमृत रस से परिपूर्ण है। मीराबाई का जीवन विचित्र घटनावली का समावेश है। मीराबाई के जीवन की प्रत्येक घटना के साथ उसी प्रकार साहित्य और घटना की कहिनी करुण भाव से वर्णन करके अपरूप भावों का सृजन किया है। जीवन में जिस समय जो घटना घटित हुई है, उसके साथ-साथ ओतप्रोत भाव से मीराबाई के अन्तर की भावधारा ठीक उसी प्रकार वर्णित हुई है। किन्तु वैशिष्ट्य यह है कि, उनके लक्ष्य थे एक मात्र गिरिधारी। मीराबाई का रचित ऐसा एक भजन भी नहीं मिलता जिसमें प्रभु का नाम नहीं है। श्री वृन्दावन में जाकर वहाँ की दृश्यावली से मुग्ध होकर श्री वृन्दावन का रूप उन्होंने सुन्दरता के साथ वर्णन किया है। इसके बाद प्रत्येक ऋतु में मन प्राण प्रकृति के साथ ढालकर उन्होंने प्रभु की लीला को ठीक उसी भाँति रूपान्तरित किया है। जीवन की प्रत्येक घटनावली के साथ अपनी भावधारा का सामजस्य रखने में भूल नहीं की है। प्रत्येक घटना में उनका काव्य परिस्फुट हुआ है। पर उनके काव्य में कलाधर्म की अपेक्षा भाव प्रसाद की प्रधानता ही अधिक है।

अलंकार

मीराबाई की पदावली भावमयी है। कवित्व असीम है। प्रत्येक पदावली का मुख्य विषय है "हे *गिरधर नागर। मैं तुम्हारी हूं,* कब तुम्हारे साथ मेरा मिलन होगा?" अलंकार की आलोचना करते समय रूपक के उदाहरण अधिक मिलते है। जैसे—"ज्ञान को ढोल बंध्यो अति भारी।" ज्ञान का ढोल खूब कड़ा करके बाँध देना। रूपक और अन्यान्य अलङ्कारों का किञ्चित आभास दिया जा रहा है।

रूपक—

भौसागर अति जोर कहिये
अनँत ऊँडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा
उतर परले पार॥

उपमा—

जल बिन कँवल-चन्द बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्यो बिन सजनी।

उत्प्रेक्षा—

कुण्डल की अलक-भलक, कपोलन पर छाई।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥

अत्युक्ति—

गिणताँ गिणताँ घँस गई रेखा, आँगरिया की सारी।

उदाहरण—

मीरा प्रभु गिरधर मिले, (जैसे) पाणी मिल गयो रंग।

विभावना—

बिनि करताल पखावज बाजै, अणाहद की झणकार रे।

विभावोक्ति—

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल।

अर्थान्तरन्यासः—

घाइल की गति घाइल जानै।
की जिन लाई होई।

श्लेष—

श्रोढ़ भिरमिट माँ मिला सावरों।
खोल मिली तन गाती।

वीपसाः—

अँगि अँगि व्याकुल भई
मुखि पिय पिय बानी हो।

अनुप्रास —

समरथ सरण तुम्हारी साइयाँ ।
सरब सुधारण काज ।

छन्द

मीरा साहित्य में अलङ्कार की भाति छन्द भी हिन्दी साहित्य के अनुरूप है। मीराँ पदावली पिंगल भाषा के अन्तर्गत होने पर भी सब स्थानों में छन्द यथार्थ रूप रक्षित नहीं हुई हैं। मीरा पदावली सब ही संगीत है। इस लिए संगीत की सुविधा के अनुसार परिवर्तन परिवर्धन किया गया है। पदावली में कहीं मात्रा वृद्धि हुई है फिर कहीं छुट गयी है। कमसे कम १५ छन्द पदावली में मिलते हैं। प्रधान-प्रधान छन्द उपमा समेत देखाये जा रहे हैं।

सारछन्द—मीराँ पदावली का एक तृतीयाश एक छन्द के अन्तर्गत कहा जा सकता है। यह एक मात्रिक छन्द है। इसमें १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्राएं होती हैं।

जैसेः—

विष का प्याला राणा भेजा।
अमृत कर पीगयी रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर।
जन्म जन्म की दासी रे।

सरसी छन्द —इस छन्द का प्रयोग पदावली में बहुत है। सार छन्द से इसके उदाहरण केवल १०-१२ ही कम होंगे। यह भी मात्रिक छन्द है। १६ और ११ के विभाग से, इसमें २७ मात्राएं होती हैं।

जैसे:—

मैं जाण्यो नाहीं,

प्रभु को मिलन कैसे होइरी।

आये मेरे सजना फिरिगये अँगना,

मैं अभागण रही सोइरी।

विष्णुपद—यह मात्रिक छन्द है। पदावली में यह १४ बार प्रयुक्त हुआ है। इसमें १६ और १० के विश्राम से, २६ मात्राएँ होती हैं और इसके अन्त में गुरु लघु आते हैं।

जैसे—आयो मन मोहन री मीठा, थांरो बोल।

दोहाछन्द—संख्या के अनुसार पदावली के अन्तर्गत इस छन्द का प्रयोग कम है। इसके विषम चरणों में १३ तथा समचरणों में ११ मात्राएँ होनी चाहिए। किन्तु इस छन्द के साथ अन्य छन्दों का समिश्रण हो गया है। जैसे—

पपइया रे पिय की वाणी न बोल।

उपमानछन्द—इस मात्रिक छन्द में नियमानुसार १३ और १० के विश्राम से, २३ मात्राएँ होती हैं और अन्त में दो गुरु आते हैं। परन्तु इसके प्रायः सभी उदाहरण में गाने की सुविधा का ध्यान में रखकर 'हो' शब्द अन्त में लगा दिया है।

जैसे—

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,

मे जानूँ राणा जी गुन हो।

समान सवैया—इस मात्रिक छन्द में १३ और १० के विश्राम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इस छन्द के प्रयोग में समिश्रण हो गया है।

शोभन छन्द—यह छन्द १४ और १० के विश्राम से २४ मात्राओं का होता है। यदि अन्त में लघु गुरु हो जाता है तो उसे रूप माला कहते हैं।

जैसे:—

जोगिया जी आवो ने या देस।

नैणज देखूं नाथ मेरो, ध्याइ करूँ आदेस।

इस पद में शोभन और सरसी छन्द मिले हुए हैं।

ताटंक छन्द:— यह मात्रिक छन्द १६ और १४ के विश्राम से ३० मात्राओं का होता है।

जैसे—

रंगभरी रँगभरी रंग सूँ भरीरी।

होली आई प्यारी रँग सूँ भरी, री।

कुण्डल छन्द:—यह १२ और १० के विश्राम से २२ मात्राओं का होता है।

जैसे—

मैं तो सांवरे के रंग रांची।

चान्द्रायण छन्द:—यह ११ और १० के विश्राम से २१ मात्राओं का होता है, जैसे—

जागो म्हांरा जगपति राइक, हसि बोलो क्यूँ नहीं।

हरि छो जी हिरदा मांहि पट खोलो क्यूँ नहीं।

मीरां पदावली में इन १० छन्दों का उदाहरण प्रधान रूप से मिलता है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक छन्द हैं किन्तु उनका प्रयोग बहुत ही कम है।

मीराबाई ने भजन के सहयोग से अन्तर की वेदना प्रभु के समक्ष व्यक्त करते समय व्याकरणगत शुद्धाशुद्धि के प्रति अति अल्प ही दृष्टि रखी है। इस कारण भाषा, अलंकार, छन्द, लिंग, वचन इत्यादि की शुद्धाशुद्धि का विचार इन्होंने नहीं किया है। बाद को साहित्यिकों ने अपनी रुचि के अनुसार भाषा, अलंकार, और छन्दों का विन्यास पदावली में किया है, मुख्यतः मीरा-साहित्य कहने से मीरा की भजनावली

का ही बोध होता है। भजनावली में ही प्राणों की बात व्यक्त हुई है। भजनावली विरह रस की व्याकुलतापूर्ण आन्तरिक भावधारा है। मीरा के हृदय पर, उनके जीवन भर एक मधुर भावना की लहरें हिलोरें मारती रहीं। वे सदा समभती रहीं कि मैं श्रीगिरिधर लाल की 'अपनी' हूँ और उनके द्वारा अवश्य अपनायी जाऊँगी।

वैष्णव-साहित्य के अन्यतम श्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीकृष्ण-कर्णामृत और मीरा-भजनावली में पूर्ण सामंजस्य विद्यमान है। मीरा ने विरहानल से दग्ध होकर प्रभु के साथ मिलन का आकुल निवेदन व्यक्त किया था। श्रीकृष्णकर्णामृत में भी उसी प्रकार राधारानी ने प्रभु के साथ मिलन का आकुल निवेदन किया है।

बंगदेश में चण्डीदास, गोविन्ददास, मुरारीगुप्त, मिथिला में विद्यापति, उत्तर प्रदेश में तुलसीदास, सूरदास, महाराष्ट्र प्रदेश में तुकाराम, दक्षिण में गोदादेवी प्रभृति रसिक भक्तों ने अपनी पदावली द्वारा एक एक साहित्य का सृजन किया है। राजस्थान में भी उसी तरह अपनी भजनावली द्वारा मीराबाई ने एक प्राण-स्पर्शी वैष्णव-साहित्य सृजन किया है। आज भारत में सर्वत्र मीराबाई की भजनावली विशेष भाव से समादृत हो रही है।

प्राचीन ग्रन्थों में मीरां प्रसंग

ग्रन्थकार के नाम	ई० समय	ग्रन्थ के नाम
हरिराम जी व्यास	१५१०-१५७८	शब्द
नाभादास	१५८५-१६६४	भक्तमाल
प्रियादास	१६२२ टीका समाप्ति काल	भक्तिरसबोधनी टीका
ध्रुवदास	१६२३-१६४३	भक्तनामावली।
—	१४६४ या १५६०	चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

तुकाराम	१६०८	अभंग
राघवदास दादूपंथी	जन्म १५९६-मृत्यु १६८६	भक्तमाल
नागरीदास	१६९९-१७५६	पदप्रसंग मालिका
चरणदास	१७०३-१७८१	"शब्द"
दयाबाई	१७०८-१७८३	विनयमालिका
नन्दराम	१६८३-१७०३	बारहमासा
प्रीनघन	अज्ञात	—
बखतियार	"	—
जन लछमन	"	—
सदरदास कायस्थ	१७८३-१८४३	—
कर्णल टाड	१७२५-१७७८	एनल आफ राजस्थान
ठाकुर शिवसिंह	१८७६	शिवसिंह सरोज
महाराज रघुराजसिंह	१८२३-१८७९	रामरसिकावली
महाकवि श्यामलदासजी		वीरविनोद
मलूकदास	१५७४-१६८२	ज्ञानबोध
भगवत् रसिक	१७०३-१७६३	भक्तनामावली
श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद		भक्तमाल की टीका

———

तृतीय खंड

मीराँबाई का अध्यात्म-जीवन

वैष्णवधर्म और वैष्णव चार सम्प्रदायों का संक्षिप्त विवरण

मीराबाई परम वैष्णवी थीं। इसलिए मीराबाई की जीवनी-साधना और उनके आध्यात्मिक रहस्यवाद की आलोचना करते समय वैष्णव धर्म और उसके चार सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय देने से सहृदय पाठक-वृन्द आनन्द उपभोग कर सकते हैं, इसी आशा से ये सारे विवरण कुछ अप्रासंगिक होने पर भी इस अध्याय में दे दिये गये हैं। मीराबाई के पितृकुल राठौर कुल में वैष्णव धर्म का प्रभाव बहुत दिनों से चला आ रहा है। मीराबाई के पितामह राव दूदाजी परम वैष्णव थे। उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारभुजा मन्दिर अब भी मेड़ता शहर में विद्यमान है। परन्तु राठौर वंश की कुलप्रथा यह है कि, विवाह के पूर्व सभी को वैष्णव मत की दीक्षा लेनी पड़ती है। मीराबाई के पतिकुल में भी वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ा था। महाराणा कुम्भ परम वैष्णव थे। उनके रचित गीतगोविन्द की रसिकप्रिया टीका इस बात का प्रधान साक्ष्य प्रदान करती है। परवर्ती काल में उदयपुर के महाराणाओं में भी दो-एक परम वैष्णव थे। वैष्णव धर्म का इतिहास और ऐतिह्य संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

वैष्णव धर्म

वेद अपौरुषेय है और वैष्णव धर्म वैदिक धर्म है। पृथ्वी के सर्व प्राचीन शास्त्र ऋग्वेद के बहुत से ऋक्‌ों में विष्णु का उल्लेख है। वेद में विष्णु का अपर नाम है उरुक्रम, पृश्निगर्भ श्रीमद्भागवत में भी यह नाम गृहीत हुआ है। आचार्यों के मतानुसार पृश्निगर्भ रूप में विष्णु ने भक्त ध्रुव को दर्शन दिया था। ऋग्वेद में ऋषि मेधातिथि के दृष्ट विष्णु के त्रिपादक्षेप के "इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" (१।२२।१७) मन्त्र की व्याख्या में प्रायः सताईस सौ वर्ष पूर्ववर्ती निरुक्तकार "यास्क" ने अन्य दो पूर्वाचार्यों का मत उद्धृत किया है। इनमें से एक शाक

पूनी कहते हैं—इस त्रिपादक्षेप का स्थान पृथिवी, अन्तरीक्ष और द्युलोक है। पृथ्वी में अग्नि, अन्तरीक्ष में विद्युत् और द्युलोक में सूर्य्य रूप में विष्णु की अवस्थिति है। अपर निरुक्तकार और्णवाभ कहते हैं—समारोहण में, विष्णुपद में और गयशिरसि में विष्णु ने त्रिपाद स्थापित किये। मनीषी काशीप्रसाद जायसवाल ने इन सूत्रादि का आविष्कार किया। टीकाकार के मत से उदयाचल में, मध्य गगन में और अस्ताचल में स्थिति ही आदित्य रूपी विष्णु का त्रिपादक्षेप है। शतपथ ब्राह्मणादि में इसका प्रसंग है। वामन द्वादश आदित्यों में अन्यतम हैं। पहले त्रिविक्रम वामन उपास्यरूप में पूजित होते थे। विष्णुपद में उनकी पूजा होती थी। और्णवाभ का समय प्रायः तीन हजार वर्ष होगा।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धु रित्था विष्णोःपदे परमे मध्व उत्से॥
ता वा वास्तू न्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥

(ऋग्वेदः प्रथम मण्डल, १५४सूक्त, ५।६ ऋक्)

विष्णु का परम पद मधु का उत्स है। वे ही हमारे यथार्थ मित्र हैं। उस उरुक्रम उरुगाय विष्णु का आनन्दमय लोक भूरिशृङ्ग गोधनों से परिपूर्ण है। मन्त्र के ऐसे मर्मार्थ से अनुमान किया जाता है कि, ऋषि-गण उस रस स्वरुप की, मधु ब्रह्म की उपासना करते थे। उनका मित्र रूप में ध्यान करते थे। गो-गोप-सङ्घावृत गोलोक की प्रतिच्छवि उनके हृदय में प्रतिभात हुई थी।

यह विष्णु सर्वव्यापक विभु हैं, यही कृष्ण हैं। छान्दोग्य उपनिषद में देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख है। महाभारत के शान्तिपर्व में नारायणीय उपाख्यान में विष्णु के कितने ही नामों के निरुक्त मिलते हैं (३४२ अध्याय) अनुशासन पर्व के १४६ अध्याय में विष्णु के सहस्र नामों का उल्लेख है। नारायणीय उपाख्यान में विष्णु का उपासनामूलक पाञ्चरात्र मत वर्णित हुआ है (३३५-३४० अध्याय)।

शतपथ ब्राह्मण में (१६।६।१) पाञ्चरात्र सत्र का उल्लेख है। स्वयं नारायण पाँच दिनव्यापी इस सत्र में आत्माहुति देकर व्यष्ट, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा इन पञ्चरूपों में प्रकाशित हुए। वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह चतुर्व्यूहवाद पाञ्चरात्र धर्म का वैशिष्ट्य है। कोई कोई अनुमान करते हैं पुरुष सूक्त में चतुर्व्यूहवाद का इंगित है विष्णु धर्मोत्तर में चतुर्व्यूह को विष्णु का चतुर्मुख कहा गया है।

वैखानस और पाञ्चरात्र—वैष्णव धर्म की दो धाराओं में वैखानस मतवाद प्रायः विलुप्त हो गया है। किन्तु पाञ्चरात्र धर्म का परम्परागत प्रवाह आज भी अव्याहत है।

महाभारत शान्ति पर्व से ज्ञात होता है—ब्रह्माने नारायण से यह धर्म प्राप्त किया। ब्रह्मा का अपर नाम है विखानस। विखानस प्रवर्तित धर्म होने से इस धर्म का नाम वैखानस हुआ है।

ब्रह्मा के निकट से देवर्षि नारद को यह धर्म मिला। महाभारत के शान्ति पर्व में देवर्षि नारद के श्वेतद्वीप में जाकर भगवान नारायण के निकट से इस धर्मोपदेश की प्राप्ति की बात वर्णित है। जिस ग्रन्थमें नारद ने यह धर्मोपदेश ग्रथित किया है उसका नाम है 'नारद संग्रह' या 'नारद पाञ्चरात्र।' श्रीमद्भागवत में इस ग्रंथ का उल्लेख है। भगवान मैत्रेय विदुर से कह रहे हैं:—

मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनं।
येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्या विधिर्हरेः।

देवर्षि नारद ने उत्तानपाद पुत्र ध्रुव को यह धर्मोपदेश दिया था।

पाञ्चरात्र शब्द की व्याख्या में महाभारतकार ने कहा है, इस शास्त्र में चार वेद और सांख्य योग एक साथ सन्निविष्ट हैं—इसी लिए इसका नाम है 'पाञ्चरात्र'। देवर्षि नारद कहते हैं—परम तत्व, मुक्ति भक्ति, योग, तामस इस पंचज्ञानमूलक शास्त्र का नाम पाँचरात्र है।

इस धर्म का दूसरा नाम है—सात्वत धर्म। पद्मपुराण में है—यदुवंशीय अंशु के पुत्र का नाम सत्वत है। सत्वत के पुत्र का नाम है—सात्वत। सात्वत ने नारद के उपदेश से नारायण उपासनामूलक शास्त्र की रचना की। सात्वतगण का आचरणीय धर्म अथवा सात्वत प्रणीत शास्त्र-शासित धर्म इस अर्थ से सात्वत धर्म है। इसका दूसरा नाम भागवत धर्म है। ईश्वर संहिता में इसको 'एकायन' कहा गया है। भगवत् शरणागति ही इस धर्म का चरम और परम प्रतिपाद्य है। श्रीरामानुज के पथ निर्देशक आचार्य यामुन ने अपने आगम प्रामाण्य ग्रन्थ मे 'ईश्वरसंहिता' से वचन उद्धृत किये हैं। यामुन मुनि प्रायः सहस्रवर्ष पूर्व विद्यमान थे। वे दक्षिण भारत के निवासी थे। इसके पहले उत्तर भारत में काश्मीर में पांचरात्र मतवाद के एक अन्य प्रमाण्य पण्डित उत्पलदेव थे। उन्होंने जयाख्य नारद संग्रह, सात्वत संहिता प्रभृति ग्रन्थों का उल्लेख किया है। नारद संग्रह नारद पांचरात्र का ही नामान्तर है। 'न्याय मंजरी' ग्रन्थ प्रणेता जयन्त भट्ट प्रख्यात दार्शनिक थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ के प्रामाण्य प्रकरण में पांचरात्रादि आगम की प्रामाणिकता स्वीकार की है। इस कारण पाञ्चरात्र धर्म वेदसम्मत है इसमे सन्देह नहीं। पांचरात्र के अन्यतम दान का नाम भक्ति है। गीता भक्तिवाद का वेद है। पांचरात्र आगमोक्त पंचऋषियों का अन्यतम शाण्डिल्य भक्तिविषयक ग्रन्थ 'शाण्डिल्य सूत्र' है। स्मरणातीत काल से पांचरात्र मतवाद के साथ पौराणिक मत का समिश्रण हुआ था और उसके ही फल से वैष्णव धर्म का एक स्वतंत्र रूप गठित हो गया था। पुराण की दो धाराएं हैं। प्रथम श्रीमद्भागवत द्वितीय ब्रह्मवैवर्त। पद्मपुराण में इन दोनों धाराओं का समन्वय है। श्रीमन्महाप्रभु पांचरात्र आगम और श्रीमद्भागवत और पुराणादि की समन्वय मूर्ति हैं।❀

❀ श्रीहरेकृष्ण मुखोपाध्याय कृत 'जयदेव और गीतगोविन्द' ग्रन्थ से यह तथ्य संग्रहीत है।

श्री मन्महाप्रभु ने वैष्णव के सम्बन्ध में कहा है—

प्रभु कहे यार मुखे शुनि एक बार ।
कृष्ण नाम सेइ पूज्य श्रेष्ठ सबाकार ॥
एक कृष्ण नाम करे सर्व पाप क्षय ।
नवविधाभक्ति पूर्ण नाम हैते हय ॥
दीक्षा पुरश्चर्या विधि अपेक्षा ना करे ।
जिह्वा-स्पर्शे आचण्डाले सबारे उद्धारे ॥
अनुषङ्ग फले करे संसारेर क्षय ।
चित्त आकर्षिया कराय कृष्णे प्रेमोदय ॥
अतएव यार मुखे एक कृष्ण नाम ।
सेइ त वैष्णव करिह ताँहार सम्मान ॥

चैतन्य चरितामृत (१५।१०६-११)

"कृष्ण नाम निरन्तर याँहार वदने ।
सेइ वैष्णव श्रेष्ठ भज ताँहार चरणे ॥"
"याँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्ण नाम ।
ताँहारे जानिह तुमि वैष्णव प्रधान ॥

चै० च० (१६।७४)

श्रीमन्महाप्रभु की वाणी के अनुसार जिनके मुख में एक बार कृष्ण नाम उच्चारित होता है वे ही वैष्णव हैं और जिनका दर्शन करने से मुख से कृष्ण नाम स्फुरित होता है वे ही वैष्णव प्रधान हैं ।

श्री मन्महाप्रभु वैष्णव के लक्षण बताते हैं—

जिसके मुँह से एक बार कृष्ण नाम सुनाई पड़े, वही पूज्य है, सर्वश्रेष्ठ है । कृष्ण नाम ही सभी पापों का नाश करता है । नाम से ही नवविधा-भक्ति पूर्णता प्राप्त करती है । नाम का प्रभाव ऐसा है कि दीक्षा पुरश्चर्या आदि की कोई जरूरत नहीं पड़ती । जीभ से नाम का स्पर्श

होते ही चण्डाल से लेकर सभी उद्धार पा जाते हैं । सत्संग का फल यह है कि सांसारिक झमेलों का नाश हो जाता है । चित्त भक्ति में आकर्षित हो जाता है, कृष्ण में प्रेम जाग उठता है । इस लिए जिसके मुँह से कृष्ण नाम सुनाई पड़े, उसे वैष्णव समझें और उसका सम्मान करें ।

निरन्तर जिसके मुँह से कृष्ण नाम उच्चारित होता है वही श्रेष्ठ वैष्णव है, उसके चरणों की पूजा करो । जिसको देखते ही कृष्ण का नाम निकल पड़े उसे तुम वैष्णव प्रधान जान लो ।

श्रीभगवान ऐश्वर्यलीलामय विग्रहरूप में श्रीविष्णु हैं और माधुर्यलीलामय विग्रहरूप में श्रीकृष्ण हैं । श्रीविष्णु और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है । भागवत के दशम स्कन्ध में लिखा है—वसुदेव ने नव प्रसूत शिशु को चतुर्भुज श्रीवत्स चिन्हधारी पीताम्बरपरिहित शंख-चक्रधारी वैष्णवास्त्रविशिष्ट देखा था । श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व स्थापन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का उद्देश्य है । उस पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण मायातीत, गुणातीत, नित्य-सत्य-परमेश्वर हैं । वे यौवनसम्पन्न नाना रत्न-विभूषित, पीताम्बर मुरलीधर रूप में अक्षय गोलोक में नित्य स्थिति करते है । लीलामय, स्वेच्छामय सर्वशक्तिमान परम तत्व श्रीहरि लीलारस आस्वादन के लिए नित्यकाल श्रीराधागोविन्द रूप में विराजमान हैं ।

ईश्वर: परमः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रहः ।
अनादिरादि गोविन्द सर्वकारण कारणम् ॥

इस सच्चिदानन्द विग्रह सर्वकारण कारण श्रीकृष्ण का आश्रय करके वैष्णव धर्म की उत्पत्ति हुई । वैष्णव धर्म का गुह्य रहस्य एकमात्र भागवतपरायण भजनशील भक्त ही हृदयगम कर सकते हैं । ज्ञान और भक्ति के समन्वय से भजन द्वारा श्रीकृष्ण सेवा में साधनसिद्ध होना पड़ता है । वैकुण्ठेश्वर श्रीविष्णु और व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं । ऐश्वर्य-

भाव की उपासना में श्रीविष्णु और शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर भाव की उपासना में व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण हैं। दोनों ही एक हैं। वैष्णव धर्म का मूलतत्व आत्मसमर्पण में है।

गीता में श्रीभगवान् ने कहा है—सर्वे धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब प्रकार की वृत्तियों को त्याग कर एक मात्र प्रभु का शरणापन्न होना ही वैष्णव का एकमात्र कर्म है। सब के अन्त में यह सिद्धान्त आता है—भक्त और भगवान। भक्त कृष्णसेवा के आनन्द सागर में चिरकाल डूब रहना चाहते हैं। भक्त के सामने मुक्ति अति तुच्छ वस्तु है। आनन्द-रस लाभ ही एक मात्र काम्य है।

द्विज चण्डीदास की साधनात्मक वाणी में वैष्णव साधना का इंगित है:—

सइ, केबा शुनाइल श्याम नाम।
कानेर भितर दिया मरमे पशिल गो,
आकुल करिल मोर प्राण॥
ना जानि कतेक मधु श्याम नामे आछे गो,
बदन छाड़िते नाहि पारे।
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो,
केमने वा पाइबिव तारे॥

श्याम नाम ही इष्ट मन्त्र है। वैष्णव गुरु के निकट से श्याम नाम पाकर जपने लगते हैं। नाम जपते जपते शरीर अवश हो जाता है अर्थात् सात्विक गुण का चिन्ह परिस्फुट होने लगता है। तभी कुलकुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। इस शक्ति से भक्त बलवान् होकर अमृत पथ में अग्रसर होते रहते हैं। तब वैष्णव का सांसारिक धन्धों में लक्ष्य नहीं रहता। तब केवल यही अनुभूति रहती है—तुम प्रभु हो मैं तुम्हारा दास या भक्त हूँ। केवल आनन्दानुभूति के ही लिए मेरा अवस्थान है। यहाँ अद्वय तत्व की परिसमाप्ति है।

कृष्ण भावविभोरा मीरॉं

भजन में निमग्न मीराँबाई
(मेड़ता सिटी)

प्रेमावतार मन्महाप्रभुने कलियुग केजीवों के लिए—
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

इस महामन्त्र का सन्धान दिया था।

भगवान ने गीता में गाया है—
यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि।

यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ। भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने नाममाहात्म्य की विशेष रूप से वृद्धि की है। वैष्णव सिद्धान्त में नाम और नामी में अन्तर नहीं है। किंतु गोस्वामी प्रभु ने एक स्थान में कहा है—"हे राम, तुमने नरकलेवर परिग्रह करके अहल्या उद्धार किया है, रावण-वध किया है, इतना ही, किन्तु तुम्हारे नाम का माहात्म्य इतना है कि, तुम्हारा नाम लेकर कोटि कोटि जीव उद्धार पा रहे हैं।" इसलिए गोस्वामी प्रभु के मत से नाम ही श्रेष्ठ है। व्रजगोपियाँ नाम के प्रभाव से सांसारिक विषय-वस्तु भूल कर अन्त में अपने आपको भी भूल गयीं और सर्वत्र "श्रीकृष्ण" को देखने लगीं।

वैष्णव सत्व गुण का उपासक है। आसुरिक गति से जगत् की रक्षा एकमात्र वैष्णव ही कर सकते हैं। वैष्णव की अहिंसा और प्रेम में बिन्दुमात्र भी कापुरुषता नहीं रहती। वैष्णव ने सबसे पहले अपना अहं भाव लोप करके श्रीभगवान में आत्मसमर्पण कर दिया है। आत्मसमर्पित भगवद्भक्त के पास भय कापुरुषता कहाँ स्थान पा सकती है? वर्तमान युग में परम वैष्णव महात्मा गांधी ने अपनी जीवन-साधना द्वारा यह विश्वासियों के सामने प्रत्यक्ष कर दिया है। सहस्र सहस्र अस्त्रधारियों के सम्मुख ढाल, तलवार लेकर अग्रसर होना वीरत्व है या सत्य अहिंसा प्रेम रूपी अस्त्र से उनका हृदय जीत लेना वीरत्व है? महात्मा गान्धी इस परीक्षा की साक्षात मूर्ति हैं।

वैष्णव आनतिक विषयवस्तुओं के बहुत ऊर्द्ध में रहते हैं। वैष्णव का एकमात्र लक्ष्य है प्रभु वैष्णवानन्द दिव्य जीवन और प्रेममय धरणी उत्पन्न करना।

Vaishnabism के सम्बन्ध में मीराबाई ग्रन्थकार श्री अनाथनाथ बसु ने लिखा है—

The eternal instinct of the human soul is to love and to be loved. We need not only knowledge as our guide but also love as our support in our worldly life this love is or should be supplied by our family and social relationships—mother, father, husband, wife or friend—on whom we may larish all the love, our little soul is capable of the secular Vaishnabism seeks to expand as a religious ideal embracing the divine person

The God of Vaishnabism is not at a distance from the Devotee, but is as father, mother, friend or husband The beloved of our individual soul

वैष्णव के भगवान भक्त से बहुत दूर नहीं रहते। वे हैं परमात्मीय। इसीलिए बंगीय भक्त की प्रार्थना है—

तुमि मम प्रिय, परम आत्मीय
सदा येन मने राखि।

राय रामानन्द ने श्रीमन्महाप्रभु को कहा था— कृष्ण में कर्मफल समर्पण ही जीवों का साध्यसार है। मैं कर्ता नहीं हूँ। कर्त्ता हैं वही भगवान, मैं उनके अधीन हूँ, इस कारण मेरा जो कुछ भी कर्म है, श्रीभगवान ही उसके फलभोक्ता हैं।

रामानन्द की वाणी है—तुम मेरे प्रभु हो, मैं तुम्हारा सेवक हूँ।

दास्यप्रेम—तुम्हारे बहुसेवक रह सकते हैं किन्तु मुझे जान पड़ता है मैं सेवा न करूँ तो तुम्हारी सेवा नहीं होती। मेरी तरह तो कोई भी

तुम्हारी सेवा नहीं कर सकता। कहीं मानो त्रुटि रह जाती है। भगवान् के प्रति दास का यह जो भाव है यही है दास्यप्रेम।

सख्यप्रेम—सखा वन का फल खाते-खाते मीठा लगने पर उच्छिष्ट लाकर कृष्ण के मुख में देकर कहता है—कन्हाई को न खिलाने से मानो तृप्ति नहीं होती। फिर सम्भ्रम बोध भी कुछ नहीं रहा। खेल में हार कर कृष्ण को जिस तरह कंधे पर चढ़ाता है खेल में हरा कर उसी तरह कृष्ण के कन्धे पर चढ़ बैठता है। कहता है, तुम कौन बड़े आदमी हो—तुम तो हमारी ही तरह हो। व्रज के चरवाहे सख्य प्रेम के आदर्श हैं।

वात्सल्यप्रेम—भाग्यवती यशोदा तो जानती नहीं थीं, कौन उनके घर में आया है। कौन उनको माँ कहकर पुकार रहा है। नन्द क्या जानते थे कि, यह बालक कौन है जो पिता कहकर पुकारता है। नन्द समझना नहीं चाहते, कहते हैं—अहीर का लड़का है जातीय व्यवसाय न सीखने से काम कैसे चलेगा? गायें चराने को न भेजने से लड़का तो आलसी हो जायगा किन्तु माँ का मन नहीं मानता। बंगदेश के एक भक्त ने माता के मुँह से कहलाया है—

आमार शपति लागे, ना धाइह धेनुर आगे
परारोर पराण नीलमणि।
निकटे राखिह धेनु, पूरिह मोहन वेणु
घरे वसि आमि येन शुनि।
बलाइ धाइवे आगे, आर शिशु बाम भागे
श्रीदाम सुदाम सब पाछे।
तुमि तार माझे रहय संग छाड़ा ना हइय
माठे बड़ रिपु भय आछे।
क्षुधा हैले लइया खाइओ पथपाने चाहि याइय
अतिशय तृणाङ्कर पथे।
कारु बोले बड़ धेनु फिराइते ना याइय कानू
हात तुलि देह मोर माथे।

पाकिये तहर छाय मिनति करिछे माय
रवि येन ना लागये गाय।
(यादवेन्द्र)

मातृस्नेह सर्वत्र समान है किन्तु यशोदा की तरह और कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। यहाँ वात्सल्य प्रेम का चरम विकास है।

कांताभाव—

श्रीमद्भागवत में है—
नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन गन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड गृहीत कण्ठ।
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लभीनाम्॥

भक्त उद्धव कहते हैं—रासोत्सव में कृष्ण के भुजदण्ड से आलिंगिता लब्धकामा व्रजसुन्दरियों ने जो प्रसाद प्राप्त किया था, उसे पद्मिनी सुरललनाओं में श्रेष्ठ नारायण वक्षःस्थल स्थिता लक्ष्मी देवी भी न प्राप्त कर सकीं। केवल व्रजसुन्दरियाँ ही कह सकती हैं, "य रवे चाहं" मैं "वही तुम मैं हूँ" रास में श्रीकृष्ण को खो देने वाली गोपियों को यह प्रत्यक्षीभूत हो गया है।

प्रेमासक्ति

"मीरा कहे बिना प्रेमसे नहीं मिले नन्दलाला" प्रेम के बिना नन्दलाला को प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रेम का स्वरूप क्या है? बंगदेशके वैष्णव रसिक कहते हैं—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥

अपनी इन्द्रियों को प्रसन्न करने की जो इच्छा है उसे काम कहते हैं। कृष्णेन्द्रिय को प्रसन्न करने की इच्छा का नाम प्रेम है।

कृष्णेन्द्रिय-प्रीति इच्छा ही प्रेम है। चैतन्य चरितामृतकार ने प्रेम के स्तर का वर्णन किया है—

साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले ताहे प्रेम नाम कय।।

साधना और भक्ति से रति का उदय होता है। रति गाढ़ हो जाने पर उसको प्रेम नाम से पुकारा जाता है।

श्रद्धा प्राप्त होने पर भजन में आसक्ति होती है। भजनासक्ति गाढ़ी हो जाने पर वह भाव या रति नाम से पुकारी जाती है। भाव या रति गाढ़ी होने पर प्रेम की संज्ञा प्राप्त होती है। जब भाव चित्त को विशुद्ध करके गाढ़ स्वरूप का हो जाता है, तभी प्रेम का उदय होता है। भाव की परिपक्व अवस्था ही प्रेम है। चित्त के सम्यक् निर्मल हो जाने पर वह सेव्य श्रीकृष्ण में अतिशय ममतासम्पन्न हो जाता है, तब प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम का लक्षण यह है कि सांसारिक कोई भी विघ्न-विपत्ति उसको ध्वंस या उसमें ह्रास करने में समर्थ नहीं हो सकती। मीराबाई प्रेम की अधिकारिणी हो गयी थीं, इसी लिए राणा जी द्वारा सैकड़ों उत्पीड़न होने पर भी अभीष्ट मार्ग में अग्रसर होने में कोई भी व्यतिक्रम उपस्थित नहीं हुआ।

प्रेम के परवर्ती स्तर के सम्बन्ध में चरितामृतकार कहते हैं—

प्रेमवृद्धि क्रमे नाम स्नेह-मान-प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय।।
यैछे बीज इक्षुरस गुड़ खण्डसार।
शर्करा-सिता मिश्रि उत्तम मिश्रि आर।।
एइ सब कृष्णभक्ति रसस्थायी भाव।
स्थायि भावे मिले यदि विभाव अनुभाव।।
सात्विक व्यभिचारि भावेर मिलने।
कृष्ण भक्ति रस हय अमृत आस्वादने।।
यैछे दधि सिता घृत मरिच कर्पूर।

भक्तिभेद रतिभेद पंचम परकार ।
शान्त रति दास्य रति सख्यरति आर ॥
वात्सल्यरति मधुर रति पंच विभेद ।
रतिभेद कृष्णभक्तिरस पञ्च भेद ॥

अर्थात्—

ममता की उत्तरोत्तर गाढ़ता से प्रेम, स्नेह, राग, प्रणय प्रभृति कई अवस्थाएँ क्रमानुसार प्राप्त होती हैं। चित्तद्रवीभाव—स्नेह है। निविड़ स्नेह—राग है। गाढ़ विश्वास—प्रणय है। भक्तों की चित्तवृत्ति की अवस्था के अनुसार भावों का प्रकाश होता है। मीराबाई की जीवन-साधना में भावसमूह पर्यायक्रम से प्रकाशित हुए थे। उनके जीवन में मधुर रस से प्रेम-स्नेह-रागादि समस्त अवस्थाओं में ही परिस्फुट हुए थे। * भक्तों की कृष्णरति ही स्थायी भाव है। जीव के शुद्ध स्वरूप में जो आत्मगत मनोवृत्ति है, उसमें भागवतरस उगता रहता है। यह भागवत रस ही शुद्ध जीवन का सर्वस्व धन है। मधुर रस को भक्ति रस कहते हैं। असमोर्ध्व सौंदर्यशाली नागर लीला रसिकता में परमाश्रय श्रीकृष्ण इस रस के विषयावलम्बन हैं। व्रजगोपियाँ आश्रयावलम्बन हैं। विप्रलम्भ और सम्भोग भेद से मधुररति दो प्रकार की है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य मधुर रस में मधुर रस प्रधान है। प्राकृत विचार-बुद्धि या युक्तिसे अप्राकृत रस समझमें नहीं आता। शुद्ध सत्व में ही अप्राकृत रस का विकाश होता है। जो सदा अनादि, अनन्त, नित्य, नूतन रूप में विद्यमान हैं, भूतभविष्य रूप में हेय हैं खण्ड कालद्वय के अतीत है, और चमत्कारिता से परिपूर्ण है वही शुद्ध सत्व है। यह शुद्ध-सत्व-सम्पत्ति अप्राकृत रस-समुद्र ही श्रीहरि 'रसो वै सः' हैं।

---

* मीराबाई के साधन जीवन का स्तर—उनके भक्तिरहस्य परिच्छेद में हरि की चरण-वन्दना, अनुराग, लीला प्रभृति भजनों से व्यक्त हुए हैं।

प्रकृतिभाव से उपासना

प्रकृति भाव से उपासना वैष्णव साधना की अन्यतम विशेषता है। जीव प्रकृति के पुरुषोत्तम के साथ मिलन की जो लीला है, वही मधुर भाव का भजन है। इस विश्व में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह सब ही प्रकृति का खेल है, उस खेल के बन्द हो जाने से प्रकृति नामक कोई भी वस्तु नहीं रहती, किन्तु मूल में प्रकृति भी एकाकिनी अचला है, पुरुष के सान्निध्य के बिना वे भी कुछ नहीं कर सकतीं। पुरुष के ईक्षण से उनमें चचलता उपस्थित होती है, गुणाश्रय की साम्यावस्था टूट जाती है, वे चचल हो उठती हैं। पुरुष देख रहे हैं, भोग कर रहे हैं, इस सोहाग में ही रसमयी प्रकृति तत्र विचित्र लीलाभगी से विश्व को विकसित कर देती हैं। किन्तु जिस क्षण वे समझ लेती हैं, पुरुष और कुछ भी भोग नहीं कर रहे हैं, अभिमानिनी पलभर में ही अपने को सयत कर लेती हैं। उनकी सभी लीलाएं ही अन्तर्निहित हो जाती हैं, खेल बन्द हो जाता है। यह जो पुरुष को दिखाने के लिए उसको भोग कराने के लिए प्रकृति का विलास है इस भाव के मूल में मधुर भाव का इंगित विद्यमान है।

उपनिषद में द्वौ सुपर्णा का उपाख्यान है। एक वृक्षपर सख्यभाव से दो पक्षी रहते है। उनमें से एक कटु पिप्पल खाता है। दूसरा दर्शक मात्र है। दैवक्रम से यदि खानेवाला पक्षी बोल उठे मैं पिप्पल न खाऊँगा, मैं केवल दर्शक बना रहूँगा, तो वह अवस्था हो जाती है जिसकी तुलना कुछ अंशों में गोपी भाव के साथ की जा सकती है। भोक्ता का यह कार्य छोड़कर दर्शक की भूमिका ग्रहण करने में गोपीभाव का इंगित है।

एक और उपाख्यान है कि, गाँव में एक बाजीगर आया है, वह पुतली का खेल दिखाता है। उसकी प्रत्येक पुतली का सिर सूत से बँधा हुआ है। बाजीगर हाथ में सूत लेकर छिपा बैठा है और नचा रहा है। एक दिन दैवयत् सूत टूट गया और एक पुतली बाजीगर के पास आ

गिरी। तब यह बाजीगर से बार-बार कहने लगी, आप हमें नाच सिखाकर नचा रहे हैं। आप निश्चय ही नाच जानते हैं, अब आप नाचिये, हम देखेंगी। पुतलियाँ बन्धन-मुक्त हो गयीं। पुतलियाँ नाचती हैं बाजीगर के इंगित से। किन्तु सूत में बाँधकर नचाना नहीं पड़ता, बाजीगर के साथ ही नाचती हैं। इस रूपक में भी गोपीभाव का इंगित विद्यमान है।

श्रीभगवान ने कहा है—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

जो क्षर के अतीत हैं, अक्षर से उत्तम हैं, लोक में वेद में वे ही पुरुषोत्तम नाम से प्रथित हैं। फिर क्षर और अक्षर उसीमें प्रतिष्ठित हैं। इस पुरुषोत्तम के साथ मिलन ही जीवों का परम पुरुषार्थ है।

यही पुरुषोत्तम रसिकशेखर, परम कल्याणमय सच्चिदानन्द विग्रह हैं। जिनके भजन-स्तर के निर्देश में श्रीपाद मधुसूदन सरस्वती ने कहा है—

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्चरणस्य स्यात् साधनाभ्यास पाकतः॥

साधना के प्रथम सोपान पर बाहर साधक कहते हैं —"मैं उसका हूँ" "मैं तुम्हारा हूं" "इतर पूर्वं मनोबुद्धि देहधर्माधिकारतः" सब ही तुम्हारे पैरों में समर्पण कर चुका हूँ। तुम कृपापूर्वक मुझे अपना बना लो कितने ही जन्म-जन्मान्तरों के बीच से ले चलो। कितने ही मार्गों का चक्कर काट कर इस वृन्दावन प्रान्त में आने में समर्थ हुआ हू। मुझे तुम बुला लो।

द्वितीय सोपान में साधक कहते हैं—"वे मेरे हैं तुम मेरे हो।" मुझे पैरों से रौंद दो, असीम यातना दो, तो भी हे प्रभु, तुम मेरे हो, तुम मेरे ही हो।"

प्रथम भाव है तदीया रति, द्वितीय भाव है मदीया रति। यह मदीया रति ही व्रज का गोपी भाव है। मदीया रति की चरम और परम

परिणति में शक्तिमान ने शक्ति के सामने आत्म-समर्पण किया है। 'देहि पदपल्लवम्'' कह कर शरण ग्रहण की है। वैष्णवों का कहना है—गोपी भाव के बिना इस भजन की शृङ्गाररसोपासना का अधिकार उत्पन्न नहीं होता। बाहर और भीतर के मिलन का गोपीभाव ही मिलन की भूमि है। सन्धिनी शक्ति का रहना अर्थात् अस्तित्व इस शक्ति का भाव है। और सम्वित् या चित् या ज्ञानशक्ति का काम जान लेना है। कौन है और जान रहा है—संसार में इसका ही द्वन्द्व चल रहा है। द्वंद्व रहने से ही मिलन रहेगा। गोपीभाव ही मिलन की भूमि है

आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी—ये चार प्रकार के भक्त हैं। गोपी भाव एक अभिनव स्तर में उपस्थित हो गया है। गोपियाँ देख रही हैं—वृन्दावन में और कोई पुरुष नहीं है। उनकी दृष्टि में सुबल, मधुमंगल, नन्द उपानन्द सभी गोविन्द के सेवक हैं। वृन्दावन के मनुष्य पशु, पक्षी, कीट पतंग, तरुलता सभी एक ही के सुख के लिए उन्मुख हैं। एक को केन्द्र बना कर ही एक का मुख देख कर ही सभी अधिष्ठित हैं, जीवित हैं।

कविराज गोस्वामी कहते हैं—

आर एक अद्‌भुत गोपी भावेर स्वभाव।
बुद्धिर गोचर नहे याहार प्रभाव॥
गोपीगण करे यबे कृष्ण दरशन।
सुख वाञ्छा नाहि सुख हय कोटि गुण॥
गोपीर दर्शने कृष्णेर ये आनन्द हय।
ताहा हइते कोटि गुण कृष्ण आस्वादय॥
ता सवार नाहि निज सुख अनुरोध।
तथापि बाढ़िल सुख पड़िल विरोध॥
एइ विरोधेर एक देखि समाधान।
गोपिकार सुख कृष्ण सुखे पर्यवसान॥

गोपिका दर्शने कृष्णेर बाड़े प्रफुल्लता।
से माधुर्य बाड़े यार नाहिक समता॥
आमार दर्शने कृष्ण पाइल एत सुख।
एइ सुखे गोपीर प्रफुल्ला अङ्ग मुख॥
गोपी शोभा देखि कृष्णेर शोभा बाड़े यत।
कृष्ण शोभा देखि गोपीर शोभा बाड़े तत॥
एइ मत अन्य अन्ये पड़े हुड़ाहुड़ि।
अन्य अन्ये बाड़े सुख केह नाहि मुड़ि॥
किन्तु कृष्णेर सुख हय गोपी रूप गुणे।
तार सुखे सुख वृद्धि हय गोपीगणे॥
अतएव एइ सुख कृष्ण सुख पोषे।
एइ हेतु गोपी प्रेमे नाहि काम दोषे॥
आर एक गोपी प्रेमेर स्वाभाविक चिन।
ये प्रकारे हय प्रेम काम गन्ध हीन॥
गोपी प्रेम करे कृष्ण माधुर्ये पुष्टि।
माधुर्य बाड़ये प्रेमे हय महातुष्टि॥
प्रीति विषयानन्दे आश्रयानन्द।
ताहा नाहि निज सुख वाञ्छार सम्बन्ध॥
निरुपाधि प्रेम याहा ताहा एइ रीति।
प्रीति विषय सुखे आश्रयेर प्रीति॥
काम गन्ध हीन स्वाभाविक गोपी प्रेम।
निर्मल उज्ज्वल शुद्ध येन दग्ध हेम॥
कृष्णेर सहाय गुरु, बान्धव प्रेयसी।
गोपिका हयेन प्रिया, शिष्या, सखी दासी॥

प्रश्न—हम क्यों शृङ्गार रस की उपासना करें? उत्तर में वैष्णवगण कहते हैं—आनन्द लाभ का ऐसा पंथा और नहीं है। पार्थिव

आनन्दों में जिस प्रकार योषिदानन्द ही श्रेष्ठ है उसी तरह भगवद्भजन में यह मधुर भजन ही श्रेष्ठ है। यह आनन्द क्या वस्तु है यह कोई बता नहीं सकता, यह मुखास्वादनवत् है। यह अनुभवगम्य है। वैष्णव कवि कहते हैं—'यत यत रसिकजन—रस अनुगमन—अनुभव—काहु नपेख।' किसी ने तो उसे देखा नहीं है, किन्तु रसिक की अनुभूति ही जानती है कि रसास्वादन क्या वस्तु है। सत् चित् आनन्द के साथ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति की कुछ कुछ तुलना हो सकती है। मैं हूँ, विश्व है यही जाग्रत अवस्था है। मैं जान गया हूँ यही स्वप्न की अवस्था है। सोकर सपना देखता हूँ यह है सुषुप्ति—स्वप्न हीन है गाढ़ निद्रा। आनन्द की अवस्था समझाते समय बहुत से लोग इस सुषुप्ति का उदाहरण देते हैं। अवश्य ही इस गाढ़ी नींद में मैं अच्छी तरह सोया रहा—यह बोध रहता है। लौकिक आनन्द में उसी प्रकार मैं आनन्दित हुआ हूँ ऐसी एक अनुभूति रहती है। इसके बाद की अवस्था तुरीय नाम से पुकारी जाती है। उपनिषद ने ब्रह्मानन्द की उपमा देते समय सुषुप्ति आनन्द का उल्लेख किया है। सुषुप्ति में इन्द्रियों का और मन का कोई काम नहीं रहता। किन्तु वृत्ति रूप में आकरित न होने पर भी बुद्धि विद्यमान रहती है, निर्मल बुद्धि में चित् प्रतिबिम्ब स्फुरित होता है किन्तु बुद्धि तब भी मलिन सत्वप्रधाना रहती है। इस कारण वह तुरीयानन्द की अनुभूति नहीं पाती।

सत्यद्रष्टा ऋषि ब्रह्मानन्द की उपमा देते समय और कुछ भी न देख सके हैं। जितना भी पार्थक्य क्यों न हो फिर भी योषिदानन्द के साथ, शृंगार रस विलास के साथ ही उसे उन्होंने उपमित किया है। गोपियाँ भावानन्द से केवल बाह्य आभ्यन्तर विस्मृत हो गयी हैं यह बात नहीं, वे अन्तर बाहर को एक बनाकर कह रही हैं—भगवान, तुम आनन्दित होओ। मुझे भोग करो, मेरे पास जो कुछ भी है उसे लेकर तुम सुखी हो रहो। मुझमें आकर तुम उल्लसित हो रहो। मेरा कहने लायक तो कुछ भी नहीं है। तुमको लेकर ही मैं हूँ। इस कारण मुझमें तुम्हारा जो कुछ भी हो उसे तुम ग्रहण करो। हे रस स्वरूप, तुम्हारे जिस रस से

मैं राधिका हूँ यह रस तुम्हारे अतिरिक्त और किसको मैं दूँगी? हे जगदेकनायक, तुमको पाकर, तुम्हारी प्राप्ति से ही मुझे तुम सार्थक करो।*

अजगोपी और मीरांबाई

मीराबाई ने भागवत-जीवन लेकर जन्म ग्रहण किया था। मीरा ने शिशुकाल में एक दिन अपनी मां से कहा था—

माई म्हांने सुपने में परण गया जगदीश।
अंग अंग हल्दी मैं करी जो सूधे भीज्यो गात।
माई म्हांने सुपने में परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोट जहाँ जान पधारे दुलहा श्रीभगवान।
सुपने में तोरण बाँधियाजी, सुपनेमें आई जान।

मां, सपने में जगदीश ने मुझसे विवाह किया। अपने अंग अंग में मैंने हलदी लगायी थी। मां, सपने में दीनानाथ मुझसे विवाह कर गये हैं। वहां छप्पन करोड़ बराती आये थे। वहां मेरे प्रिय श्रीभगवान गये थे। सपने में तोरण बांधे गये थे। मेरे प्रभु सपने में आये थे।

बाल्यकाल की एक और घटना यह है कि, कुड़की के प्रासाद के समीप से बरातियों का एक दल ठाटबाट से जा रहा था। यह देखकर मीरा ने अपनी मा से पूछा—"मा, मेरा वर कौन होगा!" मा ने शिशु की बात सुनकर गृहदेवता गिरिधर गोपाल को दिखाकर कहा—यही ठाकुर जी तुम्हारे पति हैं। तभी से मीरा ने गाना आरम्भ किया—

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

गिरिधर गोपाल के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। जिनके सिर पर मोर मुकुट है वही मेरे पति हैं।

तभी से मीरा ने प्रियतम को पति रूप में मान कर उनकी पूजा करना

---

* श्री हरेकृष्ण मुखोपाध्यायकृत 'जयदेव और गीतगोविन्द' ग्रन्थ से संग्रहीत तथ्य।

आरम्भ किया। मीराबाई मधुर भाव से गिरिधरलाल की सेवा करती थीं, उनका भजन करती थीं, इसका इङ्गित मीराबाई और श्रीजीव गोस्वामी के मिलन और भगवद् प्रसंग में मिलता है। श्रीमन्महाप्रभु के अन्यतम पार्षद श्री जीवगोस्वामी १५३५ ई० में श्रीवृन्दावन में गये थे। मीराबाई प्रभु की लीलाभूमि दर्शन के निमित्त १५३६ ई० में श्रीवृन्दावन में जा पहुँचीं। व्रज में जाकर मीराँबाई कुंज-कुंज में प्रभु का जय गान गा कर भ्रमण करने लगीं। श्रीजीवगोस्वामी परम ज्ञानी भक्तराज थे। उनकी गुणावली और भजन की चर्चा श्रीवृन्दावन में सर्वत्र प्रचारित हुई थी। मीराबाई श्रीवृन्दावन मे जाकर ऐसे महात्मा का नाम सुन कर उनका दर्शन पाने के लिए आकुला हो गयी। किन्तु गोस्वामी प्रभु कठोर ब्रह्मचारी थे। नारीमुखदर्शन उनके लिए शास्त्रविरुद्ध था। इसलिए उन्होंने मीराबाई को दर्शन देने की अनिच्छा प्रकट की।

प्रियादासजी ने भक्तमाल ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में लिखा है—

वृन्दावन आई जीव गोसाई
जूसों मिलि झिली
तियामुख देखिबे को पनलै
छुटायो है।

वृन्दावन में आकर मीराबाई ने श्रीजीवगोस्वामी से मिलने की इच्छा प्रकट की तो जीवगोसाईं स्त्रीमुख न देखेंगे यह प्रतिज्ञा करके भाग गये। मीराबाई ने परम विज्ञ साधुमहात्मा गोस्वामी प्रभु के श्रीमुख से निकली ऐसी उक्ति सुनकर उत्तर दिया कि, अबतक भी गोस्वामी प्रभु को प्रकृति-पुरुष में भेद विद्यमान है। उनके समान ज्ञानी महात्माको तो समदर्शी होना उचित था। मीराबाई ने श्रीमद्भागवत की वाणी का उच्चारण किया—

वासुदेवः पुमानेकः स्त्रीमयमित रज्जगत्।

वासुदेव ही एक मात्र पुरुष हैं, इसके अतिरिक्त जगत् का सब कुछ

मीरा और एक पद में कह रही हैं:—

श्याम बिना जियड़ो मुरझावे।
जैसे जल बिन बेली॥
मीरा कूँ प्रभु दरशन दीज्यो।
जनम-जनम की चेली॥
दरशन बिन खड़ी दुहेली।

जैसे जल के बिना लता नहीं रह सकती, उसी तरह प्रभु के बिना कैसे जीवित रहूँ। हे मीरा के प्रभु दर्शन दो। मीरा तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर की दासी है।

मीरा ने *गिरिधरलाल* की उपासना पति रूप में मधुर भाव से की थी, यह बात मीराबाई और ऊदाबाई की आलोचना में विशेष रूप से परिस्फुट हुई है।

मीरा ऊदाबाई को कह रही हैं—

भाव भगत भूषण सजे, शील संतोष सिंगार।
ओढ़ी चूनर प्रेम की गिरिधर जी भरतार।
ऊदाबाई मन समझ, जावो अपने धाम।
राज पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम॥

भाव भक्ति ही मेरे भूषण हैं, शील संतोष मेरे अंग की शोभा है। प्रेम ही अंग का वसन है। गिरिधर जी मेरे स्वामी हैं। ऊदाबाई मन स्थिर करो। अपने धाम जाओ। तुम राजसुख भोग करो। उन सबकी मुझे आवश्यकता नहीं है।

अनुराग भक्ति प्रसंग में मीराबाई ने कहा है—

पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका।
अधबिच पड़ गयो झोल रे।

मैं पूर्वजन्म में गोपिका थी, अब मैं विरह दशा में पड़ी हूँ।

गोपी तत्व और मधुर भाव की उपासना का गम्भीर रहस्य मीराबाई सम्पूर्ण रूप से अनुभव करने में समर्थ हुई थीं, इसीलिए वे मानव देह

धारण करके ऐसे युग में भी साहस अवलम्बन पूर्वक स्वयं पूर्व जन्म में गोपिका थीं, यह बात साहस के साथ प्रकट करने में समर्थ हुईं। विषयी व्यक्ति के लिए यह दुरसाध्य ही है। किन्तु मधुर भाव की उपासक होकर गोपी तत्व सम्पूर्ण अनुभव करके प्रभु के निकट जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया उनके लिए ऐसी उक्ति अयौक्तिक नहीं है। मीराबाई मदीया रति की उपासिका थीं। जन्म काल से ही गिरिधर के सम्मुख देह-मन प्राण उत्सर्ग करके व्रजगोपियों की भाँति उन्होंने आत्मनिवदेन किया था। मीरा की किसी प्रार्थना में आत्मसुख की गन्ध मात्र भी नहीं है—सब ही प्रभु की तृप्ति के निमित्त है। व्रज-गोपियाँ जिस तरह क्षणभर के लिए प्राणनाथ को न देखने से व्याकुल हो पड़ती थीं, मीरा भी उसी तरह विरह-ज्वाला से जन्म-काल से ही दग्ध होती रहती थीं। "मीरा के प्रभु कबरि मिलोगे, दुख मेटण सुख देण"। अर्थात् 'हे मीरा के प्रभु कब मिलोगे और मेरी अन्तरज्वाला बुझाकर शान्ति प्रदान करोगे ?'—यही मीरा की दिनरात प्रार्थना थी।

शृंगार रस

श्रुति कहती है—"रसो वै स" अर्थात् सकल रसों के आकर या मूल या आदि एक मात्र श्रीभगवान् हैं। वे ही आदि रस हैं। इस रस की अधिष्ठात्री देवता श्रीकृष्ण हैं। आनन्द इस रस का विलास है। विश्व के मूल में यह आनन्द विद्यमान है। स्थिति में यह आनन्द रहता है। सृष्टि में और लय में यही आनन्द विद्यमान है।

आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभि सविशन्ति।
(ऐतरेय ३।३)

यह विश्व आनन्द से ही उत्पन्न है, आनन्द में ही जीवित रहता है और आनन्द में ही प्रवेश करके समता प्राप्त होती है। इस कारण विश्व के आदि मध्य अन्त में यह आदि रस ही विद्यमान है।

ही तो प्रकृति है। ब्रज में श्रीगिरिधरलाल के अतिरिक्त अन्य पुरुष विद्यमान हैं, यह बात मीरा श्रीजीवगोस्वामी से जान गयीं।
मीराबाई की अमृतमयी यह वाणी सुनकर—
श्रीजीव गोस्वामी का मोह टूट गया। श्री जीव गोस्वामी ने तो सोचा था वे ही परम ज्ञानी हैं। आज एक नारी ने उनका सपना तोड़ दिया। उन्होंने देवी स्वरूपिणी नारी से परम शिक्षा पाकर नवजीवन प्राप्त कर लिया। इसी स्थान में मीराबाई की जीवन साधना का परम तत्व है। मीराबाई ब्रज में एक मात्र श्रीब्रजचन्द्र को परम पुरुष रूप में देख रही हैं। और ब्रज के पशुपक्षी, तरुलता सभी प्रकृति रूप में प्रभु के सेवक हो गये हैं।

"मीराँबाई की पदावली" के ग्रन्थकार मीराबाई के सम्बन्ध में कहते हैं—मीराबाई का जीवन आदर्श ब्रजगोपी की तरह था। साधनपंथा गोपी भाव की थी। कहा जाता है कि वे स्वयं अपने को ललिता सखी के अवतार रूप में अनुभव करती थीं। नाभादास जी ने मीराबाई के सम्बन्ध में लिखा था—

सदारिस गोपिन प्रेमप्रकट, कलियुगहि दिखायो।
निरअंकुश अति रसिक, निडर जस रसना गायो।
भक्ति निशान बजाये, काहूँ ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल शृङ्खला तजि मीराँ गिरिधर भजी।

कलि युग में मीरा ने गोपी प्रेम प्रकट किया था, निर्भय निरंकुश हो कर रसिक (गिरिधर) का यशोगान गाया था। भक्ति ध्वज फहरा कर किसी की लज्जा न कर लोक लाज और कुल की शृंखला त्याग कर श्रीगिरिधर का भजन किया था।

"मीरा माधुरी" ग्रन्थ लेखक कहते हैं—"मीराबाई की भक्ति स्वभावज थी। वे स्वयं पूर्व जन्म में गोपी थीं। अपने उपास्य कृष्ण को उन्होंने पति भाव से भजन किया था।

"भक्त नामावली" प्रणेता ध्रुवदास जी ने लिखा है—

लाज छाँड़ि गिरिधर भजी करी न कछु कुल कानि।
सोइ मीरा जग विदित, प्रकट भक्ति की खानि ॥
ललिता हूँ लै बोलिकै तासों हो अति हेत।
आनन्दसों निरखत फिरै वृन्दावन रस खेत ॥

लज्जा छोड़ कर कुल की मर्यादा त्याग कर गिरिधर को भजा था, मीरा जगत विदित भक्ति की आधार थीं। ललिता सखी होकर आनन्द सागर में वृन्दावन-रस में डूब गयी थीं।

प्रभु के साथ मीराबाई का जो जन्म जन्मान्तरीन सम्बन्ध था उसका परिचय मीराबाई ने बहुत से पदों में व्यक्त किया है—

मैं गिरिधर के घर जाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुरानी उन बिन पल न रहाऊँ।

मैं गिरिधर के घर जाऊँगी। उनके साथ मेरा बहुत दिनों का प्रेम है। उनके बिना एक क्षण भी मुझसे रहा नहीं जाता।

"मीरा कूँ प्रभु दरशन दीज्यो,
पूरब जनम को कोल।"

प्रभो, पूर्व जन्म की प्रतिश्रुति के अनुसार तुम मीरा को दर्शन दो।

मीराबाई पूर्वजन्म में गोपी थीं। प्रभु विरहिणी गोपियों को पुनः मिलन के लिए प्रतिश्रुति की बात स्मरण करा रही हैं—

थाँने काँइ काँइ कह समझाऊँ।
म्हाँरा बाला गिरिधारी॥
पूर्व जन्म की प्रीति हमारी।
अब नहिं जात निवारी॥

हे प्राणवल्लभ, तुमको कैसे समझाऊँ, तुम्हारे साथ जो पूर्व जन्म का प्रीतिबन्धन था अब वह छिन्न नहीं किया जा सकता।

इस आनन्द में ही विश्व की सृष्टि है। इसके विलास के ही लिए रस-स्वरूप की कामना जाग्रत होती है। रस का सागर उमड़ उठता है, चंचल होता है। सत्य संकल्प भगवान् संकल्प करते हैं—"एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय"—मैं बहु हूँगा। इस विलास अर्थात् बहु होने के आनन्द में ही विश्व की सृष्टि है। आप ही आप विलास नहीं होता, बहु न हो सकने से विलास नहीं होता। फिर बहु होने पर भी शक्ति की आवश्यकता है, इसलिए उसका जो विलास या आनन्द है वह उनकी शक्ति को लेकर ही सम्पादित होता है। अनन्त शक्तिमान भगवान्की तीन शक्तियाँ हैं—बहिरङ्गा माया शक्ति, तटस्था की जीवशक्ति और अन्तरङ्ग स्वरूप शक्ति। यह स्वरूप शक्ति सत् चित् आनन्द रूप में परिचित है। इसी-लिए श्रुति कहती है—श्रीभगवान सच्चिदानन्द विग्रह हैं। श्रीभग-वान की स्वरूप शक्ति—सत् चित् आनन्द शक्ति, संधिनी, संम्वित और ह्लादिनी नाम से परिचित है। उनके सदंश में जो शक्ति—सन्धिनी शक्ति है, इसी शक्ति के विलास से वे सर्वव्यापी हैं। चित् अर्थात् संम्वित शक्ति के विलास से वे सर्वज्ञ अन्तर्यामी हैं, और आनन्दांश में जो शक्ति है वही है ह्लादिनी, इस शक्ति के विलास से वे विश्वानुरंजन-कारी आनन्द जनयिता हैं, सदंश में स्थिति या अस्तित्व समझा जाता है, वे हैं। चिदंशमें वे ज्ञानस्वरूप स्वप्रकाश हैं, इस विश्वको वे प्रकाशित कर रहे हैं अर्थात् विश्व में एक मात्र वे ही प्रकाशित हो रहे हैं। आन-न्दांशमें वे प्रिय हैं, विश्व में जो कुछ आनन्द है, उसीमें वे प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए इस विश्व में उनकी अपेक्षा प्रियतर और कुछ भी नहीं है। वे ही प्रियतम हैं। वे एकमात्र आनन्ददाता सर्व आनन्दों के आधार हैं।

चरितामृत में मिलता है—

> सच्चिदानन्द पूर्ण कृष्णेर स्वरूप।
> एकइ चिच्छक्ति ताँर धरे तिन रूप॥

कृष्ण का स्वरूप सच्चिदानन्द पूर्ण है। उनकी एक ही चिच्छक्ति

तीनरूप धारण करती है।

मनुष्य बहु होना चाहता है, यही उसकी अनादि काल की प्रकृति है, स्वाभाविक वृत्ति है। इसके दो अङ्ग हैं—दैवी और आसुरी। दैवी प्रकृति अपने को लुप्त करके अपर के हृदय में प्रतिष्ठित होकर बहु होना चाहती है। त्याग के पथ में, आत्म-सम्प्रसारण के पथ में ही उसकी गति है। असुर भी बहु होना चाहता है। किन्तु भोग के पथ में दूसरों का अधिकार छीन कर, संहार करके। वह समझता है कि जगत् में जो कुछ भी है। एक ही सुख के लिए है, भोग के लिए है। कंस रावण प्रभृति इसके प्रतीक हैं।

दैवीभाव। भीतरी अग है। यह पथ ज्ञान का पथ है। ऐश्वर्य का पथ है, इस पथ में बहु में अपने को देखना है, यही सम्वित् शक्ति का विलास है। अनुरक्त प्रणयी दम्पती जिस प्रकार परस्पर परस्पर में विलीन कर देना चाहते हैं, इस पथ का पथिक उसी प्रकार माया के रूप में न डूबकर मायाने जिसकी विभूति में अपने को प्रकाशित कर दिया है उसी श्रीकृष्ण को सर्वत्र देख पाता है। वह समझ सकता है वह स्वयं प्रकाश ही विश्व को प्रकाशित कर रहे हैं। जैसे वे है इसीलिए विश्व है, उसी प्रकार 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' उनके प्रकाश से ही जगत् का प्रकाश है। इस पथ में अग्रसर होने पर मनुष्य समझ सकता है श्रीभगवान के बहु होने में एक और अग है। वही है श्रीधाम वृन्दावन और वृन्दावन स्थित रासमण्डल। एक तरफ हैं कोटि कोटि ब्रह्माण्ड, दूसरी तरफ है शतकोटि गोपियों के साथ विलास, एक है बाहर, दूसरा है अन्तर। मनुष्य को बाहर से अन्तर जाकर स्थान बना लेना होगा।

मनुष्य में दो प्रकृतियां हैं। एक बाहर की तरफ खींचती है और एक भीतर की तरफ लौटा लाना चाहती है। दो को मिलाकर एक को भजना पड़ेगा।

"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।" अविद्या द्वारा उत्तीर्ण

होकर विद्याद्वारा अमृत लाभ करने से ही रस स्वरूप की उपासना में अधिकार मिलता है। किन्तु विद्या अविद्या के अतीत वे हैं। इसलिए दोनों के अतीत न होने से उनका दर्शन नहीं होता।

जीव भगवान की तटस्था शक्ति है, उनकी ही प्रकृति है। श्रीभगवान ने कहा है—भूमि, जल, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकृतियोंके अतिरिक्त मेरी एक और परा प्रकृति है। उसी जीव-भूता प्रकृति के द्वारा ही मैं यह जगत् धारण किये हूँ।

काम और मोक्ष

भोग की अनुभूति ही काम है। भगवत् स्वरूप में आत्मविलय का नाम मोक्ष है। वैष्णवों ने मोक्षचिन्ता को "कैतव धर्म" कहकर उनकी निन्दा की है। क्योंकि "सोऽहं" चिन्ता मोक्षपद का मूल मंत्र है। वही चिन्ता वैष्णवों के लिए अपराधजनक है। मोक्ष चिन्ता में जगत् का स्थान नहीं है। जिस जीवप्रवाह की सहायता से भगवान् जगत् धारण किये हुए हैं उसे मोक्षपथी बन्द कर देना चाहते हैं। मायिक अनुभूति बाहर की भगवदानुभूति अमायिक होने पर भी योगमाया की सहायता के बिना, यह सम्पन्न नहीं होती। माया को आयत्त में लाकर उसके अपर पार में खड़े होकर ही उसे अनुभूति का आस्वाद मिलता है। यह भीतर और बाहर हो जानेपर, दोनों की अनुभूति एकत्र मिल जाने से जो उपलब्धि होती है वही है "शृंगार रस।"

शृंगाररस की अनुभूति न होने पर प्रकृति भाव से उपासना का अधिकार उत्पन्न नहीं होता। मीराँबाई भीतर और बाहर को अपनी साधना द्वारा एक बनाकर पूर्णरसका आस्वाद ग्रहण करने में समर्थ हुई थीं। इस युग में गोपीभाव की उपासना की जाग्रत प्रतीक हैं मीराँबाई। मीराँबाई की जीवन-साधना के प्रत्येक स्तर की पर्यालोचना करने से यह अस्पष्ट समझा जा सकता है कि वे किस प्रकार पूर्णानन्द की अधिकारिणी थीं।

वैष्णव—चार सम्प्रदाय

युग के प्रयोजन के विचार से सनातन वैष्णव धर्म को साधना की रुचि के अनुसार चार सम्प्रदायों में विभाजित किया गया है । पद्मपुराण में लिखा है—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः ।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ॥
श्री ब्रह्म रुद्र सनका वैष्णवा क्षिति पावनाः ।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात् ॥

सम्प्रदाय विहीन मन्त्र जपने से कोई फल नहीं होता । इस कारण कलिकाल में चार सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ । जगत् की पवित्रता के सम्पादनकारी विष्णुभक्त-श्रीब्रह्म-रुद्र-सनक हैं । ये चार सम्प्रदाय कलियुग में उत्कल देश में भगवान श्रीकृष्ण से अथवा पुरुषोत्तम क्षेत्र से आविर्भूत हुए हैं ।

वैष्णव चार सम्प्रदायों के आचार्यगण दक्षिण भारत में आविर्भूत हुए थे । जान पड़ता है उस समय पद्म पुराण में लिखित उत्कल देश सम्पूर्ण दक्षिण भारत तक विस्तृत था ।

आचार्य चतुष्टय के नाम

रामानुजं श्री स्वी चक्र मध्वाचार्य चतुर्मुखः ।
श्रीविष्णु स्वामिन रुद्रो निम्बादित्य चतु सन ॥ (पद्मपुराण)

उक्त चार सम्प्रदायों में विष्णु शक्ति लक्ष्मीदेवी ने रामानुज को, ब्रह्मा ने मध्वाचार्य को, रुद्रने श्रीविष्णुस्वामी को और चतु सन अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ने निम्बार्क को सम्प्रदाय प्रवर्तक रूप में स्वीकार किया है । देवाचार्यकृत भाष्य में लिखा है—

विष्णुस्वामी प्रथमतो निम्बादित्य द्वितीयकः ।
मध्वाचार्य स्तृतीयस्तु तुर्यो रामानुज स्मृत ॥

इस उक्ति के अनुसार प्रथम विष्णुस्वामी, द्वितीय निम्बार्क, मध्वाचार्य तृतीय और रामानुज चतुर्थ हैं ।

"भक्तचरित्र" ग्रन्थ लेखक श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी कहते हैं—

उपरोक्त प्रमाण यथार्थ नहीं है। मध्वाचार्य त्रयोदश शताब्दी के प्रारम्भ में, रामानुजाचार्य द्वादशशताब्दी में और निम्बार्काचार्य इनके पूर्ववर्ती हैं। (विष्णुस्वामी का उल्लेख नहीं किया है)

संख्या	दैवी आचार्य	लौकिक आचार्य		सम्प्रदाय का नाम	साध्यसार	सिद्धान्त	इष्ट
		नाम	समय				
१	महादेव	विष्णु स्वामी — वल्लभाचार्य	अष्टम विक्रम शताब्दी	रुद्र	वात्सल्य	शुद्धाद्वैत	बाल कृष्ण
२	लक्ष्मी	रामानुजाचार्य	एकादश विक्रम शताब्दी	श्री	दास्य	विशिष्टाद्वैत	लक्ष्मी नारायण
३	सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार	निम्नादित्य निम्बार्काचार्य	द्वादश विक्रम शताब्दी	हंस	सख्य	द्वैताद्वैत	राधा कृष्ण
४	ब्रह्मा	मध्वाचार्य श्रीकृष्ण चैतन्य	त्रयोदश विक्रम शताब्दी	ब्रह्म	माधुर्य	द्वैत अचिन्त्य भेदाभेद	राधा कृष्ण

मीराबाई का भक्ति-रहस्य

कर्म और ज्ञानयोग के बाद भक्तियोग है। कर्म, ज्ञान, भक्ति प्रत्येक के साथ अंगागी भाव से योगायोग है, साधक इनमें से एक ही को लेकर सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते। कर्म और ज्ञानयोग का साधन पूर्ण होने से भक्तियोग का अधिकारी हो सकते हैं। पूर्ण भक्तिमार्गी को भी कर्म और ज्ञान योग से सम्बन्ध रखना पड़ता है।

मीराबाई ने उपनिषदों के रहस्यवाद को अतिक्रम करके प्रार्थना की थी—"चित्त से चित्त लगाओ, अग से अग मिलाओ।" "प्रभु, चित्त में चित्त, अग में अग दिला दो।" यहाँ ब्रजगोपियों की तरह प्रार्थना है। इसके बाद मीराबाई की साधनपद्धति में मिलता है—

कबहुँ प्रकट कबहुँ मानस पूजा।
तजि हरिभजन काज नहिं दूजा॥

कभी साक्षात् भाव से कभी मानस से प्रभु की पूजा होती है। हरि के भजन के बिना कोई दूसरा काम नहीं है। जीवन क्या है?—उनको स्मरण करना। मृत्यु क्या है?—उनको भूल जाना। मीराबाई के प्रदर्शित पथ में मृत्यु नहीं है। क्योंकि प्रभु को भूलजाने का अवकाश नहीं। दिनरात साक्षात् भाव से अथवा मानस में उनकी ही पूजा या भजन है। दूसरा काम नहीं है। इस लिए आनन्द के बिना जीवन में क्या और कुछ रह सकता है? इस साधन पथ में शोक, दुःख, या रिपुजय का सग्राम कुछ भी नहीं है। है केवल भजनानन्द। श्रीगिरिधर नागर की सेवा में जीवन उत्सर्ग करके मीराबाई ने कर्म-ज्ञान भक्तियोग का पूर्ण सामंजस्य रक्खा था।

भक्ति-साधना में पूर्ण आत्मविश्वास रख कर मीरा साधन-पथ में अग्रसर हुई थीं। मीराबाई का विश्वास इष्ट के प्रति अटल था। इसी लिए तो वे तीव्र हलाहल चरणामृत रूप में पान करने में समर्थ हुई थीं,

मीराबाई रोगग्रस्त हुईं तो राणा ने उनकी चिकित्सा के लिए वैद्य भेज देना चाहा तो मीराबाई ने कहला भेजा कि, उनके वैद्य हैं श्रीगिरिधर और औषध है चरणामृत। पूर्णज्ञानी भक्त के बिना ऐसी अचल भक्ति किसमें हो सकती है! अतीत युग में भक्त प्रह्लाद के जीवन में ऐसी परीक्षा और अचला भक्ति का निदर्शन मिलता है। साधना के इतिहास में भक्ति की और भी ऐसी उपमाएं बहुत हैं।

मीराबाई के भक्ति-रहस्य का सार मर्म उनकी भजनावली में परिस्फुट हो गयी है। उनकी भजनावली में संक्षिप्त रूप में श्रीहरिचरण वन्दना श्रीतुलसी, यमुनाजी, शिव वन्दना, ऋतुवर्णन, लीला, अनुराग, उपदेश-भजन, आत्मनिवेदन, योगिनी रूप में आत्मनिवेदन, विश्वरूप दर्शन, विरह मिलन प्रभृतिरूप में वर्णित हुए हैं।

श्रीहरिकी चरण वन्दना

अधिकांश भारतीय प्राचीन साहित्यिकों ने, ग्रन्थकारों ने शास्त्रों के विधानानुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलमय श्रीगणेश-वन्दना की है। मीराबाई ने भी अपने इष्ट श्रीहरि की वन्दना की है।

मीराबाई ने गाया है—

मन रे परसि हरि के चरण,
सुभग शीतल—कोमल,
त्रिविध ज्वाला हरण।

दासि 'मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारण तरण॥

हे मन, श्रीहरि का चरण स्पर्श करो। वह चरण सुभग शीतल है। कमलवत् कोमल है, त्रिविध ज्वालाओं का विनाश-कर्ता है। हे गिरिधर लाल, मीरा तुम्हारी दासी है। तुम पापियों के त्राणकर्ता हो।

भक्त कवि गोविन्ददास ने भी इसी प्रकार श्रीहरि वन्दना की है—

भजहुँ रे मन नन्द नन्दन
अभय चरणारविन्द रे।
दुलह मानुष जनम सत संगे
तरह ए भव सिन्धु रे ॥
शीत आतप रात बरिखन
ए दिन यामिनी जागि रे।
विफले सेविनु कृपण दुरजन,
चपल सुख लव लागि रे॥
ए धन यौवन, पुत्र परिजन,
इथे कि आछे परतीति रे।
कमल दल जल जीवन टलमल।
भजहुँ हरिपद नित रे।
श्रवण कीर्तन स्मरण वन्दना,
पादसेवन दासी रे।
पूजन सखीजन, आत्म निवेदन।
गोविन्द दास अभिलाषी रे॥

मीरा और गोविन्ददास दोनों ने ही श्रीहरिचरणवन्दना की है। मीरा की आकुल प्रार्थना प्रभु के प्रति सीधे सादे रूप में है। गोविन्द दास ने जागतिक अवस्था, मानव जीवन का स्वरूप इत्यादि का वर्णन करके आत्म निवेदन किया है। मीरा ने एक मात्र श्रीहरि के चरण के बिना जागतिक और किसी विषय-वस्तु में मन नहीं लगाया है। 'कैसे हरि से मिलि जाय' कैसे श्रीहरि के साथ मिलन होता है, यही थी उनकी भावना। गोविन्द दास इस संसार में धन, यौवन, पुत्र परिजन सब को वृथा देख कर श्रीहरि की चरण सेवा में अभिलाषी हुए हैं।

गंगा-यमुना वन्दना

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन
सन्निधिं कुरु ।

जिस किसी भी स्थान में रह कर अर्चनादि काल में इन इन नदियों को आह्वान करते हैं । गंगा यमुना पवित्र नदियाँ हैं । श्रीभगवान ने यमुना यश में, यमुना पुलिन में नौका विलास में वंशीवादन, वस्त्रहरण आदि लीलाएं की थीं । गंगा पतित पावनी हैं । इस लिए भक्त के लिए दोनों ही अति प्रिय हैं ।

मीरा ने गाया है—

चलो मन गंगा जमना तीर ।
गंगा - जमना निरमल पाणी शीतल होत शरीर ।
वंसी बजावत गावत कान्हो संग लियाँ बलबीर ॥
मोर मुगट पीताम्बर सोहे कुंडल झलकत हीर ।
'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर चरण कँवल पै सिर ।

हे मन, गंगा-यमुना के किनारे चलो । गंगा-यमुना का जल, निर्मल है । उसके शरीर शीतल होता है । बलराम को साथ लेकर प्रभु कन्हैया ने वंशी बजाकर गान गाया था । वे पीताम्बरधारी हैं । उनके सिर पर मोर मुकुट हीरा की तरह झलकता है । मीरा के प्रभु गिरिधर-नागर हैं । उनने चरण कमल पर सिर झुकता है ।

मीराबाई के इष्ट श्रीगिरिधर होने पर भी उन्होंने सकीर्णता के बहुत ऊपर जा कर शिव की वन्दना की थी—

शिववन्दना

शिव मठ पर सोहै लाल ध्वजा ।
उत्तर शिखर पर गौरि विराजै,दक्षिण शिखर पर बमभोला ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हरि के चरण चित्त मोरा ॥

शिवके मठ के उपर लाल ध्वजा शोभा पा रही है। उत्तर शिखर पर गौरी विराजित हैं और दक्षिण शिखर पर बमभोला (शिव) है। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हैं। मीरा का चित्त श्रीहरि के चरण में लगा है।

यहां तुलनामूलक वर्णन है। शिव गौरी की अवस्था का वर्णन कर के मीरा का अपना चित्त इष्ट के श्रीचरण में लिप्त है, यही मीरा ने व्यक्त किया है।

ऋतुवर्णन

साधक, साहित्यिक, दार्शनिक सगीतज्ञ प्रकृति की लीला-क्रीड़ा में अपने को विलीन करके कर्मपथ में अग्रसर होते हैं। कालिदास, चण्डी दास, रवीन्द्रनाथ प्रमुख कवि भावुकों ने प्रकृति-राज्य में अपने को निमज्जित कर अपने अन्तर की भावधारा को व्यक्त किया था। देश विशेष में किसी ने वर्षा, शरत् वसन्त की प्राकृतिक लीला में तन्मय होकर ऋतु का रूप वर्णन किया है। किसी भावुक ने वर्षा की मेघ धारा के साथ नृत्य करते-करते मेघमल्लार गान गाया है। फिर किसी ने शारद-पूर्णिमा रात्रि की अपरूप शोभा देखकर अपने को भू न हो गये हैं। और कोई वसन्त की कोयल के कुहू पुकार से मस्त हो उठे हैं।

पूर्वबंग नदी प्रधान देश है वहां के सगीत-साहित्य में—नदी, नौका नदी की जलतरंगों का वर्णन विशेष रूप से है। भटियाली, सारीगान, जलधामाइल इत्यादि को देश की प्राकृतिक शोभा के अंश रूप में स्थान मिला है।

राजस्थान मरुस्थल है। मीराबाई की लीला-क्रीड़ा इसी राजस्थान में चली थी, पर यह ठीक ही है कि जीवन के अन्तिम भाग में उन्होंने द्वारका धाम में समय विताया था। जिन्होंने कभी मरुभूमि में भ्रमण किया है, वही लोग मरुभूमि की विचित्र का वर्णन कर सकते हैं। राजस्थान विशेषतः जोधपुर, बीकानेर अचल तप्तबालुकामय अनुर्वर क्षेत्र है। मीराबाई ने जोधपुर के मेड़ता और चित्तौड़गढ़

में रह कर साधन-भजन किया था। उस अंचल में वर्षा अति विरल है। कदाचित् वृष्टि होने पर आनन्द की सीमा नहीं रहती। इसी लिए वर्षा में प्रभु की आगमन-वार्ता सुनकर मीरा ने गान गाया है—

> सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
> महल चढ़ चढ़ जोऊँ मेरी सजनी,
> कब आवें महाराज।
> दादुर मोर पपइया बोले
> कोइल मधुरे साज।
> उमंग्यो इन्द्र चहूँ दिस बरसे
> दामिन छोड़ी लाज।
> धरती रूप नवा नवा धरिया
> इन्द्र मिलन के काज।
> मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
> बेग मिलो महाराज॥

प्रभु के आगमन की ध्वनि मैंने सुन ली है। हे मेरी सजनी! मैं राजमहल पर चढ़ कर अपने प्राणप्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी हुई हूँ। दादुर, मोर, पपीहा, कोयल ने मधुर कंठ से गान पकड़ लिया है। इन्द्र शोभित हुए हैं। विद्युत्राशि ने इन्द्र के साथ मिलने के लिए अपनी शोभा छोड़ दी है। धरणी ने नवीन शोभा धारण की है। मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तुम शीघ्र ही दर्शन दो प्रभो।

बंगदेश में विशेषत पूर्व बंग में वर्षा दीर्घ काल रहती है। इस कारण शरत् और वसन्तके आगमन से मन-प्राण आनन्द से नाच उठते हैं। राजस्थान ग्रीष्म प्रधान देश है। इसलिए वर्षा के आगमन से मीरा का मन प्राण नाच उठना स्वाभाविक था। वर्षा के बाद वसन्त का गान मीरों ने गाया है। वृन्दावनचन्द्र का होली उत्सव या फागोत्सव वसन्त में होता है। मीरा वसन्त के होली-उत्सव का गान गा रही हैं—

फागुन के दिन चार रे,
होरी खेल मना रे।
बिण करताल, पखावज बाजै,
अणहद की झनकार रे॥
बिनिसुर राग छतीसूं गावै,
रोम रोम रँग सार रे।
शील सतोस की केसर घोली
प्रेम प्रीत पिचकार रे॥

उड़त गुलाल लाल भयो अंबर
बरसत रंग अपार रे।
घट के सबपट खोल दिये हैं,
लोक लाज सब डार रे॥
होरी खेलि पीव घर आयें
सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर
चरण कँवल बलिहार रे॥

फाल्गुन के दिन क्षणकाल के लिए हैं। हे मन, होली खेलो। वीणा, करताल, पखावज बज कर अनाहत (प्रणव) ध्वनि झकृत हो रही है। छः राग छत्तीस रागिनियों के बिना प्रति लोम कूप से अनाहत ध्वनि ध्वनित हो रही है। शील, सन्तोष का अबीर घोलकर प्रेमप्रीति की पिचकारी लाग रही हूँ। लाल अबीर उड़कर सारा आकाश लाल हो उठा है। प्रभु के लिए हृदय-द्वार मैंने खोल दिया है। लोक लज्जा का भय अब क्या रहा? होली खेल रही हूँ। प्रिय मेरे घर में आ जायें। मैं प्यारे की हूँ। प्यारे तो मेरे हैं। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हैं। उनके चरण कमल की बलिहारी है।

वसन्त की लीला होती है। इस वसन्त में ही होली खेलने को आकर प्रभु के लिए हृदय-द्वार मीराँ ने खोल दिया था।

भक्त कवि विद्यापति वृन्दावन-लीला वर्णन के साथ ऋतु वर्णन कर रहे हैं—

मधुऋतु मधुकर पाँति।
मधुर कुसुम मधु माति॥
मधुर वृन्दावन माझ।
मधुर मधुर रसराज॥
मधुर युवती गण संग।
मधुर मधुर रस रंग॥
मधुर मादल रसाल।
मधुर मधुर करताल॥
मधुर नटन गति भंग।
मधुर निटनि नट रंग॥
मधुर मधुर रस गान।
मधुर विद्यापति भान॥

कवि ज्ञानदास ने भी वसन्त का गान गाया है—

मधु वने माधव दोलत रंगे।
व्रज वनिता फागु देई श्याम अगे।
कानु फागु देयल सुन्दरि अगे।
मुख मोड़ल धनि करि कत भंगे।
रतिजय रतिजय द्विजकुले गाय।
ज्ञानदास चित नयन जुड़ाय॥

अन्य कवियों या भावुकों के ऋतु-वर्णन और मीरा के ऋतु-वर्णन में पार्थक्य यह है कि अन्य कवियों या भावुकों ने ऋतु का वर्णन करते समय प्रकृति की शोभा का वर्णन कर आनन्द उपभोग किया है और मीरा

ने ऋतु-वर्णन के साथ अपने प्राण-प्रिय के साथ मिलन का आह्वान व्यक्त किया है। प्रियतम के साथ मिलकर आनन्द पाना ही मीरा के ऋतु वर्णन का उद्देश्य है। गोविन्ददास, ज्ञानदास प्रमुख वैष्णव कवियों ने श्रीवृन्दावनचन्द्र के साथ श्रीमती राधारानी की लीला का वर्णन कर आनन्द भोग किया है।

लीला

लीलामाधुर्य, प्रेम माधुर्य, वेणु-माधुर्य और रूपमाधुर्य ये गुण चतुष्टय एक स्वय रूप हैं। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त यह गुणराशि किसी अन्य विलास विग्रह में विद्यमान नहीं है। अखिल गुण पूर्णतम रूप में श्रीनन्दनन्दन में विराजित हैं।

भक्त प्रभु की लीला का वर्णन करके आनन्द पाता है। सांसारिक जीवों में देखा जाता है जननी अपनी सन्तान की गुणराशि दूसरों के सन्मुख वर्णन करते समय आनन्द से अधीर हो जाती हैं। उसी प्रकार स्त्री पति के गौरव से गौरविनी रहती है। केवल यही नहीं। हम जब अपने आत्मीय स्वजनों के गुणों की बात दूसरों के मुँह से सुनते हैं तब हमें कितना आनन्द होता है। भारत के बाहर पर्यटन में आने से जब कोई पूछता है आप क्या महात्मागांधी, रवीन्द्रनाथ के देश के मनुष्य हैं तब हमारे मन में कितना आनन्द होता है। ठीक उसी प्रकार हम अपने इष्ट का गुण गाकर सुनकर आनन्द उपभोग करते हैं। माता यशोदा गोपाल की लीला-क्रीड़ा की बात सुन कर आनन्द से अधीर हो जाती थीं। व्रजगोपियाँ अपने प्रियतम के गुणों का वर्णन सुनती थीं तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती थी। मीरा ने बाल्यकाल से प्रेम की लीला का वर्णन करके आनन्द का उपभोग किया है। ये लीलाएँ पर्यायक्रम से बतायी जा रही हैं।

बाल्य लीला

गोकुला मे वासी भले ही श्राए गोकुला के वासी।
गोकुल की नारि देखत, आनंद सुख रासी।
एक गावत, एक नांचत एक करत हांसी।
पीताम्बर फैंटा बांधे, अरगजा सुवासी।
गिरिधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ की दासी॥

गोकुलवासी श्रीकृष्ण को देखकर अधीर हो गये। आनन्द-सुख की राशिको गोकुल की नारियाँ देख रही हैं। प्रभु को देखकर कोई गा रही है, कोई हँस रही है। पीताम्बर किंकिणी बाँधकर सुगन्ध युक्त द्रव्यसमूह मे रंजित होकर लीला कर रही हैं। गिरिधर मेरे सुन्दर प्रियतम हैं, मीरा उनकी दासी है।

वंशीवादन लीला

भई हौं बावरी सुनिके बाँसुरी।
हरि बिनु कछु न सोहाय माई।
स्रवन सुनत मोरी सुधबुध बिसरी।
लगीरहत तामें मनकी गाँसुरी।
नेम धरम कौन कीनी मुरलिया।
कौन तिहारे पासुरी॥
'मीरा के प्रभु बस करलीने।
सप्त सुरन तानन की जाँसुरी॥

बाँसुरी सुनकर मैं बावरी हो गयी हू। माँ, हरि के बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। बासुरी की ध्वनि सुनकर मेरा सब ज्ञान लुप्त हो गया है। यह बाँसुरी ध्वनि मन प्राण को मोहित करनेवाली है। बाँसुरी ने मेरे सब धर्म कर्म को हरण कर लिया है। मैं कैसे उनको भूलकर रहूंगी! *मीरा के प्रभु गिरिधर नागर ने मुझे वश में कर लिया है।* सप्त सुरों (सप्तसुर षडज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम धैवत और

निषाद है जो संक्षेप में सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि कहलाते हैं।) की विभिन्न ध्वनियों ने मुझे आकर्षित कर लिया है।

सूरदास ने भी ऐसा ही गान गाया है—निरखन देखहु अंग अंग अब चतुराई की गाँस।

प्रभु का प्रति अंग निरीक्षण कर रही हूँ—यही है प्रभु का प्रेम-बन्धन।

मीराबाई की ही तरह मुसलमान वैष्णव कवि चाँद काजीने बंशी को लक्ष्य करके गाया है—

> बांशी बाजानो जानो ना।
> असमये बाजाओ बांशी पराण माने ना।
> यखन आमि बैसा थाकि गुरुजनार माझे।
> नाम धइरा बाजाओ बाशी आमि मइरि लाजे।
> ओपार हइते बाजाओ बाशी एपार हइते शुनि।
> अभागिया नारी हाम हे सौंतार नाहि जानि।
> ये झाड़ेर बांशेर बांशी से झाड़ेर लागी पांओ।
> डाले मूले उपाड़िया यमुनाय भासांओ॥
> चाँदकाजि बले बांशी शुने झुरे मरि।
> जीमू ना जीमू ना आमि ना देखिले हरि॥

तुम बाँसुरी बजाना नहीं जानते। असमय में बंशी बजाते हो। प्राण नहीं मानता। जब मैं गुरुजनों के बीच बैठी रहती हूँ तुम नाम लेकर वंशी बजाते हो और मैं लाज से मरने लगती हूँ। उस पार से वंशी बजाओ, मैं इसपार से सुनूँ। मैं अभागिनी नारी हूँ तैरना नहीं जानती। जिस झाड़ी की बाँसुरी में हूँ, उस झाड़ी के पैरों पर गिरती हूँ। डाल और जड़ समेत उखाड़कर जमुना में बहा दो। चाँद काजी कहते हैं। बाँसुरी सुनकर मैं सूखकर मर रहा हूं। मैं हरि को देखे बिना जी नहीं सकता, जी नहीं सकता।

प्रभु के लिए भक्त का प्राण सदा आकुल है। मीरा जिस तरह प्रभु के न देखने से आकुला है चांद सभी भी अन्त में यही कह रहे हैं। श्रीहरि के दर्शन के बिना उनकी प्राण रक्षा न होगी।

वस्त्र हरण लीला

आज अनारी ले गयो सारी,
बैठी कदम की डारी रे माय।
म्हारे गैल पड्यो गिरधारी,
हे माय आज अनारी लै गयो सारी॥
मैं जल जमुना भरन गयी थी,
आ गयो कृष्ण मुरारी रे माय।
लै गयो सारी अनारी म्हारी,
जल में ऊभी उघारी हे माय॥
सखी साजनि मोरि हँसत हैं
हँसि हँसि दे मोहिं गारी हे माय।
सास बुरी और ननद हठीली
लरि लरि दे मोहिं गारी हे माय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
चरन कमल की वारी हे माय॥

हे सखि, कृष्ण कन्हैया मेरी साड़ी ले कर कदम की डाली पर बैठा हुआ है। हे सखि, गिरिधारी ने आज पथ छेंक लिया है। मैं यमुना में जल भरने गयी थी कि उसी समय कृष्ण मुरारी आ गये। कन्हैया मेरी साड़ी ले गये है, मैं जल में खड़ी हूँ। मेरी सखियाँ मुझे इस अवस्था में देख कर हँस रही है। सास जी असन्तुष्ट हो गयी हैं, ननद मेरे साथ झगड़ा करने को उद्यत हो गयी हैं। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हैं। मैं चरण कमल की आश्रय प्रार्थी हूँ।

एकाग्रमन से सर्वस्व श्रीकृष्णको अर्पण न करने से प्रभु को पाया नहीं जा सकता मीरा ने स्वय कहा है—छाड़ि लोक लाज भय कुल की मरजादा"—लोक लज्जा भय कुल की मर्यादा सब ही त्याग चुकी है। वस्त्रहरण लीला भक्त की परीक्षा है। देह-मन-प्राण अर्पण करने से फिर लज्जा किस बात की ? मीरा लज्जा के अतीत होकर श्रीगिरिधर के चरण-कमल की आश्रयप्रार्थी हुयी थी।

अनुराग

अनुराग के बिना प्रेम नहीं होता। फिर प्रेम के बिना प्रभु को पाया नहीं जाता। अनुराग का पूर्ण विकाश मीरा के भजनों में मिलता है। मीरा ने गाया है—

मैं अपने सैयां संग साँची।
अब काहे की लाज सजनी।
परगट ह्वै नाची।
दिवस भूख न चैन कबहूँ
नींद निसि नासी।
बेधि वारकी पार हो गयी,
ज्ञान गुण गाँसी ॥
कुल कुटुम्बी आन बैठे,
मनहु मधु माखी।
'दासि मीराँ' लाल गिरिधर,
मिटी जग हाँसी ॥

मैं प्रभु की प्रकृत संगिनी हूँ। अब किस लिए लज्जा अनुभव करूँगी ? हे प्रभु, अब मैं सब के सामने नाचूँगी। सारा दिन मुझे भूख नहीं लगती, कभी मुझे विश्राम की आवश्यकता नहीं पड़ती। मेरी नींद लुप्त हो गयी है। प्रेम के तीर ने मेरे हृदय का छिन्न कर दिया है। मधु मक्खियों

की तरह मेरे आत्मीय-स्वजन मुझे विष देते हैं । मीरा—गिरिधर लाल की दासी है । मैंने जगत्वासियों की निन्दा, अवहेला सबको तुच्छ बना दिया है ।

अनुराग के सम्बन्ध में मीरा ने एक और एक पद में गाया है—

श्रीगिरिधर आगे नाचूँगी ।
नाच नाच पिय रसिक रिझाऊँ,
प्रेमी जन को जाँचूँगी ।
प्रेम-प्रीति के बाँध घूँघरू,
सुरत की कछनी काछूँगी ।
लोक लाज, कुल की मरयादा,
यामें एक न राखूँगी ।
पिया के पलंगा जा पौढूँगी,
मीरा हरि रंग राचूँगी ॥

मैं श्रीगिरिधर के सामने नाचूँगी । नाच कर उनको संतुष्ट करूँगी । उनके प्रिय जनों को मैं प्यार करूँगी । प्रेम-प्रीति का घूँघरू और प्रभु का स्मरण रूप नूपुर होगा । लोकलाज, कुल की मर्यादा भी मैं न रक्खूँगी । अपने प्रियतम के पलंग के ऊपर जाकर मैं सो रहूँगी । मीरा अपनी आत्मा को श्रीहरि के रंग में रंग डालेगी अर्थात् हरिमय आत्मा हो जायगी ।

प्रभु के प्रति मीरा का कितना अनुराग था, उसका परिचय उनके आकुलतापूर्ण भजनों में मिलता है । सुलमान के प्रति बिन्दुमात्र भ्रूक्षेप न करके मीरा प्रभु की शरणागत हुई थीं । प्रभु ने गीता में कहा है —उनकी शरण में जाने से हृदय-ग्रन्थि छिन्न होती है । सभी संशय दूर होते हैं । इसी लिए मीरा कहती हैं—प्रेम के तीर ने (धनुर्बाण ने) उनके हृदय को छिन्न कर दिया है । प्रभु को आनन्द प्रदान करने के निमित्त ही नाच नाच कर उनको उन्होंने सन्तुष्ट किया था । नाम जपते

जाते देह अवश हो जाने से प्रभु की कृपा मिलती है। तब 'अहं' भाव का चिन्ह मात्र भी नहीं रहता। उनके चरणों में सम्पूर्ण रूपसे डूब जाने से आत्मा हरिमय हो जाती है। वैष्णव रसिक-जन ने कहा है—

'जिनका अन्त करण कृष्ण की भावनाओं से ओतप्रोत रहता है वे ही रसतत्व से कृष्णभक्त हैं।'

आत्म-समर्पण

श्रीभगवान ने कहा है— 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।' जागतिक सर्व वृत्तियों को त्याग कर मेरी शरण में आ जाओ। 'अह' बोध का विन्दुमात्र शेष रहने पर भगवद्दर्शन नहीं होता, इसलिए अह रूपी जीवात्मा प्रभु को समर्पण कर देना होगा। अपना कर्तृत्व रहने स साधन जीवन विडम्बनापूर्ण होता है। साधारण दृष्टि से देखा जाता है कि हम जिस राष्ट्र के अधिवासी होते हैं उस राष्ट्र के प्रति पूर्ण आनुगत्य न रहने से राष्ट्रद्रोही रूप में परिचित होना पड़ता है। इसके फलस्वरूप दण्ड ग्रहण करना पड़ता है। इस कारण प्रभु के प्रति सम्पूर्ण आनुगत्य न रहने उनकी कृपादृष्टि कैसे होगी? व्रजगोपियों ने अपना कहने के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। देह-मन प्राण निजस्व कहलाने के लिए जो कुछ भी उनके पास था, सर्वस्व उन्होंने प्रभु को अर्पण कर दिया था।

मीराबाई के साधन-जीवन की आलोचना करने से दिखाई पड़ता है कि व्रजगोपियों की ही भांति उन्होंने देह मन प्राण यथासर्वस्व श्रीगिरिधर चरण में समर्पित कर दिया था। मीराबाई ने गाया है—

हरि विन कूँण गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी।
आदि अन्त निज नाँव तेरो हिया, में फेरी।
बेर बेर पुकारि कहूँ प्रभु आरति है तेरी।
यो संसार विकार सागर बीच में घेरी।

नाव पाटी प्रभु पाल बांधो बूड़त है बेरी।
विरहिणि पिव की बाट जोवै राखिल्यो नेरी।
दासि मीरा राम रटत है, मैं शरण हूँ तेरी॥

हरि, तुम्हारे बिना मेरी कौन गति है! तुम मेरे प्रतिपालक हो—मैं तुम्हारी दासी हूँ। आदि अन्त में अपनी हृदय-तरणी में तुमको ढूँढ़ रही हूँ। बार बार ऊँचे स्वर से कह रही हूँ— प्रभो, मैं विरह कातरा अबला हूँ। मैं इस मायामय संसार में घूमती हुई चक्कर लगा रही हूँ। हे प्रभो, जीवन-तरणी जीर्ण हो गयी है। तुम कर्णधार रूप में पाल को पकड़ लो, नहीं तो यह नौका डूब जायगी। यह विरहिणी तुम्हारे ही लिए जीवित है। अपने पास इसे उठा रक्खो। यह तुम्हारी मीरा तुम्हारा नाम जप रही है। यह तो तुम्हारी शरण प्रार्थिनी है।

एक और पद में मीरा गा रही हैं—

राग-रामकेली

अब तो निभायाँ बनेगी,
बांह गहे की लाज।
समरथ सरण तुम्हारी सइयाँ,
सरब सुधारण काज।
भवसागर संसार अपरबल,
जामें तुम हो जहाज।
निर धाँरा आधार जगत गुरु,
तुम बिन होय अकाज॥
जुग जुग भीर हरी भक्तन की,
दीन्हीं मोच्छ समाज।
मीरा सरण :: गही चरणन की,
लाज रखो महाराज॥

एक बार जब कि तुमने आश्रय देकर मुझे ग्रहण किया है तब, मुझे बचाना ही पड़ेगा। हे महाशरण, मैं तुम्हारे आश्रय की प्रार्थना करती हूँ। मेरी सभी प्रार्थनाएं पूर्ण करें। यह भवसागर अत्यन्त भीषण है। तुम उसमें आश्रय तरणी हो। आश्रयहीन के आश्रय हो' जगत के गुरु हो, तुम्हारी कृपा के बिना यह संसार सब मिथ्या है। युग-युग से बराबर ही तुम भक्तों का दुःख दूर करते आ रहे हो। तुम सबके उद्धार-कर्ता हो, तुम्हारे चरणों में मीरा ने शरण ली है। हे महाराज, मीरा के सम्मान की रक्षा करो।

मीरा ने बारबार प्रार्थना की है—'सरण हूँ तेरी।' सरण गही चरणन की।' 'तुम्हारी शरण ले चुकी हूँ, तुम्हारे चरणों में आश्रय लिया है'। इन सभी प्रार्थनाओं में आत्म-समर्पण-योग पूर्णतम रूप से व्यक्त हुआ है। मीरा अपना यथासर्वस्व श्रीहरि के पाद-पद्मों में अर्पण कर सकी थी, इसीलिए प्रभु ने उनको गोद में उठा लिया था

योगिनी रूप में आत्म समर्पण

श्रीभगवान ने कहा है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा
धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग
उच्यते॥

सिद्धि और असिद्धि में अविचलित अर्थात् समभावापन्न होकर अर्थात् फलाकांक्षा और कर्तृत्वाभिमान त्याग कर कर्म करो।

इस भगवद्वाणी में योग-रहस्य विद्यमान है। समत्व अर्थात् समता को योग कहते हैं। यह साम्यावस्था अवर्णनीय है—यह अनुभवनीय मात्र है।

विरह ज्वाला में दग्ध होकर प्रभु के साथ मिलन होने की आशा से मीरा ने कितने प्रकारों से प्रभु के सम्मुख आत्मसमर्पण किया था। प्रभु को योगिराज बनाकर महादेव ने श्रीकृष्ण के दर्शन-मानस से गोपी वेश धारण किया था। श्रीधाम वृन्दावन में अब भी गोपीश्वर शिव विद्यमान हैं। रासमण्डल में पुरुषों को जाने का अधिकार नहीं था। इसी लिए महादेव ने गोपीवेश धारण किया था। मीरा ने योगिनी होकर गाया था—

जोगिया ने कहियो रे आदेस।
आऊँगी, मैं नाहि रहूँ रे, कर ज्टाधारी भेस।
चीर को फाड़ूँ कंथा पहिरूँ, लेऊँगी उपदेस।
गिणते गिणते घिस गई रे, मेरी उंगलियों की रेख।
मुद्रा माला भेष लूँ रे, खप्पर लेऊँ हाथ।
जोगिन होय जग ढूँढसूँ रे, सांवलिया के साथ।
प्राण हमारो वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड़।
मात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़।
पाँच पचीसो बस किये मेरा पल्ला पकड़े न कोय।
'मीरा' व्याकुल विरहिणी कोई आन मिलावै मोय।

योगिया को (श्रीकृष्ण को) यह समाचार देना—मैं अब वहाँ नहीं रहती। जटाधारी वेश धारण करके मैं आऊँगी। वस्त्र त्यागकर कंथा पहिन कर उपदेश दूँगी। गिनते गिनते हाथों की रेखा निश्चिह्न हो गयी है अर्थात् इष्ट मन्त्र जपते जपते मुद्रा मैंने त्याग दी है, परन्तु हाथ की रेखा निश्चिन्ह हो गयी है। मुद्रा अर्थात् योगी के कानों में पहिनने का आभरण पहिनकर योगिनी बनूँगी। हाथ में भिक्षापात्र ले लूँगी। योगी होकर योगसाधना करके साँवलिया का संग करूँगी। मेरा प्राण वहाँ (प्रभु के पास) रहता है। यहाँ शरीर मात्र है। मैंने इन्द्रियों को

वश में कर लिया है—मेरा सन्धान अब किसे मिलेगा। मीरा व्याकुल है—विरहिणी को प्रभु के साथ मिला दो।

वैष्णव पदावली में ज्ञानदास ने भी ऐसा गाया है—

मुडाब माथार केश, धरिब योगिनीर वेश
यदि सेई पिया ना आइल।
ए हेन यौवन परश रतन काचेर समान भेल।
गेरुआ वसन अङ्गे ते परिब शंखेर कुण्डल परि।
यगिनीर वेशे याब सेइ देशे
येखाने निठुर हरि॥
मथुरा नगरे प्रति घरे घरे खुजिब
योगिनी हये।
यदि रुखे केउ त्यजिब ए जिउ
नारी वध दिब तारे।
पुनः भाविं मने बान्धिब केमने
श्याम बँधुया हाते।
बान्धिया केमने धरिब पराणे
ताई भावितेछि चिते॥
ज्ञानदास कहे विनय वचने,
शुन बिनोदिनी राधा।
मथुरा नगरे येते माना करे
दारुण कुलेर बाधा॥

अर्थात्—यदि वह प्रिय नहीं आता तो मैं अपने सिर के केश मुँड़वा दूँगी, योगिनी का वेश धारण करूँगी। ऐसा यह यौवन जो स्पर्श-मणि सदृश था, काँच के समान होगया। मैं शंख के कुण्डल पहन कर गेरुआ वस्त्र अपने अंगों में पहनूँगी। योगिनी के वेश में उस देश में जाऊँगी

जहाँ वह निष्ठुर हरि रहते हैं। मथुरा नगर में प्रति घर में योगिनी होकर ढूँढ़ती फिरूँगी। यदि कोई रोकेगा तो यह प्राण त्याग दूँगी और उसको नारी वध का पाप लगाऊँगी। पुनः मन में सोचती हूँ कि श्यामबन्धु को हाथ से कैसे बांधूँगी। बांधकर मैं कैसे प्राण में धारण करूँगी, यही चित्त में सोच रही हूँ। ज्ञानदास विनययुक्त वचनों से कहते हैं—हे विनोदिनी राधा, सुनो। कुल की दारुण बाधा मुझे मथुरा नगर में जाने को मना कर रही है।

प्रभु के दर्शन के लिए मीरा ने यथिक भाव से कितने ही रूपों को धारण करना चाहा था। उनका हृदय तो अन्य जगत् में था। केवल पंचभूतों से बनी यह देह इस जगत् में पड़ी हुई थी। बाह्यिक साज-सज्जा सम्पूर्ण रूप में अवास्तविक थी। मीरा की प्रकृत वासना सांवलिया के दर्शन लाभ की थी। इसी लिए उन्होंने विभिन्न उपाय अवलम्बन किये थे।

मीरा ने फिर गाया है—

जोगी मत जा, मत जा, मत जा,
पांव परूँ मैं चेरी तेरी हौं,
जोगी मत जा, मत जा, मत जा।
अगर चँदण की चिता बनाऊँ,
अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी,
अपने अंग लगा जा।
'मीरा' कहै प्रभु गिरिधर नागर,
जोत में जोत मिला जा।

जोगी मत जाओ मत जाओ मत जाओ। तुम्हारे पैरों पर गिरती हूं। मैं तुम्हारी दासी हूँ। जोगी मत जाओ मत जाओ। प्रेम-भक्ति का पथ अत्यन्त दुर्गम है। किस पथ से जाऊँ बता दो। अगुरु चन्दन

की चिता सजाकर (प्रेम की चिता) अपने हाथ से जला दो। मेरी यह देह के भस्मस्तूप में परिणत हो जाने पर अपने अंगों में उसे मल देना, मीरा कहती हैं—हे प्रभु गिरिधर नागर, अपनी ज्योति में ज्योति मिला दो।

उपनिषद के ऋषि ने कहा है—क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तद् कवयो वदन्ति।' वह पथ अर्थात् भागवत पथ क्षुर की भांति तेज दुर्गम है। मीरा ने साधन-जीवन में उसे अनुभव करके अन्त में जड़ देह का अवसान लाकर प्रभु की ज्योति में विलीन होने की प्रार्थना की थी।

मीरा ने योगिनी रूप में जिस इष्ट मंत्र का ध्यान किया था उसका परिचय एक भजन में मिलता है।

मैंने सारा जंगल ढूँढा रे, जोगीड़ा न पाया।
कान बीच कुण्डल जोगी, गले बीच सेली,
घर घर अलख जगया रे।
अगर चँदन की जोगी धूणी धरवाई अँगबीच,
भभूत लगाया रे।
बाई मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
शबद का ध्यान लगाया रे।

इस पद में मीरा की साधना के गुह्य रहस्य का इंगित विद्यमान है। प्रथम तो मीरा ने प्रभु के लिए विश्व ब्रह्माण्ड अन्वेषण किया है। इष्टमंत्र पाने के बाद मंत्रजप के साथ इष्ट का ध्यान करना पड़ता है। इस प्रकार जप और ध्यान करने से जप क्रमशः अजपा में परिणत होगा। इसके बाद विविध बहानों से विविध वेशों में प्रभु दर्शन देते हैं। किसी के इष्ट कृष्ण हैं, पर कालीमाई दर्शन देती हैं। इस प्रकार किसी की इष्ट काली हैं, किन्तु कृष्ण शिवरूप में आ पहुँचते हैं। यहीं भक्त की परीक्षा होती है। प्रभु कितने रूपों में कितने प्रकार से दर्शन देते हैं यह बताना कठिन है। ऐसे दर्शनादि साधना के पथ में आनन्दलाभ की सामग्री हैं।

प्रकृत आनन्द प्राप्ति बहुत दूर रहती है। मीरा सर्वावस्था में प्रभु को पाने के लिए व्याकुल है। ऐसी व्याकुलता न आने से प्रभु का दर्शन मिलना कठिन है।

उपदेश-भजन

उपदेश भजनों में उपनिषदों का सार विद्यमान है। उपदेश भजन का अर्थ दूसरों को उपदेश देना नहीं है, नीतिमूलक भजन से अर्थ है। "मीरा माधुरीग्रन्थ" लेखक ने एक स्थान में लिखा है—"गोपियों ने भक्ति की एक निश्चय प्रेम-पद्धति प्रचलित की थी। और इस पद्धति से मीरा ने अपनी साधन-पद्धति निर्धारित की थी। मीरा ने किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होने का प्रयास नहीं किया अथवा किसी को इस साधन-पथ में आने का आह्वान नहीं किया।"

इसलिए उपदेश-भजन का अर्थ परवर्ती काल में साहित्यिकों द्वारा विन्यासकृत नीतिमूलक भजन कहा गया है।—

मीरा ने एक भजन में गाया है—

काम कुकुर लोभडोरि बांधि मोहि चण्डाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिलत गोपाल॥

जिस तरह चण्डाल कुत्ते को बांध कर ले जाता है उसी तरह काम लोभ ने हमारे मन को बांध रक्खा है। इसके अतिरिक्त क्रोध रूपी कसाई हमारे हृदय में रह कर सबको ध्वंस कर रहा है—कैसे गोपाल को पा सकूं गी। अर्थात् कैसे आत्म-दर्शन होगा।

मानव-जीवन के साधन में मीरा ने कहा है—

नहिं ऐस जनम बारबार।
क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुष अवतार॥

ऐसा मानव-जन्म बार बार नहीं मिलेगा। नहीं जानती कि किस कर्म के फल से मानव-जन्म मिला है। इसलिए प्रभु गिरिधर का भजन अवश्य करना चाहिये।

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—
"मानव देह ही श्रेष्ठ है।"
वैष्णव कवि चण्डीदास ने गाया है—

शुन हे मानुष भाई
सबार उपर मानुष सत्य
इहार उपर नाई।

हे मनुष्य भाई! सुनो। सबके ऊपर मनुष्य सत्य है—इसके ऊपर दूसरा नहीं है। यह सत्य है। किन्तु देहतत्व की आलोचना करने से देख पाते हैं कि, यह शरीर असार वस्तुओं की समष्टि के अतिरिक्त और क्या है? शरीर यदि उत्तम होता तो मल, मूत्र, श्लेष्मा आदि इसके आधार क्यों होते? इस अवस्था में भी हम मल मूत्रादि जघन्य वस्तुओं को यत्नपूर्वक धारण करते हैं। किन्तु जिस क्षण प्राण शरीर से निकला कि उसी क्षण यह शरीर घृणित वस्तु में परिणत हो जाता है। हम किसी प्रकार भी इन वस्तुओं को ग्रहण नहीं कर सकते।

एक और विषय ध्यान देने योग्य है। घटना ऐसी है—एक थे परम रूपवान पुरुष और एक थीं परम रूपवती नारी। उनके दर्शन के लिए सभी आकांक्षा रखते थे। सभी एक दृष्टि से ताकते रहते थे कब उनको देखेंगे। हठात् दोनों के ही शरीर में दुष्ट व्रण दिखाई पड़ा। बहुत चिकित्सा होने पर भी वे आरोग्य लाभ न कर सके। सर्वदा व्रणों से पीब रक्त निकलता रहता था। इस दुरारोग्य व्याधि का समाचार सर्वत्र प्रचारित हो गया। रूपवान पुरुष और रूपवती नारी में अविच्छिन्न प्रीति थी, प्रणय था। एक दूसरे को न देख कर एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। किन्तु क्रमशः उनमें घृणा का भाव उपस्थित हुआ। जो लोग इस नरनारी का दर्शन करके नयन सार्थक करते थे। वे लोग भी इस व्याधि के समाचार से उनके प्रति दृष्टिपात नहीं करते थे। जो रूप लावण्य मानव के नयन युगल को आनन्द प्रदान करते थे, आज उसके

सम्पूर्ण विपरीत हो गये। इस कारण विचारपूर्वक देखने से यह जाना जाता है कि, पार्थिव घृणा, सौंदर्य, प्रेम ये सभी श्रवास्तव हैं। प्रकृत सौन्दर्य प्रेम है, जो प्रेममय के पास है। मनुष्य ही श्रेष्ठ है यह हम कैसे समझें? पशुपक्षी आदि जीव तक भी प्रकृति के नियमों के अनुसार काम-वृत्ति चरितार्थ करते हैं। मनुष्य कामान्ध होने पर प्रकृति के नियम स्थल अस्थल का विचार क्या करता है? हाँ, किन्तु मनुष्य गण्य और श्रेष्ठ है इसमें युक्ति भी विद्यमान है। पशु पक्षी आदि जीवों में स्नेह, ममता, सुख दुःख की अनुभूति रहने पर भी वे हरि भजन या आत्मानुभूति नहीं कर सकते। जागतिक दृष्टि में आज विज्ञान का जो चरम उत्कर्ष हो गया है। उसके मूल में मनुष्य ही है। मनुष्य मनुष्य का उपकार कर सकता है। क्लेश मोचन कर सकता है। फिर ध्वंस करने की क्षमता भी मनुष्य में है। एकमात्र मनुष्य ही सोच सकता है—मेरी उत्पत्ति क्यों है परिणति कहाँ है, जीवन की सार्थकता कैसे सम्भव है? यदि साधन-भजन करूँ तो आत्मा का स्वरूप क्या है यह क्या मैं अनुभव कर सकता हूँ? इस क्षणभंगुर जघन्य आधार में पूर्ण देहलाभ की सार्थकता क्या है? आहार, निद्रा, सन्तान-सन्तति लाभ ही क्या जीवन का धर्म है इत्यादि प्रश्न केवल मनुष्य के मन में ही उपस्थित होते हैं? मनुष्य ही साधना द्वारा इन प्रश्नों की मीमांसा कर सकता है। साधना द्वारा श्रीहरि के दर्शन या पूर्णानन्द का अधिकारी वह हो सकता है। साधन-भजन न करने से जीवन में नरक यंत्रणा भोग के बिना और क्या हो सकता है?

लख रे चौरासी फेरा फिरोगे,
जीव जन्मी जन्मी मरे।

चौरासी लाख योनियों में जन्म जन्मान्तरों में भ्रमण करना पड़ेगा इसीलिए बंगला भजन में गाया है।

कृष्णनाम राधानाम बड़इ मधुर।
ये जन कृष्ण भजे से बड़ चतुर॥

कृष्णनाम राधानाम बहुत ही मधुर है। जो कृष्ण को भजता है वह बहुत चतुर है। कृष्णनाम आवृत्ति करते-करते मायिक दशा दूर होती रहेगी। जीव क्रमश स्वरुप लाभ कृष्ण सेवारसामृत भोग करने में समर्थ होगा।

मीराबाई ने गाया है—

भजन भरोसे अविनाशी,
मैं तो भजन भरोसे अविनाशी।
जप तप तीर्थ कछुए ना जाणूँ,
करत में उदासी रे।
मत्र न तत्र कछुए न जाणूँ
वेद पढयो न गइ काशी।
मीरा क प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल की हूँ दासी॥

हे प्रभो, केवल भजन भरोसे ही जीवित हूँ। मैं जप, तप, तीर्थयात्रा कुछ भी नहीं जानती। हे प्रभो, मुझे उदासी अर्थात् अनासक्त करो। मंत्र तत्र मैं कुछ भी नहीं जानती। वेद पाठ के लिए काशी भी नहीं गयी। हे मीरा के प्रभु गिरिधरनागर, मैं तुम्हारे चरण-कमल की दासी हूँ।

म-त्र-त-त्र व्रत तप, तीर्थयात्रा सब अविद्या हैं। एकमात्र प्रभु ही परम विद्या हैं या परम आश्रय हैं यह जानकर ही मीरा ने प्रभु के चरण कमल की आश्रय याचना की है।

विराग-ज्ञान-भक्ति

विराग ज्ञान-भक्ति के पूर्ण अधिकारी न होने से भक्त साधना के पथ में अग्रसर नहीं हो सकते। साधन पथ में भक्ति के इन तीनों गुणों की ही आवश्यकता है। विराग का अर्थ है जागतिक विषय-वस्तु में सम्पूर्ण रूप से अनासक्त हो जाना। साधक के लिए राजैश्वर्य और मिट्टी का टुकड़ा एक ही वस्तु है। रामकृष्ण परमहंसदेव कहा करते थे कि रुपया

मिट्टी है, मिट्टी रुपया है। इस प्रकार दुःख सुख भी वाह्यिक व्यापार मात्र है।

मीराबाई बाल्यकाल से सभी बातों में अनासक्त थीं। वे राजरानी होकर भी भिखारिणी बन गयी थीं। उनकी ननद ऊदाबाई ने एक दिन कहा था।

तुम मोतियों का हार पहनो, रत्नखचित अलंकार धारण करो।

मीराबाई ने उत्तर दिया था सद्भाव और सन्तोष ही मेरे अंगों के अलंकार हैं।

मीराबाई ने वैराग्य के सम्बन्ध में गाया है—

बाला (लाला) मैं वैरागण हूँगी।
जिन भेषाँ म्हाँरो साहिब रीझे,
सोई भेष धरूँगी।
सील संतोष धरूँ घट भीतर,
समता पकड़ रहूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये,
ताको ध्यान धरूँगी।
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा,
मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ,
चरणन लिपट रहूँगी।
या तन को मैं करूँ कींगरी,
रसना नाम कहूँगी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
सदा संग रहूँगी॥

हे प्यारे, मैं वैरागिन हूँगी। जो वेश धारण करने से मेरे प्रियतम सन्तुष्ट होंगे मैं वही वेश धारण करूँगी। शीलता और सन्तोष हृदय में

धारण करूँगी और समता पकड़े रहूँगी। जिनका नाम निरंजन है उनका ध्यान करूँगी। अपने मनरूपी वसन को श्रीगुरु के दिये हुए नाम से रंगकर उत्तम मनको सन्निविष्ट करूंगी। प्रेम प्रीति का संगीत गाकर प्रभु के चरणों में लिप्त होऊँगी। अपने देहाधार को यन्त्र बनाकर प्रभु का भजन गाऊँगी। मीराके प्रभु गिरिधरनागर हैं। दिनरात प्रभुके साथ रहूँगी

संसार-बन्धन छिन्न करके प्रभु की सेवा में आत्मनियोग करने के लिए मीराने प्रार्थना की थी। जिस प्रकार चलने से प्रियतम सन्तुष्ट हों, मीरा ने उसी प्रकार जीवन यापन किया था। व्रजगोपियों को प्रभु को सन्तुष्ट करने के अतिरिक्त और कोई कर्म नहीं था।

मीरा ने भी व्रजगोपियों की भाँति सम्पूर्णरूप से अनासक्त रहकर प्रभु को प्रसन्न रखने के लिए उनकी सेवा पूजा में जीवन बिताया था।

कर्मयोग के बाद ज्ञानयोग आता है। ज्ञान से विज्ञान का उद्भव होता है। विज्ञान से प्रेम होता है। ज्ञान का अर्थ विद्या है। विद्या का धर्म आत्मानुसन्धान है। आत्मानुसन्धान का मूल मंत्र आत्मानं विद्धि है। प्रभु को न जान सकने से ज्ञान अज्ञान ही रह जाता है। प्रभु को जान लेने की विद्या ही परा विद्या है। अन्यथा वही विद्या अविद्या है। मीराबाई ज्ञानार्थिनी थीं। प्रभु को जान लेने की आकुल आकांक्षा बाल्य काल से ही उनके हृदय में जाग उठी थी। इसलिए पूर्ण ज्ञानी होकर मीरा श्रीकृष्ण सेवा में निरत थीं।

श्रीकृष्ण के प्रति जो कर्तव्य है वही भक्ति या सेवा है। भक्ति के फल से कृष्ण प्रेम मिलता है।

भक्ति की गाढ़ अवस्था ही प्रेम है। इस लिए भक्ति ही साधन है—भक्ति ही साध्य है। कृष्ण प्रेम पाने का एकमात्र अभिधेय शुद्धा भक्ति है। हृदय में शुद्धाभक्ति का संचार होने से पाप प्रवृत्ति स्वयं ही विलुप्त हो जाती है। भक्तिप्लुत हृदय में पाप कभी नहीं स्थान पाता। भक्त प्रभु के सान्निध्य के अतिरिक्त और कुछ भी कामना नहीं करते।

अन्य कोई कामना न रहने के कारण परमानन्द में सदा मग्न रहते हैं। भक्ति त्रिविध है—साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेमभक्ति। साध्यभावापन्न जो प्रेमभक्ति है उसे जिस समय तक बद्ध जीवों की इन्द्रियों के द्वारा साधन किया जाता है उस समय तक उस भक्ति को साधन भक्ति कहते हैं। प्रेमभक्ति स्वरूपशक्ति की वृत्ति विशेष है।

मीराबाई ने भावभक्ति के लिए प्रार्थना की थी—

मैंने चाकर राखो जी,
चाकरी में दर्शन पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भावभगति जागीरी पाऊँ तीनो बातां सरसी॥

प्रभो, मुझे चाकर रखो। चाकरी में तुम्हारे दर्शन प्रति दिन पाऊँगी। दिन रात तुम्हारी स्मृति का स्मरण रहेगा, वही मेरे लिए प्रति दिन का खर्च स्वरूप होगा। भाव-भक्ति जमींदारी रूप मे पाऊँगी—ये तीनो बातें ही मेरे लिए उत्तम हैं।

फिर भक्ति लाभ होने से ही प्रेम हो जायगा, इसीलिए मीरा ने प्रार्थना की थी—

आधीरात में दरशन दी-हें प्रेम नदी के तीरा, प्रभु ने मध्यरात्रि में प्रेमनदी के किनारे दर्शन दिया।

श्रीमन्महाप्रभुने प्रार्थना की थी—

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवतादभक्तिरहेतुकी त्वयि। जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति अहेतुकी भक्ति होवे। गोस्वामी तुलसीदास की प्रार्थना में मिलता है—

बार बार वर मागहुँ हरषि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपायिनी, भक्ति सदा सतसग॥

हे प्रभु, बार बार वर माँगता हूँ। सदा अपने पद-सरोजों में श्रद्धाभक्ति और सत्-सग प्रदान करो। इस भक्ति का फल क्या होगा—

मीरा के प्रभु मिलया है यही भगति की रीति। इस भक्ति के विधान

से मीरा को प्रभु के दर्शन मिले । इसके अतिरिक्त भक्ति के फल से परव्योम में विभु सच्चिदानन्द विग्रह की साक्षात् सेवा प्राप्त होती है ।

विश्वरूपम्दर्शन

अर्जुन श्रीभगवान का विश्वरूप देखकर कहते हैं—

पश्यामि देवास्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूत विशेष संघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ
मृषींश्च सर्वांनुरगाश्च दिव्यान् ।
अनेक वाहूदर वक्त्रनेत्र
पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्त रूपम् ।
नान्त न मध्य न पुनस्तवादि
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।
त्वमक्षर परमं वेदितव्य
त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम्
त्वमव्यय शाश्वत धर्म गोप्ता
सनातनस्त्व पुरुषो मतो मे ।।

अर्जुन ने इस प्रकार प्रभु का विश्वरूप दर्शन किया था । मीराबाई ने विश्वरूप दर्शन के सम्बन्ध में गाया है—

कोई न जाणे हरिया, तारी गति कोई ना जाणे ।
मिट्ठी खात मुख देखा जशोदा, चौदह भुवन भरिया ।
पड़ो पाताल काली नाग नाथ्यो सुर ने शशी हरिया ।
डूबत ब्रज राख लियो है कर गोवर्धन धरिया ।।
मीरा क प्रभु गिरिधर नागर, शरणे आयो सो तरिया ।।

श्रीहरिको कोई नहीं जानता । उनकी लीला भी कोई नहीं जानता—शिशुकाल में जब उन्होंने मिट्टी खायी थी, तब माता यशोदाने उनके मुख की तरफ देख कर चौदह भुवन अर्थात् विश्वरूप दर्शन किया था ।

कालीनाग उनके भय से पाताल चला गया। सूर्यवंशी उनसे डर गये। जब ब्रजधाम डूबने लगा था तब गोवर्धन धारण करके उन्होंने ब्रजको बचा लिया। हे मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, मैं तुम्हारी शरण की प्रार्थिनी हूँ, मुझे त्राण करो।

महामाया और योगमाया है। महामाया जागतिक विषयासक्ति की बन्धन है। योगमाया में प्रभु का दर्शन पाकर भी विस्मृति उत्पन्न होती है। माता यशोदा ने गोपाल के मुख में ग्रह नक्षत्र चतुर्दश भुवन देखे, यहाँ तक कि अपनी प्रतिमूर्ति भी देखी। माता यशोदा को विश्वरूप दर्शन मिला किन्तु दूसरे क्षण ही महामाया के प्रभाव से प्रभावान्वित होकर वे सब भूल गयीं। तब वे वह यशोदा रहीं और उनकी सन्तान गोपाल रहे। योगमाया के प्रभाव से विश्वरूप दर्शन हुआ और महामाया के प्रभाव से माया से आप्लुत होकर वे हुईं माता और रह गयी उनकी सन्तान।

अधिकार-भेद से कृष्णभक्त तीन प्रकार के होते हैं—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। जो सर्वभूतों में आत्मा के आत्मस्वरूप श्रीकृष्ण को देखते हैं और आत्मा के आत्मरूप में श्रीकृष्ण को देखते हैं और आत्मा के आत्मस्वरूप श्रीकृष्ण में सभी भूतों का देखते हैं।

"स्थावर जंगम देखे
ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय तार
इष्टदेव स्फूर्ति।"

स्थावर जंगम को देखते हुए भी उसकी मूर्ति को जो नहीं देखते सर्वत्र ही उसे इष्टदेव ही दिखाई पड़ते हैं।

इस लक्षण का जो उत्तराधिकारी है वेही उत्तमाधिकारी है, सिद्ध भक्त है। सिद्धों का लक्षण यह है कि वे अपने से करोड़ गुणा श्रीकृष्ण में प्रेम रखते हैं।

मीराबाई की जीवन-साधना से प्रतीत होता है कि वे उत्तमाधिकारी सिद्ध भक्त थीं। उन्होंने सर्वभूतों में यहाँ तक कि विष की प्याली तक में इष्ट को देखा था।

परमात्मीय

"तुमि मम प्रिय परमात्मीय
सदा येन मने राखि।"

प्रभु के निकट भक्त की यही प्रार्थना रहती है। उनको परमात्मीय न बना सकने से इष्ट की प्राप्ति नहीं होती। उनको परमात्मीय समझ कर दिन-रात उनका चिन्तन करना ही उनको पाने का श्रेष्ठ उपाय है। वे तो कृपा की तरणी लेकर भक्त को ग्रहण करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। भक्त उनको भिन्न समझकर दूर हटे रहेंगे तो वे कैसे कृपा करेंगे? उनको जितना ही अपना सोचा जायगा, वे उतने ही निकट आयेंगे—यह ध्रुव सत्य है।

एक कहानी है—एक थे प्रबल प्रतापशाली राजा। उनके विक्रम से देश काँपता रहता था। हरिदास उस राज्य का अधिवासी था। राजा का दर्शन करके उनसे मिलने की वासना बहुत दिनों से हरिदास पोषण करता आ रहा था। राजा का सगलाभ कर सकने से सब कष्ट दूर हो जायगा यही धारणा हरिदास की थी। राजा का दर्शन मिलने का सौभाग्य क्या सबको पाप्त होता है? तो भी राजदर्शन करना हरिदास के जीवन का संकल्प था।

राज-प्रासाद के प्रथम तोरण पर अस्त्रधारी द्वाररक्षक खड़ा था। अन्दर जाने की अनुमति किसी को भी नहीं थी। हरिदास दूर से ही द्वाररक्षक को देख कर डर गया। किन्तु उसके हृदय में राजदर्शन की प्रबलवासना थी। हरिदास प्रति दिन तोरण के सामने उपस्थित होकर द्वार-रक्षक को अभिवादन करने लगा। इस प्रकार कई दिनों तक चलता

रहा। धीरे-धीरे हरिदास द्वार-रक्षक का परिचित हो गया। एक दिन हरिदास ने लज्जा, भय त्यागकर अपने हृदय की वासना द्वार-रक्षक को बता दी। उन्होंने परम परिचित होने के कारण हरिदास को राजप्रासाद के अन्दर जाने की अनुमति दी। हरिदास प्रतिदिन ही आने लगा, अब प्रहरी की अनुमति की आवश्यकता नहीं रही। उसके लिए सर्वदा द्वार उन्मुक्त था। राज प्रासाद में अभ्यन्तर राज-दरबार था। राजा, मन्त्री और परिषद वर्ग सहित यथासमय दरबार में उपस्थित हो कर राजकार्य संचालन करते थे। हरिदास राजदरबार के सामने उपस्थित हो कर बहुत दूर से राजा को प्रणाम करने लगा। यही उसका नित्य का कर्म हो गया। प्रथम दिन बहुत दूर से हरिदास ने राजा को प्रणाम किया। अब ऐसी बात नहीं रही, एकदम राजदरबार में वह राजा के पास जा पहुँचा। पहले पहल राजा के पास जाने में उसे भय लगा था। अब ऐसी बात नहीं रही। एकदम राजा के दायें भाग में वह जाकर बैठ जाता। राजा के साथ उसकी आलाप-आलोचनाएं होती थीं। एक दिन हरिदास ठीक समय पर राजदरबार में नहीं गया तो राजा व्याकुल हो उठे। उसका समाचार जानने के लिए उन्होंने मनुष्य भेजा। हरिदास ने भी राजा को अति अपना बना लिया था, राजा के पास जा बैठता था, राजा उसको बहुत आदर-यत्न करते थे। राजा हरिदास के परम आत्मीय हो गये। हरिदास के संशय, लज्जा, भय सभी दूर हो गये। अब प्रेम के बन्धन से वह राजा के साथ बँध गया। यहाँ राजा भगवान और भक्त हरिदास रहे। उनको अति अपना न बना सकने से उनके दर्शन नहीं मिलते। उनके साथ जितना ही परिचय बढ़ता है, उतना ही दोनों में आत्मा का मिलन होता है। भेद-विभेद सब दूर होकर प्रेम का संचार होता है।

मीराबाई के जीवन में भी ऐसा संयोग हुआ था। शिशुकाल में गिरिधारी लाल को पाकर मीरा ने अपने हाथों से उनकी सेवा-पूजा

आरम्भ की। गिरिधारी लाल को स्नान कराना, भोग आरती चढ़ाना, सुलाना, सब ही वे- अपने हाथ से, करती थीं। उनको सुख पहुँचाने के लिए माला गूँथ देती थीं। उनके सामने नृत्य करती थीं। मीरा अपने हाथ से भोजन पकाकर पहले स्वयं- चखकर देख लेती थीं, व्यंजनादि में क्या नमक ठीक परिमाण में दिया गया है या नहीं? सुस्वादु हुआ है, नहीं तो प्रभु को कष्ट होगा। बाह्यतः देखने में यही प्रतीत होता है कि मीरा उच्छिष्ट करके प्रभु को भोग लगाती थीं। किन्तु प्रभु की तृप्ति के लिए मीरा क्षणमात्र के लिए भी इस पाप से नहीं डरती थीं। भागवत की कहानी इस प्रकार है—श्रीभगवान को एक बार सिर दर्द हुआ था। भक्त की पदधूलि के अतिरिक्त इस रोग की और कोई औषधि नहीं है। नारद भक्त की पदधूलि के लिए सर्वत्र भ्रमण करने लगे, परन्तु संग्रह न कर सके, अन्त में वे श्रीधाम में व्रजगोपियों के पास जा पहुँचे। वहाँ प्रभु की अस्वस्थता का समाचार सुनाकर पदधूलि के लिए उन्होंने प्रार्थना की। गोपियों ने आत्मनिवेदन से प्रभु का दुःख दूर करने के लिए पदधूलि प्रदान की। क्षण भरके लिए भी नहीं सोचा कि किसको पदधूलि दे रही हैं, वे तो हैं विश्वपति—सर्वेश्वर। व्रजगोपियों का एक मात्र लक्ष्य था —प्रभु का कष्ट दूर हो, पदधूलि देने के कारण कोटि नरक भोग करना पड़े, इसके लिए भी वे तैयार थीं, तो भी प्रभु को सुख हो। मीराबाई का भी लक्ष्य वैसा ही था। शुचि, अशुचि, उच्छिष्ट इन सब की तरफ मीरा की दृष्टि एकदम नहीं थी। केवल प्रभु को सन्तुष्ट करना ही उनका लक्ष्य था। जब विष का प्याला राणाजीने उनके पास भेजा था, उस समय उदाबाई ने खबर दे दी कि वह विष है, फिर भी मीरा के मन में ऐसी धारणा हुई थी—यह तो चरणामृत रूप में आया है। इस कारण तीव्र विष होने पर भी यह प्रभु का चरणामृत है। इसी लिए वे अम्लान मुँह से वह तीव्र विष पी गयी। प्रभु के प्रति दृढ़ विश्वास और भक्ति न रहने से क्या कोई जीवननाशक हलाहल पी सकता है? श्रीभगवान को परम आत्मीय बना सकने से ही उनका दर्शन मिलता है।

विरह

विरह क्या है ! कवि ने गाया है—

"कि यातना विषे बुझिबे से किसे,
कभु आशीविषे दंशे नि यारे।"

विष में कैसी यातना है इसे वह कैसे समझेगा जिसे कभी सर्प ने दंशन नहीं किया। इसी तरह *विरह-ज्वाला ने जिसको एक बार दंशन* नहीं किया हो वह विरह क्या वस्तु है इसे समझ न सकेगा। *लीलामय की लीला हृदयंगम करना कठिन बात है।* मैं दिन रात कठोर परिश्रम किसके लिए करता हूँ। अर्थ के निमित्त गभीर समुद्र में डुबकी लगाता हूँ। अन्धकारतम खानों में काम करने जाता हूँ। उत्तर मिलता है अपने और स्त्री-पुत्रादि परिजनों के लिए अन्न-वस्त्र जुटाने के लिए। कठोर परिश्रम करके दिन के समय में जब अपने घर लौट कर *पुत्र-परिजन का सहास्यवदन देखता हूँ तब भूल जाता हूँ सारे* दिन के परिश्रम की बात। कर्मक्षेत्र बहुत दूर है। इसीलिए कब घर लौटूँगा, इसी आशा में प्रियतमा सहधर्मिणी, पुत्र-कन्या सभी बैठे रहते हैं। ताकते रहते हैं। यही है स्नेह का बन्धन—यह महा-माया के इंगित से संचालित हो रहा है। ऐसा स्नेह का बन्धन न रहने से यह जगत् मरुस्थल हो जाता। अपनी सन्तान की रक्षा के लिए बादशाह बाबर ने भगवान से प्रार्थना की थी, पुत्र की व्याधि *उनके ही शरीर में आ जाय। पुत्र शीघ्र आरोग्य लाभ करे—प्रार्थना* पूरी हो गयी। यहाँ पुत्र-स्नेह का उज्वल दृष्टान्त है। ताजमहल के सामने खड़ा होने से ज्ञात हो जाता है कि मनुष्य मनुष्य को कितना प्यार कर सकता है। पति-पत्नी का स्नेह कितना होता है। यह जो ममता का बन्धन है, उसका अभाव होने से ही वह विरह में परिणत हो जाता है। *यह सांसारिक व्यवहार की बात है। ममता का बन्धन* एक तरफ रहता है, दूसरी तरफ विरह रहता है। इन दोनों के संगठन

से संसार परिचालित हो रहा है। यह है एक जगत् की बात। अन्य जगत् में भक्त ने अपने तन-मन प्राण एक के लिए समर्पण कर दिये हैं। उस प्रियतम से क्षण काल के लिए विच्छेद होने से विरह दिखाई देता है। इस विरह की मर्मवेदना सहन करना बहुत ही कठिन है। फिर विरह न होने से मिलन नहीं होता। सूफी कवि जायसी ने विरह के सम्बन्ध में कहा है—

प्रेमहिं माह विरह रस रसा।
मोम के घर मधु अमृत बसा॥

मोम अर्थात् मधुकोष में जैसे अमृत रूपी मधु छिपा रहता है वैसे ही प्रेम मे विरह संचित है।

साधना के प्रथम स्तर में हम देख पाते हैं, प्रभु प्राय ही नाना मूर्तियों में भक्त को दर्शन देते हैं। भक्त इससे सन्तुष्ट न होकर अपने प्रभु को देखना चाहते हैं। फिर यह भी देखते हैं कि प्रभु नाना रूपों में क्षण मात्र के लिए भक्तको दर्शन देकर अन्तर्हित हो जाते हैं। यह तो क्षण मात्र का दर्शन होता है, इससे भक्त सन्तुष्ट नहीं होते। प्रभु के दर्शन से भक्त के प्राणों में जो आघात लगता है—इसमें विरह का सम्पर्क विद्यमान है। विरह दशा को उत्तीर्ण न हो सकने से प्रभु का दर्शन पाना कठिन है। श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण गोपियों के अन्तरात्मा थे। केवल गोपियों के लिए नहीं, माता यशोदा गोपाल को एक क्षण न देखने पर व्याकुल हो जाती थीं। कृष्णचन्द्र को न देखने से ब्रजवासियों की विरह दशा उपस्थित होती थी। भक्तकवि गोविन्ददास इस विरह-दशा का वर्णन कर रहे हैं—

माधव तुहुँ से रहलि मधुपुर॥
ब्रजकुल आकुल दुकूल कलरव
कानु कानु करि झुर॥
यशोमती, नन्द, अंध सम बैठत

साद्री उठइ न पाय ॥
सखा गण धेनु धेनु गण विझरल
विझरल नगर बझाय ॥
कुसुम तेजिया अलि क्षितितले लुटइ
तरुगण मलिन समान ॥
शारी शुक मूक मयूरी ना नाचत
कोकिला ना करतहि गान ॥
विरहिनी विरह कि कहब माधव
दश दिग विरह हुताश ॥
सहजे यमुना जल अधिक अधिक भेल
कहत कि गोविन्द दास ॥

भक्तकवि गोविन्ददास के अतिरिक्त कृष्णकमल पदावली, विद्यापति चण्डीदास, ज्ञानदास, प्रभात महानन-पदावली रसकल्पवल्ली, उज्वल नीलमणि, हंस दूत, ललित माधव, आदि संस्कृत ग्रन्थों में विरह का सुन्दर वर्णन मिलता है। ये सभी विषय श्रीमद्भागवत, श्रीब्रह्मवैवर्त-पुराण, श्रीगर्गसंहिता, हरिवंश, गीतगोविन्द और श्रीकृष्णकर्णामृत प्रभृति ग्रन्थों में गोपीप्रेम वर्णन के साथ परिपूर्ण भाव से सम्बन्धयुक्त हैं। कालिदास के कुमारसम्भव और मेघदूत में विरह का रोमाञ्चकारी वर्णन मिलता है। मीराबाई की भजनावली के साथ उक्त ग्रन्थों का पूर्ण सामञ्जस्य विद्यमान है। उक्त ग्रन्थों से विरह का कुछ वर्णन किया जा रहा है—

हंसदूत

समीपे नीपाना त्रिचतुरदला हन्तगमिता।
त्वया माकन्दस्य प्रियसहचरी भावनियतिम्।
इयं सा वासन्ती गलदमलमाध्वी कपटली।
विषादमे गोपीरमण! रुदती रोदयति नः॥

हंसदूत द्वारा ललित सखी श्रीकृष्ण के पास यह समाचार भेजा रही हैं—

हे कृष्ण, कदम वृक्ष के समीपवर्ती माधवीलता तुम्हारे विरह में केवल तीन-चार पत्रविशिष्टा अर्थात् पत्रशून्य होती जा रही है। हे गोपी-रमण, तुम्हारी सहचरीका भाव धारण करके मधुधारा की छलना से तुम्हारे लिए रो रही है।

कृता कृष्टिक्रीड़ं किमपि तव रूपं मम सखी
सकृद-दृष्टा दूरादहित हित वोधोज्झितमतिः।
हताशेयं प्रेमानलमनुविशन्ती सरभसं
मतंगीवारमानं मुरहर मुहुर्दी हितवती ॥

हे श्यामसुन्दर, तुम्हारा रूप एक बार दूर से देख कर अपने हिताहित का विचार विसर्जन करके तुम्हारी लीला से मोहित हो कर मेरी प्राणप्यारी सखी ने तुमको सर्वस्व अर्पण कर दिया है। आज वह तुम्हारी प्रेम रूप अग्नि में बड़े उत्साह के साथ जलकर मर रही है। परन्तु अर्धमृत होकर बार-बार इसी में गिर रही है। मेरी सखी तुम्हारे विरह में जलकर मृत प्राय हो चुकी है।

ललित माधव

क्व नन्दकुल चन्द्रमाः क्व शिखि चन्द्रकालंकृतिः।
क्व मन्द मुरली रवः क्व नु सुरेन्द्र नीलद्युतिः ॥
क्व रास रस ताण्डवी क्व सखि जीव रक्षौषधि।
निधिर्मम सुहृत्तमः क्व वत हत हा धिग्विधिम् ॥

वह नन्दकुल-चन्द्रमा कहां हैं? वह मोर-मुकुटधारी कहां चले गये! हाय प्राणेश्वर! तुम्हारी मुरली के रव से कुरग-कुल मुग्धकारी निनाद कहाँ है! तुम मेरी जीवनौषधि हो। तुम आज कहाँ विराज रहे हो!

उज्ज्वलनीलमणि

दलति हृदय गाढोद्वेगं द्विधा नतु भिद्यते
वहति विकलः कायो मूर्च्छां न मुञ्चति चेतनां।
ज्वलयति तनुमन्तदाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितं ॥

श्याम सुन्दर के विरह में मेरा हृदय दग्ध होता जा रहा है किन्तु हृदय तो विदीर्ण नहीं होता। काया विकल ग्रस्त होकर मूर्च्छा प्राप्त हो रही है, किन्तु प्राण बाहर नहीं निकलता। हे विधाता, तुमने क्यों मुझे अर्धमृत बना रक्खा है? मुझे क्यों मृत्यु नहीं देते?

गीतगोविन्द

निन्दति चन्दनमिन्दु किरणमनुविन्दति खेदमधीरम्
व्याल निलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ॥
सा विरहे तव दीना माधव
मनसिज विशिख भयादिव भावनया त्वयि लीना ॥

हे माधव, तुम्हारे विरह से कन्दर्पबाण पीड़ित श्रीराधा अति दीन और दुःखी हैं। भीता मृगनयनी ध्यान योग द्वारा नेत्र उन्मीलन कर तुम्हारे साथ मिलन के लिए तैयार हो रही है। स्वभाव शीतलमय शरीर उनके लिए विष तुल्य है और चन्दन लेप प्रदाहकारी है।

मीराबाई की जीवन-साधना भजनावली में विरह-रस की प्रधानता है। लीला वर्णन, अनुराग, उपदेश, आत्म निवेदन प्रभृति प्रत्येक भजनावली में विरह-रस का इंगित विद्यमान है। मीराबाई ने जीवन के प्रति क्षेत्र में प्रति विषय में प्रभु का स्मरण, मनन, निदिध्यासन किया है। आश्चर्य यह है कि ऋतुवर्णन, फाग लीला प्रभृति में भी उन्होंने विरह का गान गाकर मिलन के लिए प्रार्थना की है। मीरा के

विरह का भजन अतीव हृदयग्राही और अन्तरस्पर्शी है। मीरा ने गाया है—

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज,
मैं अबला बल नायँ गुसाईं।
तुमहि मेरे सिरताज।
मैं गुण हीन गुण नायँ गुसाईं,
तुम समरथ महाराज।
थाँरी होय के किणरे जाऊँ,
तुमही हिवड़ारो साज।
मीरा के प्रभु और न कोई,
राखो अब के लाज॥

हे महाराज, मुझे छोड़कर मत जाना। मैं अबला हूँ। मुझमें बल नहीं है। तुम ही मेरे शिरोभूषण हो। मैं गुणहीन हूँ, मुझमें कोई बल नहीं है गोसाईं। तुम मेरे आश्रय हो। यह अधीना किसके पास जायगी। हे मीरा के प्रभु, मेरा कहलाने को और कोई नहीं है। मेरी लज्जा बचा लो।

बंगदेश के वैष्णव कवि ज्ञानदास ने ठीक ऐसा ही गाया है—

बधु हे, आर कि छाड़िया दिव।
ए बुक चिरिया येखाने प्राण,
सेखाने लुकाये थोव।
ओ चाँद बदन सदा निरखिव,
सुख ना चाहिब आध।
तोमा हेन निधि, मिलाइल विधि,
पूरिल मनेर साध।
प्रेम डोरे राखिब बाँधिया,
दुखानि चरणारविन्द।

केमा निते पारे माहार शकति,
पाजार काटिया सिंध।
हियार माझारे बाधने करि,
राखिते नाहिक ठाँई।
अबला पराणे हाराउ हाराउ बाधि,
पुँजिया पाइते नाइ।
अनेक यतने पाइया रतने,
राखिते नारिल कोले।
ताहे पाप चिन विधि बिडम्बित,
ज्ञानदास इहा ऽवले।

मीरा ने प्रभु के लिए व्याकुल होकर गाया है—

म्हाँरो जनम मरन को साथी,
थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है,
जाणत मेरी छाती।
ऊँची चढि चढि पथ निहारूँ,
रोय रोय अँखिया राती।
यो संसार सकल जग झूठो,
झूठा कुल रा न्याती।
दोउ कर जोड्याँ अरज करूँ छूँ,
सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो कुचाली,
ज्यूँ मदमांतो हाथी।
सत गुरु हाथ धर्यो सिर ऊपर,
आँकुस दै समुझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ

निरख निरख सुख पाती।

'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,

हरि चरणाँ चित राती।

प्रभो, तुम मेरे जीवन-मरण के साथी हो। तुमको एक पल भी भूलकर मैं रह नहीं सकती। तुमको न देखने से हृदय में जलन होती है। बहुत ऊंचाई पर चढ़ने के पथ की तरफ देखती और रोती हुई तुम्हारे लिए रात बिता देती हूँ। यह संसार सदा ही झूठा और अयथार्थ है। कुल का गौरव भी व्यर्थ है। हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ—यह मन तो प्रवञ्चक उन्मत्त हाथी की तरह है। सत्गुरु इष्ट मंत्र रूप अंकुश द्वारा मनको शासन करते हैं। पल पल में प्रभु का रूप निरीक्षण करती हूँ, इसमें आनन्द पाती हूँ। मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम्हारे चरण मेरे चित्त के आधार हो।

चण्डीदास ने भी ऐसा ही गाया है—

बँधु! कि आर बलिब आमि।
जनमे जनमे जीवने मरणे प्राणनाथ हइओ तुमि।
तोमार चरणे आमार पराणे, लागिल प्रेमर फाँसी।
सब समपिया एक मन हइया, निश्चय हइलाम दासी।
भाविया देखिलाम ए तिन भुवने, आर मोर केबाआछे।
राधे बलि केउ सुधाइते नाइ, दाँडाब काहार काछे।
एकुले ओकुले दुकुले गोकुले, आपन बलिया काय।
शीतल बलिया शरण लइलाम, ओ दुटी कमल पाय।
ना ठेलिह छले अबला एखेले, ए हय उचित तोर।
भाविया देखिनूँ प्राणनाथ बिने, गति येनाहिक मोर।
आखिर निमिषे यदि नाहि देखि, तबे से पराणे मरि।
चण्डीदास कहे परश रतन, गलाय गाँथिया परि।

पपीहे की ही तरह ज्योतिषी को भी लक्ष्य में रखकर वे प्रार्थना कर रही हैं—

> पढ़ो ने जोशी प्यारा, राम मिलन कब होशी।
> जो जोशी मोहें प्रभु मिले तो, हीरा जड़ाऊँ तेरी पोथी।
> जो जोशी मोहें प्रभु ना मिले तो झूठी पड़े तेरी पोथी।

हे ज्योतिषी, बता दो कब प्रभु के साथ मिलन होगा ! हाँ, यदि प्रभु के साथ मिलन करा सको तो मैं तुम्हारे ज्योतिषग्रन्थ को सोनेसे मढ़वा दूँगी। फिर यदि मिलन नहो तो तुम्हारा ग्रन्थ झूठा असार है यही घोषणा कर दूँगी। मीरा विरहिणी हैं। उनके सभी पदों में विरहरस विशेष भाव से परिस्फुट हो रहा है।

मिलन

विरहानल में सम्पूर्णरूप से दग्ध न होने से प्राण में मिलन की आकांक्षा नहीं जागती। मिलन की आकांक्षा में ही भक्त का आनन्द है। मिलन के बाद जो आनन्द होता है वह वर्णनातीत है। भक्त कभी मुक्ति की आशा नहीं करते। ब्रजगोपियाँ प्रभु को न देखने पर सब खोकर विरहानल में दग्ध हो जाती थीं। फिर प्रभु का दर्शन पाने से परमानन्द उपभोग करती थीं। यह आनन्द ही उनके जीवन की एक मात्र काम्य वस्तु था। मीरा बाई ब्रजगोपियों की तरह श्रीगिरिधारी लाल से नित्य दर्शन पाने के लिए दिन रात आकुल विनती करती रहती थीं। मीराबाई के प्रत्येक भजन में अन्तिम प्रार्थना यही है—

> बेगि मिलो, प्रभु अन्तरजामी।
> तुम बिन रह्यो न जाय॥

हे अन्तर्यामी, शीघ्र मुझसे मिलो। तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकती मीरा ने गाया है—

'मीरा के प्रभु हरि अविनाशी,
बेग मिलो सिर ताज ।'

अर्थात् हे मीरा के प्रभु अविनाशी हरि, शीघ्र आकर मिलो । तुम मेरे शिरोभूषण हो । इस प्रकार प्रायः सभी भजनों में ही मिलन की तीव्र आकांक्षा का भाव प्रकट हुआ है । मीराबाई के किसी भी भजन में मुक्ति की प्रार्थना नहीं मिलती, श्रीकृष्ण के साथ मिलकर पूर्णानन्द उपभोग करना ही मीरा के जीवन की अन्तिम प्रार्थना है । मिलन-लीला में मीरा ने गाया है ।—

आवत मोरी गलियन में गिरिधारी
मैं तो छुप गई लाज की मारी ।
कुसुमल पाग के सरिया जामा
ऊपर फूल हजारी ॥
मुकुट ऊपर छत्र विराजै
कुंडलकी छबि न्यारी ।
केसरी चीर दरयाई को लँगो
ऊपर अंगिया भारी ॥
आवते देखी किसन मुरारी
छुप गई राधा प्यारी ।
मौर मुकुट मनोहर सोहे
नयनों की छबि न्यारी ॥
गल मोतिन की माल बिराजै
चरण कमल बलिहारी ।
अभी राधा प्यारी अरज करत है
सुणजे किसन मुरारी ॥
"मीराँ" के प्रभु गिरिधर नागर
चरण कमल पर वारी ॥

हे बन्धु, मैं और क्या कहूं। जन्म जन्म में जीवनमरण में तुम मेरे प्राणनाथ होना। तुम्हारे चरणों में मेरे प्राणों में, प्रेम की फंसरी लग गयी है। अपना सब कुछ सौंप कर एक मन से, निश्चत ही मैं तुम्हारी दासी हो गयी। सोचकर मैंने देख लिया कि इन तीनों भुवनों में, मेरा और कौन है। राधे कह कर कोई भी पूछनेवाला नहीं है, किसके पास मैं खड़ी होऊँ, इस कुल में उस कुल में दोनों कुल में गोकुल में, अपना कहलाने वाला कौन है। शीतल समझ कर इन दोनों चरणकमलों में मैंने शरण ली है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि इस अबलाको छल द्वारा ठेल मत देना। मैंने सोचकर समझ लिया है कि प्राणनाथ के बिना मेरी और कोई गति नहीं है। एक पल के लिए भी यदि न देख पाती हूँ तो प्राणों से मरने लगती हूँ, चण्डीदास कहते हैं कि स्पर्शमणि गूँथ कर गले में पहन लेना चाहती हूँ।

विरह ज्वाला से दग्ध होकर प्रकृति के साथ कैसा व्यवहार किया था यह उनके एक एक भजन में मिलता है। प्रभु का दर्शन पाने के लिए पशुपक्षियों की सहायता माँगी थी। मीरा ने गाया है—

पपइया रे पिव की बाणी न बोल।
सुनि पावेली बिरहिणी रे, थारो रालेली पाँख मरोड़।
चोंच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूँण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै सु कूँण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेला आज।
चोंच मढाऊँ थारी सोवनी रे, तू मेरो सिरताज।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ रे, कागो तू ले जाय।
जाइ प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे, थाँरी विरहणि धान न खाय।
'मीरा' दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाय।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी तुम बिन रह्यो न जाय॥

अरे पपइया! तुम मेरे प्यारे की बात अब मत कहो। यदि यह विरहिणी फिर कभी तुम्हारी बातें सुनेगी तो तुम्हारी पंखों को मरोड़

देगी। केवल यही नहीं तुम्हारी चोंच में काला नमक डाल देगी। प्रिय तो मेरा है और मैं प्रिय का हूँ, तुम फिर कौन हो जो प्रिय की वाणी बोलते हो ? हाँ पपीहा, ठीक हो तो तुम्हारी वाणी अति मधुर है। यदि तुम प्रिय के साथ मिलन करा सको तो सुनो तुम्हारी चोंच सोने से मढवा दूँगी और तुम मेरे सिर के आभूषण हो जाओगे। मैं प्रिय के पास एक चिट्ठी लिख रही हूँ तुम उसको ले जाओ। और उनसे कह देना उनके विरह से इस विरहिणी ने आहार त्याग दिया है। मीरादासी उनके लिए व्याकुल है, दिनरात केवल पिय पिय जप रही है। हे अन्तर्यामी प्रभु, तुम शीघ्र आकर मिलो, तुम्हारे बिना तो मैं रह नहीं सकती।

मीराँ प्रिय की विरह-ज्वाला से कैसे जल रही हैं इस भजन में यह स्पष्ट व्यक्त हो गया है। अभिमान से वे पपीहा की भर्त्सना कर रही हैं। यहाँ सखी की मानलीला है। पपीहा के प्रति रुष्ट होकर उसको सजा देने की बात कह रही हैं। दूसरे क्षण फिर कह रही हैं—'प्रिय तो मेरा है, मैं तो प्रिय की हूँ। तुम फिर बीच में कौन हो ?" यहाँ पूर्ण अनुभूति का विकास हो गया है। पपीहा के प्रति रुष्ट होने से क्या होगा। जैसे भी हो सके मीरा प्रभु के साथ मिलन होने की आकांक्षा रखती हैं, इसीलिए पपीहा की आध्यता स्वीकार कर विनती के साथ कह रही हैं—यदि वह मिलन करा सके तो पुरस्कार स्वरूप उसकी चोंच को सोने से मढवा देंगी, पपीहा से दौत्य कार्य करने का अनुरोध कर रही हैं। प्रिय के विरह में मीरा आहार निद्रा त्याग रही हैं। दिनरात प्रिय का नाम ही जप रही हैं। यह नाम जपते जपते शरीर अशक्त होने से ही प्रभु का दर्शन मिलता है। प्रभु के विरह के कारण राधारानी की जो अवस्था हुई थी, मीरा की ठीक वही दशा उपस्थित हुई है। इसी लिए शीघ्र ही प्रभु के साथ मिलने के लिए मीरा की प्रार्थना है। प्रभु के बिना मीरा तो क्षण भर भी नहीं रह सकतीं।

गिरिधारी मेरी गली में आ रहा था, मैं तो लाज की मारी छिप गयी। प्रिय की कुसुमी रंग की पगड़ी है, केसरिया रंग का जामा है। उसके ऊपर हजार फूलों की माला रहती है। मुकुट के ऊपर छत्र विराज रहा है। कुण्डल का दृश्य अत्यन्त सुन्दर है। केसर रंग का वस्त्र है, उसके ऊपर बहुमूल्यवान भूषण है। उनको आते देख कर राधारानी छिप गयी। मोर-मुकुट अत्यन्त मनोहर रूप से शोभा पा रहा है। नेत्रों के दृश्य की क्या ही बहार है। गले में मोतियों की माला विराज रही है। चरण कमल की बलिहारी है। हे प्राणप्रिय राधाकान्त, मैं प्रार्थना कर रही हूँ। हे कृष्ण मुरारी, मेरी प्रार्थना सुनो। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर तुम्हारे चरण कमल में आश्रय लेती हूँ।

प्रभु कोचिर दिन हृदय में स्थापित करने के लिए मीराँ एक और पद में गा रही है—

आजु मैं देख्यौ गिरिधारी।
सुन्दर वदन मदन की शोभा
चितवन अनियारी॥
बजावत बंशी कुंजन में गावत
ताल तरंग रंग धुनि नाचत ग्वालगन में॥
माधुरी मूरति वह प्यारी।
बसी रहे निस दिन हिरदे
बीच टरै नहीं टरी॥
ताही पर तन मन वारी॥
वह मूरति मोहनी निहारत
लोकलाज डारी॥
तुलसीवन कुंजन सचारी।
गिरिधर लाल नवल नटनागर,
मीरा बलिहारी॥

आज मैं गिरिधारी को देख रही हूँ उनका मुख सुन्दर है। मदन की तरह शोभा है, चितवन मनमोहक है। वे कुंजवन में बंशी बजाते रहते हैं। नाना रंग-तरंगों में गान गाकर ग्वालों के साथ नाचते रहते हैं। मेरे प्राणनाथ की मूर्ति अतिशय मधुर है, दिन-रात मेरे हृदय में बसे रहते हैं, एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होते। अपना तन-मन मैं उन्हींपर सौंप चुकी हूँ। यह मोहन रूप देखकर लोक-लज्जा दूर हो जाती है गिरिधरलाल, तुम्हारा नटवर रूप देख कर मीरा बलिहारी जाती है।

मीरा ने मिलनाकांक्षी प्रभु को चिर दिन हृदय-मन्दिर में रखना चाहा था। मिलन के एक और पद में मीरा ने गाया है—

म्हारा ओलगिया घर आया जी।
तनकी ताप मिटी सुख पाया,
हिल मिल मंगल गाया जी।
धन की धुनि सुनि मोर मगन भया,
यूँ मेरे आणंद छाया जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणा सूँ,
भौ का दरद मिटाया जी।
चंद कूँ देखि कमोंदणि फूलै,
हरखि भया मेरी कायाजी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी,
हरि मेरे महल सिधाया जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा,
सोई प्रभु मैं पाया जी।
'मीराँ विरहणि सीतल होई, दुख दुंद दूरि न्हसाया जी।

मेरे प्रभु विदेश से आये हैं। मनका दुःख दूर हो गया है, आनन्द पा रही हूँ। सभी मिलकर मगन गान करो। धन (बादल) की ध्वनि सुनकर मोर आनन्द में मग्न हो गया है। वह मुझे आनन्द दे रहा

है। प्रभु के साथ मिलन हो गया है। सांसारिक व्याधाएँ दूर हो गयी हैं। चन्द्रको देखकर जिस तरह कुमुदिनी खिल उठती है, उसी तरह प्रभुको पाकर मेरा शरीर-मन आनन्द से उन्मत्त हो गया है। हे सजनि, मेरा प्रत्येक अङ्ग शीतल हो गया है। हरि मेरे हृदय मन्दिर में आ गये हैं। सभी भक्तों के सहाय कन्हैया हैं। मैं अपने प्रभु को पा गयी हूँ। विरहिणी मीरा का हृदय शीतल हो गया है। दुःखतापज्वाला सभी दूर हो गये हैं।

मीरा का प्राण इतने दिन बाद शान्त हो गया है। जिस जननी की सन्तान, पत्नी के पति विदेश में रहते हैं, उनका मन सन्तान और पति के लिए कैसा रहता है, इसका अनुभव केवल वे ही कर सकती हैं। बहुत दिन बाद प्रियजन यदि अपने परिजनों से मिलते हैं तो कितना आनन्द होता है। आज बहुत जन्म जन्मान्तरों की अभिलाषा श्रीगिरिधारीलाल को पाकर पूरी हो गयी है। मीरा के हृदय मरु में शीतल जल बरस गया है। प्यासे कंठ में अमृतधारा अर्पित हो गयी है मीरा की प्रार्थना थी—"आधी रात में दरसन दीन्हें प्रेम नदी क तीरा।" प्रभु ने मध्यरात्रि में प्रेमनदी के किनारे दर्शन दिया। कृष्ण प्रेम-पागलिनी मीरा बहु जन्म जन्मातरों की सुकृति के फलस्वरूप आज अपने प्राणनाथ गिरिधारीलाल का दर्शन पा गयी रणछोड़जी के मन्दिर के सामने। मीरा करुण स्वर से प्रभुका भजन गा रही हैं। प्रेमाश्रु वर्षित हो रहा है। एक मात्र प्रार्थना है, प्रभु दर्शन दो। मन्दिर का द्वार बन्द है। मन्दिर में प्रभु हैं और उनकी दासी मीरा हैं, बाहर से ललित कंठ से मधुर भजन ध्वनि सुनकर भक्तगण आनन्द उपभोग कर रहे हैं। मीरा का प्रभु के सामने करुण निवेदन समाप्त ही नहीं होता। बहुत देर बाद जब मन्दिर-द्वारा खोल दिया गया तब देखा गया। जड देहधारी मीरा मन्दिर में नहीं हैं। अपने प्राणप्रिय गिरिधारीरूपी रणछोड़जी के साथ मीरा लीन हो गयी हैं। निदर्शनस्वरूप उनकी ओढनी का खण्ड विशेष रणछोड़जी के मुख

में लगा हुआ है। प्रभु के साथ मीरा का मिलन हो गया है। मीरा को श्रीकृष्ण की सेवा मिल गयी। मीरा का जीवन धन्य है।

उपसंहार

मीरावाई की जीवनी आलोचना करते समय बहुतों ने ग्रन्थकार से प्रश्न किया है—बंग देश में श्रीमन्महाप्रभु, चण्डीदास, गोविन्ददास, प्रमुख युगावतार और भक्त कवियों के रहते सुदूर राजस्थान की एक महिला की जीवनी आलोचना की सार्थकता क्या है? यह प्रश्न स्वाभाविक है। इस ग्रन्थ की रचना का स्थान है काशीधाम। बहुत दिनों इस पवित्र धाम में जीवन बिताने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। परन्तु बंग, विहार उत्कल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान विशेषत. अयोध्या, मथुरा, श्रीवृन्दावन नैमिषारण्य, प्रयागतीर्थ प्रभृति तीर्थ-स्थान दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। साधु-महात्माओं की अशेष कृपा न पाने पर भी श्रीचरण दर्शनों का सुयोग मिला है। भगवद्दर्शन के उपाय के सम्बन्ध में साधु-महात्माओं से मैंने प्रश्न किये हैं। मुझे उत्तर मिला है। मनुष्यत्व अर्जन करो, षड् रिपुओं को जीतो, परनिन्दा मत करो इत्यादि। स्वामी जी का विराट ग्रन्थ पढ़ कर मुझे मिले है—आसन शुद्धि, चित्तशुद्धि, मनशुद्धि और भी कितनी शुद्धियों के विषय, किन्तु ऐसे महात्मा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है जो हा कृष्ण, हा कृष्ण, कहकर नृत्य कर रहे हैं। जिनके कपोलों के ऊपर से प्रेमाश्रु बह रहा है। जो सहास्य कह सकते हों—'यह देखो श्रीकृष्ण हैं, प्राणों के साथ श्रीकृष्ण को पुकारो—कृष्ण के अतिरिक्त इस जगत् में और कुछ भी नहीं है।

स्मार्त रघुनन्दन प्रशासित बंग देश में आचार-विचार का उग्र प्रभाव देख चुका हूँ। तुलसी और विल्वपत्र में चन्दन किस मात्रा में लगेगा, यह लेकर पण्डित-पण्डित में युद्ध होता है। बंग देश में बाहर की साजसज्जा का प्रभाव अधिक है। बिहार, उत्कल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान में स्मृति का ऐसा शासन नहीं है। बंग देश के किसी स्थान के एक

ब्राह्मण को भोजनोपरान्त मुखशुद्धि करने से पहले किसी शूद्र ने छू दिया तो ब्राह्मण ने एक दिन उपवास करके प्रायश्चित्त किया और शूद्र अर्थ दण्ड से दण्डित किया गया। उत्तर प्रदेश के ब्राह्मण ने इस व्यवस्था की बात सुन कर कहा—जिस मुख से राम नाम उच्चारित होता है वह कैसे अशुद्ध हो सकता है! यह मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। साधुमहात्मागण स्मृति की कठोरता में रहना नहीं चाहते। इसी लिए बंग देश की अपेक्षा बिहार, उत्तर प्रदेश राजस्थान में साधु-सन्तों का वास अधिक है। अवश्य ही महाप्रभु के प्रेमधर्म के प्रचार के बाद स्मृति-शास्त्र का शासन बहुत अंशों में बंग देश में घट गया है। बंगदेश में आचार विचार कर्मकाण्ड के प्रति लक्ष्य अधिक रहता है। उत्तर भारत में नैतिक आचार-विचार के प्रति दृष्टि न रख कर अपने इष्टलाभ का प्रयास ही अधिक करते हैं। इस कारण ही सम्भव है इन देशों में—मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, कबीर, रविदास प्रमुख साधु महात्माओं का आविर्भाव हुआ था। बंग देश में प्रकृति का विराट दान विद्यमान है। प्रकृति देवी की अशेष कृपा प्राप्त होने के कारण यही उचित था कि बंग देश प्रतिभा, संस्कृति और विभिन्न भाव-धाराओं में भारत में श्रेष्ठ आसन प्राप्त करता। श्रीमन्महाप्रभु, परमहंस चण्डीदास, रवीन्द्रनाथ के बाद सन्त महर्षियों का आविर्भाव कहाँ है।

चण्डीदास, गोविन्ददास, मुरारी गुप्त प्रमुख, भक्त कवियों ने राधा कृष्ण की लीला का वर्णन करके आनन्द उपभोग किया है। श्रीकृष्ण की बाल्यलीला, गोष्ठ, नौका निवास, विरह, मिलन प्रभृति लीलाकीर्तन करके एक अभिनव रस की सृष्टि की है, किन्तु मीराबाई की साधना या प्रभु का लीलाकीर्त्तन विभिन्न है। मीराँबाई ने अपने भजनों में लीला वर्णन करते समय राधारानी को प्रधानता नहीं दी है। कहीं भी रूपक रचकर युगललीला दर्शन करके अपने प्राणनाथ श्रीगिरिधारी नागर को हृदय-मन्दिर में आह्वान करके उनके श्रीचरणों में हृदय की वेदना व्यक्त की है। प्रभुके सामने ऐसी आकुल

विनती की करुण प्रार्थना भारत के संतों में कम ही दिखाई पड़ती है। अवश्य ही बंगदेश के साधक रामप्रसाद ने मीरांबाई की ही भांति कालीमाता के शरणागत होकर प्राणों की वेदना व्यक्त की थी। राम प्रसादने माँ की लीला का वर्णन करते समय शिवको आह्वान नहीं किया है। शिव और काली को युगल सजाकर उनकी लीला का वर्णन नहीं किया है। मीरा ने जैसे एक गिरिधर के अतिरिक्त इस जगत् में और किसी की चिन्ता को मन में स्थान नहीं दिया उसी तरह साधक राम-प्रसाद ने भी एक मात्र माँ के अतिरिक्त किसी को भी क्षण मात्र के लिए हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित नहीं किया है।

साधन-जगत् में प्रवेश करने पर पहले ही देखा जाता है। शास्त्रों का कठोर शासन। किसी को उपदेश देते रहते हैं छः रिपुओं को दमन करो, किसी को ऊर्ध्वाहु होकर जलन्त अग्निकुण्ड में बैठकर ध्यान लगाने का उपदेश दिया गया है, इत्यादि। किन्तु मीरा की जीवनी और उनके साधन-रहस्य की आलोचना करने से देख पाते हैं उनकी साधन-पथामें इन सबकी बला नहीं है। उनकी साधन-पथा अतिशय सरल और सहज है। इसमें स्मृति का शासन नहीं है। कर्मकाण्ड की कठोरता नहीं है। है केवल प्रेम और आनन्द। तुम प्रभु, मेरे प्रति अपने जन हो, मैं तुम्हारी हूँ। मैं केवल तुमको चाहती हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त इस जगत् में मेरा दूसरा कोई नहीं है। इसी लिए मीरा की एक मात्र अनुभूति मूलक वाणी है।

कबहुँ प्रगट कबहुँ मानस पूजा।
तजि हरि भजन काज नहिं दूजा॥

कभी प्रकट रूप से, कभी मानस में प्रभु की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा काम ही नहीं है। इसलिए जो मन दिन-रात हरि भजन में लिप्त है, जो नेत्र उनका रूप देख रहे हैं, जो कान लीला कीर्तन सुन रहा है, इन सब इन्द्रियों के कुदृश्य कुवाक्य देखने सुनने का

समय कहाँ है ? इस लिए साधन-जगत् में जाने से कुछ भी नहीं हुआ। आनन्द नहीं मिला। इन सब अभियोगों की जड़ में आत्मप्रवञ्चना के अतिरिक्त और क्या रह सकता है ?

मीरांबाई के साधन-पथ में '+' योग अर्थात् उनके साथ संयुक्त होना है। '—' अर्थात् उनको भूल जाने में प्रवंचना या धोखा देना मात्र है। मीराबाई ने साधन-पथ में जीवन उत्सर्ग कर दुःख लांछना भोग की थी किन्तु क्षणमात्र के लिए भी अपने लक्ष्य से वे च्युत नहीं हुईं।

मीरांबाई की जीवन-साधना में एक और वस्तु मिलती है—"प्रभु को पाने के लिए उनको अपना लेना चाहिये। जीवन के पथ-प्रदर्शकने एक दिन बातचीत के प्रसंग में कहा था, "वे तो सर्वदा करुणा का पाल फहराकर नौका लिये तुम लोगों के सामने चले आ रहे हैं। उनको पहचान कर पकड़ लेने से ही तो उद्धार हो जायगा।" मीरा बाल्यकाल में ही उनको पहचान गयी थीं, सन्त महाराज से गिरिधर को पाकर अपने वक्ष में उन्होंने स्थान दिया था। तब मीराबाई की अवस्था ४-५ वर्ष से अधिक न रही होगी। उसी दिन से यह गिरधर मीराबाई के अति अपनेजन हुए। हृदय के धन हुए। उनकी सेवा-पूजा में उन्होंने जीवन का प्रत्येक पल व्यय किया था। अपनी गोद में उनको स्थान दिया था। गोद से उतार सामने रखकर प्रातःकाल उनका बाल्यभोग लगता था, उसके बाद उनकी पूजा होती थी, उसके बाद भोगारती की व्यवस्था होती थी। इसके बाद फिर गोद में लेकर शयन कराना होता था। शयन से जगा कर फिर भोग आरती होती थी। भोग आरती के बाद माला गूँथकर नृत्यकर उनका तृप्ति का साधन, सन्ध्या को आरती। आरती के बाद भोग की व्यवस्था। भोग आरती के बाद फिर गोद में लेकर उनको सुला देना उनकी चिन्ता, उनकी पूजा, उनकी भावना के अतिरिक्त मीरां के जीवन में और क्या कर्म था। नृत्य करने से, माला गूँथकर पहना देने से उत्तम सामग्री से भोग देने से, प्रभु प्रसन्न होते हैं। इसी लिए

मीराँ देह-मन-प्राण देकर उनकी ही सेवा में दिन-रात लिप्त रहती थीं। कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय सबही उनकी सेवा में नियुक्त रहता था इसलिए मीराँ के जीवन में इन्द्रियों को वश में करने का प्रयोजन नहीं था। इस प्रकार सेवा-पूजा में आँसू बहाकर उनके निकट आत्मनिवेदन करके कहती थीं—

'प्रभु' अपने चरणों में स्थान दो। तुम क्षण मात्र के लिए भी इस हृदय-मन्दिर से विच्युत मत होओ प्रभु, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। तुम ही जीवन के एक मात्र आश्रय हो। चरणों में स्थान दो।" प्रभु की सेवा यथारीति चल रही है, और उनके श्रीचरणों में अश्रु बिन्दु झर रही हैं।

मीरा प्राणनाथ को स्वजन बना सकी थीं। इसीलिए चरणामृत तीव्र विष होने पर भी वह उनके लिए चरणामृत हो रहा। शरीर अस्वस्थ था, वैद्य की औषध से देह आरोग्य होने की बात नहीं है। चरणामृत ही औषध है। वे अति अपने हैं—इसीलिए प्रभु के लिए भोग पकाकर पहले स्वयं उसे चख लेती थीं, यदि भोग्यवस्तु उत्तम न होगी तो प्राण प्यारे को उससे कष्ट होगा। मीराके जीवन के सभी कर्म, मीरा के समस्त भजन एक मात्र प्रभु के उद्देश्यसे आत्मनिवेदन करके प्राणों की वेदना व्यक्त कर उनके श्रीचरण-कमलों में आश्रय के निमित्त ही थे। जीवन के सभी कर्मों में सभी भजनों में एक ही उद्देश्य था, और कुछ भी क्षण मात्र के लिए स्थान नहीं पाता था। ज्ञान से विज्ञान होता है। विज्ञान से प्रेम होता है। प्रेम से भक्ति होती है। उसके बाद उनकी *लीलाका* साक्षात् होता है। प्रेम के बिना उनको कोई पा नहीं सकता, इष्ट के प्रति पूर्ण विश्वास रखकर उनको अति स्वजन मानकर उनकी सेवा होनी चाहिये। सेवा के मार्ग में सद्गुरु का आश्रय लेकर इष्ट मंत्र प्राप्त करना होता है। इस इष्ट मंत्र को पा लेने के समय से ही साधन आरम्भ होता है। इष्ट मंत्र पाकर जप साधन चलता है। जप करते-करते शरीर अशक्त हो जाने पर—कुलकुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। तब प्रभु नाना

लीलाच्छल से नाना रूपों में दर्शन देते हैं। यह दर्शन ही जीवन की मूल-वस्तु नहीं है। यह केवल साधन-पथ में अग्रसर होने का पथ मात्र है। उसके बाद जप, सेवा-पूजा के बीच से साधन-पथ में अग्रसर होना होता होता है। साधन जितना ही चलता रहेगा, वे उतना ही स्वजन से स्वजन से स्वजनतर और स्वजनतम होते जायंगे। स्वजनतम हो जाने पर भक्त को भक्ताधीन भगवान अपनी गोद में उठा लेंगे। तब भक्त कृष्ण-सेवा आनन्द का आस्वाद पायेंगे। यह आनन्द का आस्वाद ही भक्त के जीवन का उद्देश्य है। मीराबाई के जीवन में ■ सभी स्तर क्रमशः दिखाई पड़े थे, मीराबाई प्रभु की सेवा पूजा के बीच ही इष्ट मंत्र जप करती थीं। क्रमशः प्रभु उनके स्वजन से स्वजनतर और स्वजनतम हो गये प्रभु ने अपने प्रिय भक्त को सादर अपनी गोद में उठा लिया, रणछोड़ जी का मन्दिर द्वार खोलकर देखा गया—मीरा अब 'मन्दिर में नहीं हैं, प्रभु ने उनको गोद में उठा लिया है।

जयतु गिरिधारीलाल। जयतु मीरा।

चतुर्थ खंड

मीराँ भजनावली

भजनावली

श्रीहरिचरण वंदना

राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण ।
सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ॥
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र-पदवी धरण ।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी शरण ॥
जिण चरण ब्रह्माण्ड भैंट्यो, नख सिखाँ सिरी धरण ।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी-गौतम-घरण ॥
जिण चरण कालिनाग नाथ्यो, गोप-लीला-करण ।
जिण चरण गोवरधन धार्यो, इन्द्रको ग्रब-हरण ॥
दासि 'मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारण तरण ॥१॥

त्रिविध ज्वाला=आध्यात्मिक, अधिदैविक, आधिभौतिक । सिरीधरण=श्रीशोभाधारण करनेवाले । गौतम-घरण=गौतम की स्त्री अहिल्या, तारण-तरण=उद्धार करने के लिए तरणि या नौका के समान । भक्त सूरदास का उक्त पद की भाँति भजन (भजि मन, नंद-नन्दन-चरन'''
'सूर सागर ''

ऋतुवर्णन

राग कलिंगड़ा

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज ।
म्हेल चढ चढ जोऊँ मेरी सजनी कब आवैं महाराज ।
दादुर मोर पपइया बोले कोइल मधुरे साज ।

उमंग्यो इन्द्र चहूँ दिस बरसे दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया इन्द्र मिलण कै काज।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बेग मिले महाराज ॥२॥

राग मलार

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो, दामण दमक झर लावन की।
नन्हीं नन्हीं बूँदन मेहा बरसे सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, आनन्द मंगल गावन की ॥३॥

म्हेल=महल, जोऊँ=देखती हूँ, उमंग्यो=इन्द्रवामेघ उमड़ आया, दामिण=बिजली।

नदनंदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई।
इत घन लरजै उत घन गरजै, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल चित लाई ॥४॥

नन्द-नन्दन=श्रीकृष्ण, बिलमाई=लुभाकर रोक रक्खा, लरजै=झुक-झुककर बरसता है। बिज्जु=बिजली, सवाई=विशेष रूपसे। पुरवाई=पूर्वी।

राग कलिंगड़ा

बादल देख डरी हो स्याम, मैं बादल देख डरी।
काली पीली घटा ऊमड़ी बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी पाणी हुई भूमि हरी।
जाका पिय परदेस बसत है, भीजूँ बहार खरी।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी कीज्यो प्रीत खरी ॥५॥

काली-पीली = घनघोर, उमड़ी = घिर आई, पाणी-पाणी=जल ही जल, हरी=हरियाली सम्पन्न, जाका = जिसका, भीजूँ = भीगती हूँ। बहार=वसन्त ऋतु। खरी=खड़ी, खरी=सची,स्थायी।

राग होली सिंदूरा

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे।
बिन करताल, पखावज बाजै अणहद की झणकार रे।।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै रोम रोम रग सार रे।
सील सन्तोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उडत गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण-कँवल बलिहार रे।।६।।

चार = थोड़े से ही, अणहद= अनाहत ध्वनि या प्रणव (ॐ) साधन मार्ग में अग्रसर होने से समाधि अवस्था में यह ध्वनि सुनाई पड़ती है। राग छतीसूँ=छ राग और तीस रागिनियाँ। रोम रोम= व्याप्त, अंबर= आकाश, बरसत = रंग=सुबह हो रही है। अपार= अत्यन्त। घट=हृदय। पट=आवरण, डार=दूर करके।

सद्गुरु प्रशंसा

राग प्रभावती

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है जाणत मेरी छाती।
ऊँची चढि चढि पंथ निहारूँ, रोय रोय अँखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुलरा न्याती।
दोऊ कर जोड्याँ अरज करूँ छूँ सुण लीज्यौ मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो कुचाली ज्यूँ मदमाँतो हाथी।

सतगुरु हाथ धर्यो सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणाँ चित राती।।७।।

राग धानी

मोहिं लागी लगन गुरु चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै जगमाया सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है फिकर नहीं मोहिं तरनन की।
"मीरा" के प्रभु गिरिधर नागर आस वही गुरु सरनन की।।८।।

थाँने=तुमको, छाती = हृदय, राती = लाल लाल, न्याती = सम्बन्ध नाता, जोड्यां=जोड़कर, कुचाली=कुमार्ग पर चलनेवाला। मदमाँतो–मत्त।

लगन=प्रीति, कछुवै= कुछ भी, जगमाया = संसार के सभी कार्य, तरननकी=पार करने की।

राग जैजैवन्ती

गली तो चारो बन्द हुई मैं, हरि से कैसे मिलूँ जाय।।
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय।।
ऊँचा नीचा महल पिया का हमसे चढ्या न जाय।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाय।।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।
हे विधना कैसी रच दीन्हीं, दूर बस्यो म्हाँरो गाम।।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछुड़ी मीराँ घर में लीन्ही आय।।९।।

गली=मार्ग, चारो = सभी। रपटीली = जहाँ पैर फिसल जाते हैं। ठहराय=ठहरता व टिकता है। झीणो = सूक्ष्म। सुरत = स्मरण शक्ति, झकोला=झोंका। सुरत...खाय=स्मृति, परमात्मा प्रियतम की

पूर्ण अनुभूति में असमर्थ हो जाती है। पैंड पैंड = पग पग, बटमार= डाकू (रिपु)। कबीर आदि सन्तों ने इस मार्ग का नाम 'सूषिम मारग' या सूक्ष्म मार्ग कहा है। और उसे 'आगम ठहराते हुए उसका अनेक प्रकार से वर्णन किया है। जैसे—

जन कबीर का शिखर घर बाट सलैली सैल।
पांव न टिकै पपील का, लोगनि लादै बैन ॥

लीला के पद

राग हमीर

बसौ मोरे नैनन में नन्दलाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, अरुण तिलक दिए भाल।
मोहनी मूरति सांवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधा-रस-मुरली, राजत उर बैजन्ती माल।
छुद्र घंटिका कटि-तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भगतबछल गोपाल ॥१०॥

सूरति=स्वरूप। बने=शोभा दे रहे हैं। राजत=शोभित हो रहे हैं। सबद=शब्द।

"सूर सागर में उल्लेख है:—

बसे मेरे नयन म नन्दलाल।
सांवरी सूरति माधुरी मूरति, राजिव नयन बिसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, चरण तिलक दिये भाल।
शंख चक्र गदापद्म बिराजत, कौस्तुममणि बनमाल।
बाजूबन्द जरइ के भूषण, नूपुर शब्द रसाल।
दास गोपाल मदन मोहन पिय, भक्तन के प्रतिपाल ॥

बिहारी लाल कहते हैं —

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उरमाल
यहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल ॥

राग कल्याण

कान्हा रसिया वृन्दावन वासी ।
जमुना के नीरे तीरे धेन चरावे मुरली बजावे मृदुलासी ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै श्रवण कुण्डल झलासी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर बिना मोल की दासी ॥१०॥

राग काफी

मुरलिया बाजै जमुना-तीर ।
मुरलि सुनत मेरो मन हरि लीन्हों चीत धरत नहिं धीर ॥
कारो कन्हैया, कारी कमरिया, कारो जमुन को नीर ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल पै सीर ॥११॥

राग गूजरी

तेरे चरनन की बलिहारी ।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै बाँसुरी बजावै बनवारी ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै कुण्डल की छबि न्यारी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल बलिहारी ॥१२॥

मृदुलासी=कोमल, झलासी=चमकती हुई ।
चीत=चित्त, मन ।

राग काफी

प्रेमनी प्रेम नी प्रेम नी रे, मने लागी कटारी प्रेम नी रे ।
जल जमुना माँ भरवा गया ताँ, हती गागर माथे हमनी रे ।
काँचे ते ताँत तो हरि जी ये बाँधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे ।
'मीरा' कहे गिरिधर नागर शामली सुरत शुभएमनी रे ॥१४॥

प्रेमनी=प्रेम की । ता=थी । हती=थी, हमनी=हमारे ।
काँचे·········बाँधी=कच्चे सूत से तो प्रभु ने बाँध लिया है ।

विनय

जँगला-तीताला

राम नाम रस पीजे मनुश्राँ, राम नाम रस पीजे ।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजे ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह कूँ बहा चित्त से दीजे ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर ताहि के रंग में भीजे ॥१५॥

मनुश्राँ=मन, रंग में भीजे—उसी रंग में रंग जाना, उसी पर पूर्ण भक्ति करना । भक्तदादू कहते हैं—

मनाँ भजि राम नाम लीजे,
साध संगति सुमिरि—सुमिरि रसाना रस पीजे ।

राग प्रभाती

मैं तो म्हाँरा रमैया ने, देखबो करूँ री ।
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री ।
जहाँ जहाँ पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँ री ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, चरणाँ लिपट परूँ री ॥१६॥

जंगला-तिताला

भई रे मैं राम दिवानी रे, कृष्ण दिवानी रे ।
आगे लशकर पाछे डेरा, जित देखूँ तित साहेब मेरा ।
कोरा घड़ा गंगा जल पानी, जा रे पीवे सो होय निर्वानी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल रज लपटानी ॥१७॥

रमैया ने = प्रियतम को ।
तेरो·········सुमरण = तेरा ही स्मरण व चिन्तन । उमरण सुमरण =ध्यान करना, निरत—नित्य ।

दिवानी = प्रेम में पागल । लशकर=सेना । कोरा घड़ा = स्वच्छ नया घट । निर्वानी = मुक्त

राग-ललित

मेरा बेड़ा लगाय दीजो पार, प्रभु अरज करूँ छूँ।
इण भव में मैं महु दुख पायो संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है दूर करो दुख भार।
यो संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी धार।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर आवागवन निवार ॥१८॥

बेड़ा=जीवन। बेड़ा...पार=हमारी संकटों से भरी हुई स्थिति से रक्षा कीजिये। संसा=संशय। सोग=दुःख। अष्ट कर्म=आठ कर्तव्य कर्म, अष्ट पाश।

'कुलार्णव तन्त्र में अष्ट कर्म'...

'घृणा, लज्जा भयशंका जुगुप्सा चेतिपंचमी।
कुलं शील तथा जातिरष्टौ पाशा प्रकीर्तिता ॥

जैनदर्शनानुसार अष्ट कर्म...(१) ज्ञानावरणी, (२) दर्शनावरणी, (३) वेदनी (सुख दुःख) (४) मोहिनी (नशा) (५) आयुष, (६) नाम (शरीर आदि) (७) गोत्र ऊँच नीच (८) अन्तराय (विघ्न)।

उपदेश-भजन

राग प्रभात

स्वामी सब संसार के (हो) सांचे श्री भगवान।
स्थावर, जंगम, पावक, पाणी, धरती बीच समान।
सब में महिमा तेरी देखी कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दारिद खोए, बारे की पहिचान।
दो मुट्ठी तंदुल की चाबी, दीन्हों द्रव्य महान।
भारत में अर्जुन के आगे, आप भये रथवान।
उनने अपने कुल का देख्यो, छूट गयो तीर कमान।
ना कोई मारे, ना कोई मरता, तेरो यह अज्ञान।

चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मेरे पर प्रभु किरपा कीज्यो, बाँदी अपनी जान।
'मीरां' गिरिधर सरण तिहारी,लगै चरण में ध्यान ॥१६॥

कुदरत=माया, प्रकृति। कुरबान=आशीर्वाद। बारे=बाल्यकाल, चाबी=चाया। रथवान=सारथी। ना कोई मारे ना कोइ मरता=न कोई किसी को मारता है और न कोई मरता है। बाँदी=दासी। गीता-द्वितीय, अध्याय में है

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

राग झिंझोटी प्रभात

भजन भरोसे अविनाशी, मैं तो भजन भरोसे अविनाशी।
जप तप तीर्थ कछुए ना जाणूँ करत में उदासी रे
मंत्र ने जंत्र कछुए ना जाणूँ, वेद पढ़्यो न गइ काशी।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल की हूँ दासी ॥२०॥

राग प्रभात

जग में जीवणा थोड़ा, राम कृष्ण कह रे जंजार।
मात पिता तो जन्म दियो है, करम दियो करतार।
कइ रे खाइयो, कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपकार।
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, भज उतरो भवपार ॥२१॥

भजन भरोसे अविनाशी—श्री कृष्ण के भजन ही का मुझे भरोसा है।

जीवणा=जीवनकाल। कुण=कौन। जंजार=जीवन प्रपंच। करतार= सृष्टि कर्ता। लार=संबन्ध।

राग बिलावल

नहिं ऐसो जनम बारंबार।
क्या जानूं कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल,जात न लागै बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, बहुरि न लागै डार।
भवसागर अति जोर कहिये, अनँत ऊँडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार।
ज्ञान-चौसर मँडी चौहटे, सुरत-पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी, जीत भावै हार।
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासि 'मीरां' लाल गिरिधर जीवणा दिन च्यार ।।२२।।

क्या''प्रगटे=पता नहीं कौन से पुण्यों के प्रभाव से। अवतार=जन्म, जात=नष्ट होवे। बार=विलंब जोर=प्रबल। ऊँडी=गंभीर। परले= दूसरी। चौसर=चौपड़ की बाजी। मँड़ी=बिछी। चौहटे=चौमुहानी। सुरत=परमात्मा की स्मृति। बाजी=खेल।

'चौपड़ी मांडी चौहटे अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा राम जन, खेलो सन्त विचार।

कबीर—

जीवणा''च्यार— जीवन काल केवल कुछ दिनों के लिए।

'नहिं जनम बारंबार।'
पुरबलो कौं पुण्य प्रगटयो, लह्यो नर अवतार।
घटे पल पल, बढ़ै छिन-छिन जात लागि न बार।
धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागैं डार।
भय उदधि जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार।
सूर हरि को भजन करि करि, उतरि पल्ले पार।
(सूर-सागर)

उपालंभ

राग-दुर्गा

हो गये स्याम दुइज के चंदा।
मधुबन जाइ भये मधुबनियाँ हम पर डारो प्रेम को फंदा।
'मीरां' के प्रभु गिरिधर नागर अब तो नेह परो कछु मदा ॥२३॥

राग-मलार

गिरिधर दुनिया दे छै बोल।
गिरिधर मेरा मैं गिरधर की, कहो तो बजाऊँ ढोल।
आपन जाय प्रभु द्वारिका छाये, हमकूँ लिख दियो जोग।
'मीरां' के प्रभु गिरिधर नागर पिछले जन्म को कौल ॥२४॥

दुइज = द्वितीया। मधुबन = मथुरा। पर = पड़ रहा है। बोल= व्यंग्य।

राग-जोगिया

आला मैं वैरागण हूँगी।
जिन भेषां म्हारो साहिब रीझे, सोई भेष धरूँगी।
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी।
गुरू के ग्यान रगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम पीत सूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी।
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, साधा सँग रहूँगी ॥२५॥

आला=प्रियतम। निरंजन=परमात्मा। घट = शरीर। समता= सबके साथ बराबर। कींगरी=छोटी सारंगी।

'तजा राज राजा भा योगी।
औ किंगिरी कर गहे वियोगी।'

जायसी।

कबीर साहब ने विरहावस्था का वर्णन किया—

सब रग तन रिह बजावै नित।
और न कोई सुणि सकै कै साई के चित।

—कबीर

योगिनी रूप में निवेदन

राग बिहाग

जोगियारी सूरत मन में बसी।
नित प्रति ध्यान करत हूँ दिल में, निस दिन होत खुसी।
काह करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
'मीरा' कहै प्रभु कब रे मिलोगे, प्रीत रसीली बसी ॥२६॥

जोगिया तू कब रे मिलेगो आइ।
तेरे ही कारण जोग लिया है घर घर अलख जगाइ।
दिवस न भूख रैण नहि निद्रा तुझ बिन कछु न सुहाई।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर मिलकर तपत बुझाइ ॥२७॥

खुसी—खुशी। सरप डसी—सर्प विष द्वारा प्रभावित हूँ। रसीली—आनन्ददायिनी।

अनुराग-भक्ति

राग हमीर

मैं गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हांरो सांचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ भोर भये उठि आऊँ।
रैणदिना वाके सग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी उण बिन पल न रहाऊँ।
जहाँ बिठावैं तितही बैठूँ बेचैं तो बिक जाऊँ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊँ ॥२८॥

हरि मेरे जीवन प्रान-अधार।
और आसरो नांही तुम बिन तीनूँ लोक मँझार।
आप बिना मोहीं कछु न सुहावै निरख्यो सब संसार।
'मीरा' कहै मैं दासि रावरी दीज्यौ मती बिसार ॥२६॥

सांचो=वास्तविक। लुभाऊँ=मुग्ध हो जाती हूँ। रैणदिनां=रातदिन पल=एक क्षण के लिए भी। रहाऊँ=रह सकती हूँ।

आसरो=आश्रय। निरख्यो=देख लिया।

'गोबिन्द जी तूँ मेरे प्रान अधार।
साजन मीत सहाई तुमही तूँ मेरो परिवार ॥
(गुरु नानक)

सोरठ तिताला

आये आये जी महाराज आये ॥
तब वैकुंठ तज्यो गरुड़ासन पवन बेग उठ धाये।
जब ही दृष्टि परे नदनदन, प्रेम भक्ति रस प्याये।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित लाये ॥३०॥

आशा किरण

राग कोसी

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की, आवन की मन भावन की।
आप न आवै लिख नहिं भेजै बाँण पड़ी ललचावन की।
ए दोउ नैण कह्यौ नहि मानें नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो पाँख नहीं उड़ जावन की।
'मीरा' कहै प्रभु कब र मिलोगे चेरी भई हूँ तेरे दावन की।३१।

बाण=स्वभाव। ललचावन=लुभाने की। नदिया......सावन की= सावन की नदियों की भांति इनमें आंसू निकल आते हैं। उड़ जावन= उड़जाने की। दांवन=पल्ला।

मिनती

राग-कान्हरा

मीरा को प्रभु सांची दासी बनाश्रो ।
झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ ॥
लूटे ही लेत विवेक का डेरा ।
बुधि बल यदपि करूं बहुतेरा ॥
हाय राम नहिं कछु बस मेरा ।
मरत हूँ बिवस प्रभु धाओ सवेरा ॥
धर्म उपदेश नित प्रति सुनति हूँ ।
मन कुचाल से भी डरती हूँ ॥
सदा साधु सेवा करती हूँ ।
सुमिरण ध्यान में चित धरती हूँ ॥
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ ।
मीरा को प्रभु सांची दासी बनाश्रो ॥३२॥

निज संबंधी पद

राग झिंझोटी

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥
तात मात भ्रात बन्धु अपना नहिं कोई ॥
छांड़ दई कुल को कान क्या करिहैं कोई ॥
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई ।
चुनरी के किये टूक टूक ओढ़ लीन्ह लोई ।
मोती मूंगे उतार बन माला पोई ॥
अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई ॥
अब तो बेल फैल गई आनंद फल होई ।

दूध की मथनिया बड़े प्रेम से बिलोई ॥
माखन जब काढि लियो छाछ पिये कोई ।
आई मैं भक्ति काज जगत देख मोही ॥
दासी मीरा गिरिधर प्रभु तारो अब मोही ॥३३॥

छांड़ दई=त्याग दी, कान=मर्यादा । लोक=समाज । असुवन जल=अश्रु बिन्दुओं द्वारा । आनद फल=आनद स्वरूप परिणाम मोही=मुझे ।

देश सोरठ तिताला

राणाजी सावरे इग राची ।
कोई निरखत कोई हरषत है जी ।
कोइ काई करत है हासी, कोई साचीं ।
ताल मृदग बजे मन्दिर में हो हरी आगे नांची ।
'मीरा' दासी गिरिधर जू की जनम जनम की जाची ॥३४॥

राग खम्माच

राणा जी मैं साँवरे रँगराती ।
जिनके पिया परदेश बसत हैं वे लिख लिख भेजें पाती ।
मोरा पिया मेरे हृदय बसत है यह सुख कह्यो न जाती ।
झूटा सुहाग जगत का री सजनी, होय होय मिट जासी ।
मैं तो एक अविनासी बरूँगी जाहे काल नहिं खासी ।
और तो प्याला है प्रेम हरी का, मैं छकी रहूँ दिन राती ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, खोल मिली हरी से माती ॥३५॥

रँगराती—प्रेम में मस्त । माती—मस्त ।

बिरह

राग आसावरी

प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ॥
जल बिनु कमल, चन्द बिन रजनी, ऐसे तुम देख्या बिन सजनी ।

व्याकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, बिरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख, नींद नहीं रैणा, मुख सूँ कथत न आवै बैणा,
कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय।
क्यूँ तरसावो अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी,
'मीरा' दासी जनम जनम की, पड़ी तुम्हारे पाय ॥३६॥

राग कान्हड़ा

तुम्हारे कारण सब सुख छाड्या, अब मोहीं क्यूँ तरसावौ।
बिरह बिथा लागी उर अन्तर सो तुम आय बुझावौ।
अब छोड्याँ नहिं बनै प्रभूजी हँस कर तुरत बुलावौ।
'मीरा' दासी जनम जनम की अंग सूँ अंग लगावौ ॥३७॥

बिरह कलेजो खाय=बिरह मर्मान्तक पीड़ा पहुँचा रहा है। बैणा=वचन। पड़ी......पाय—तुम्हारे चरणों पड़ती हूँ।

छाड्या=त्याग दिये। तरसावौ=वांछित वस्तु न देकर व्यथित करना। बिथा=व्यथा। छोड्या नहिं बनै=त्याग देने से काम नहीं चलने का।

राग भैरवी

देखो सइयाँ हरि मन काठ कियो।
आवन कहि गया अजहूँ न आयो करि करि वचन गयो।
खान पान सुध बुध सब बिसरी कैसे करी मैं जियो।
वचन तुम्हारे तुमहिं बिसारे मन मेरो हर लियो।
'मीरा' कहे प्रभु गिरिधर नागर तुम बिन फाटत हियो ॥३८॥

राग बिहाग

पिया बिनि रह्यो न जाइ।
तन मन मेरो पिया पर वारूँ बार बार बलि जाइँ।
निशिदिन जोऊँ बाट पिया की कबरे मिलोगे आइ।

'मीरा' के प्रभु आस तुम्हारी लीज्यौ कंठ लगाई ॥३६॥

सइयां=सखियो। काठ=कठिन। अजहूँ=आज तक फटत हियो=हृदय विदीर्ण हो रहा है।

पीया=प्रियतम श्रीकृष्ण। वारूँ=न्योछावर करती हूँ। कंठ लगाइ=स्वीकार कर लो।

राग काफी

पिय-बिन सूनो है जी म्हांरो देस।
ऐसो है कोई पिव के मिलावै तन मन करूँ सब पेस।
तेरे कारण बन-बन डोलूँ कर जोगण को भेस।
अवधि बदी तो अजूं न आए पंजर हो गया केस।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे तज दियो नगर नरेस ॥४०॥

राग काफी

नींद लड़ी नहिं आवै सारी रात, किस विधि होय परभात।
चमक उठी सपने सुध भूली चन्द्रकला न सोहात।
तलफ तलफ जिय जाय हमारो कबरे मिले दीनानाथ।
भइ हूँ दिवानी तन सुध भूली कोई न जानी म्हांरी बात।
'मीरा' कहै बीती सोइ जानै मरण जीवण उन हाथ ॥४१॥

सुनौ=शून्य। छै=छै। बदी ती=बीत गई। अजूं=आज तक। पंजर=श्वेत। तजि''नरेस=राजा का देश वा मेवाड़ का राज्य तक त्याग दिया है।

नींदलड़ी=निद्रा। बीती सोइ जानै=जिसने इस प्रकार का विरह कष्ट उठाया है वही इसे जान सकता है। मरण''हाथ=हमारा मरना जीना उन्हीं के हाथ में है।

राग देस

दरस बिन दुखण लागे नैण।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन।

सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख दैण ॥४२॥

राग काफी

मैं विरहिणी बैठी जागूँ जगत सब सोवै री आली।
विरहिण बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पोवै।
इक विरहिणी हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिण गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर जब मिल के बिछुड़ न जावै।४३।

बह गइ करवत=अत्यन्त पीड़ा हुई। छमासी=छ महीने के समान लम्बी। दुख मेटण=दुःख दूर होने वाले। जगूँ=जगती हूँ। पोवै पिरती है। बिहानी=बीत गई। मोतियन की लड़ पोवै=रोती है। तारा गिणगिण=तारा गिन गिन कर रात का समय व्यतीत करती हूँ।

'अणरता सुख सोवणां, रातै नींद न आई।
ज्यूँ जल टूटे मंछली, यूँ बेलत बिहाइ।
—कबीर।

राग भैरवी

मैं हरि बिन क्यूँ जिवूँ री माइ।
पिव कारण बौरी भई, ज्यूँ काठहिं घुन खाइ।
औखद मूल न संचरे मोहि लायो बौराइ।
कमठ दादुर बसत जल में जलहिं ते उपजाइ।
मीन जल के बीछुरे तन तलफि करि मरि जाइ।
पिव ढुँढण वन वन गई कहुँ मुरली धुनि पाइ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर लाल मिलि गये सुखदाइ ॥४४॥

राग कान्हड़ा

गोविन्द कबहुँ मिलै पिय मेरा।
चरण कँवल कूँ हँसि हँसि देखूँ राखूँ नैणाँ नेरा।
निरखणा कूँ मोहि चाव घणेरो कब देखूँ मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज मिलि तूँ मीत सबेरा।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर ताप तपन बहुतेरा ॥४५॥

जिवूँ = जीऊँ। ओखद = औषधि। सचरै = असर करती है। चौराई = पागलपन। कमठ = कछुआ।

नेरा = निकट। चाव = चाह। घणेरो = उत्कट। ताप तपन= अन्तर्वेदना।

राग पीलू

स्याम सुन्दर पर वार, जीवड़ा मैं वार डारूँगी, स्याम।
तेरे कारण योग धारखा लोक लाज कुल डार।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है नैन चलत दोऊ वार।
कहा करूँ किन जाऊँ मोरी सजनी कठिन बिरह की धार।
'मीरा' कहै प्रभु कब रे मिलोगे तुम चरणाँ आधार ॥४६॥

राग कनड़ी

करणाँ सुणि स्याम मेरी, मैं तो होइ रही तेरी चेरी।
दरसण कारण भई बावरी बिरह बिथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी दूँगी नग्र बिच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी।
अंग भभूत गले मृगछाला यो तन भसम करू री।
अजहुँ न मिल्या राम अविनाशी बन बन बीच फिरू री।
रोऊ नित टेरी टेरी।
'जन मीरा' कूँ गिरिधर मिलियाँ दुख मेटण सुख भेरी।

रम रम सीता भई उर में मिटि गई फेरा फेरी ।
रहूँ चरनन तरि चेरी ॥४७॥

जीवड़ा=प्राण । वार डारूंगी=न्योछावर करूंगी । डार=त्याग कर ।
नलत=आँसू देते हैं । धार=वेग ।

करणां=करुणा प्रार्थना । नग्र=नगर । यो तन……करूरी=
इस शरीर पर भस्म रमाऊंगी । टेरी टेरी=पुकार पुकार कर । चेरी
=पहुँचाने वाले । सीता=शान्ति ।

मिलन

राग परच

सहेलियाँ साजन घरि आया हो ।
बहोत दिनाँ की जोवती, बिरहिणि पिव पाया हो ॥
रतन करूं नेवछावरी, ले आरति साजूं हो ।
पिव का दिया सनेहड़ा ताहि बहोत निवाजूं हो ।
पाँच सखी इकठी भई, मिलि मगल गावै हो ।
पिय का रली बधावणाँ आणंद अंग न मावै हो ॥
हरिसागर सूँ नेहरो, नैणां बध्या सनेह हो ।
'मीरा' सखी के आंगणों दूधां वूठा मेह हो ॥४८॥

सहेलियाँ—अरी सखियो । साजन—प्रियतम । जोवती—राह देखत
सनेहड़ा—सदेश । निवाजूँ—अनुग्रह जानती हूँ । रली बँधावणा—
आनन्द बधाई का समा ।

'आजे रली बंधामणां, आजे नवला नेह ।
सखी, अम्हीणी गोठमइँ, दूधे वूठा मेह, ।

नेहरो—स्नेह । दूधां— दूध की धाराओं से । वूठा—बरसे ।

मीराबाई की जीवनी और भजनावली-संग्रह के सहायक ग्रन्थ

१. मीराबाई स्वामी वामदेवानन्द (बंगला)

२. मीरा—महावीरसिंह गहलोत (हिन्दी)

३. मीरा माधुरी—ब्रजरत्न दास (हिन्दी)

४. दि स्टोरी आफ मीराबाई—बाँकेबिहारी (अंग्रेजी)

५. मीराबाई के भजन—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय (हिन्दी)

६. मीराबाई की शब्दावली—बेलविडियर प्रेस (,,)

७ एनेल्स आफ राजस्थान—कर्नल टाड (अंग्रेजी)

८. मीराबाई की जीवनी और भजनावली (प्रबन्ध) स्वामी जगदीश्वरानन्द (बंगला)

९. भक्तमाल—(नाभादास) (हिन्दी)

१०. मीराबाई—प्रीतिकणा दत्तजाया (बंगला)

११. मीराबाई—अनाथ नाथ बसु (अंग्रेजी)

१२. मीरा मदाकिनी—नरोत्तदास स्वामी (हिन्दी)

१३. भक्त मीरा व्यथित हृदय (,,)

१४. मीराबाई की जीवनी और प्रीति—सीताशरण भगवानदास (हिन्दी और उर्दू)

१५. मीरा—श्यामापति पांडेय (हिन्दी)

१६. भजन मीराबाई—लाला श्रीप्रसाद माहेश्वरी (,,)

१७. भजन मीराबाई—गुरादित्य खन्ना (,,)

१८. मीरा पदावली—विष्णुकुमारी श्रीवास्तव (,,)

१९ मीराबाई का काव्य—मुरलीधर श्रीवास्तव (,,)

२० मीराबाई के भजन—मनोहरलाल मिश्र (,,)

२१ मीराबाई के भजन—वि० एम० सन्स (हिन्दी)

२२ मीराबाई के भजन—गोरखपुर प्रिन्टिंग प्रेस (,,)

२३. मीराबाई की पदावली—परशुराम चतुर्वेदी (,,)

२४. राजस्थान—विश्वनाथ मजूमदार (बंगला)
२५. राजस्थान—यज्ञेश्वर बन्द्योपाध्याय (,,)
२६. भारतीय मध्ययुगे साधनधारा—क्षितिमोहन सेन (,,)
२७. विद्यापति और चण्डीदास ओ अन्यान्य
वैष्णव महाजन गीतिका—चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय (,,)
२८. मीरा एक अध्ययन—पद्मावती शबनम (हिन्दी)
२९. धुताञ्जली—दिलीपकुमार राय (बंगला)
३०. कवि जयदेव और श्रीगीतगोविन्द—हरेकृष्ण मुखोपाध्याय (,,)
३१. भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय—स्व० अक्षय कुमार दत्त (,,)
३२. आर्य महिला—उपेन्द्र कुमार घोष (,,)
३३. मीराबाई—डा० किशोरीलाल (हिन्दी)
३४. व्रजचन्द्र चकोरी मीरा—श्रीकृष्ण प्रभाकर और राके
बिहारी (,,)
३५. मीराबाई—विजन घोष दस्तिदार (बंगला)
३६. मारवाड़ राज्य का भूगोल – जगदीशसिंह गहलोत (हिन्दी)
३७. मीरा—ब्रजनन्दन सिंह (बंगला)
३८. सूरदास एक विश्लेषण (हिन्दी)
३९. भक्त नरसिंह मेहता (,,)
४०. श्रीगुरु परम्परा प्रभाव—श्रीनिवासाचार्य (,,)
४१. श्रीचैतन्य उपदेश रत्नमाला—श्रीपाद भक्तिकुसुम श्रमण
महाराज (बंगला)
४२. अचिन्त्य भेदा भेदवाद—श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद (,,)
४३. पुष्टिमार्ग (१) —श्रीमाधव (हिन्दी)
४४. मीरासुधा सिन्धु—स्वामी आनन्दस्वरूप (,,)
४५. मीरा—श्रीधरनाथ शर्मा एम० ए (,,)
४६. मीराबाई के भजन—प्रकाशक हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा (,,)